Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MANAV

Vol. 13 1985 1-4 G. K V.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111122

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Road
JAWALAPUR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष–१३ ★ अंक–१

जनवरी–मार्च

१९८५

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

N051-4LB
87
301.451
111122

मानव

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव

(त्रैमासिक)

प्रकाशक— एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ

संपादक— उमाशंकर मिश्र

सह-संपादक— डा० रघुराज गुप्त

प्रबंध संपादक— श्री प्रभात कुमार तिवारी

सहायक-संपादक— डा० नदीमुल हसनैन
श्री ललित किशोर मिश्र

संपादकीय परामर्शदाता— श्री बी० डी० सनवाल, डा० ब्रह्मदेव शर्मा, डा० श्यामा चरण दुबे, डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र, डा० ललिता प्रसाद विद्यार्थी, श्री हरी सहाय सक्सेना, डा० इन्द्र देव, प्रो० अवधकिशोर शरण

'मानव' में मानव विज्ञान एवं अन्य सम्बन्धित विषयों पर मूल शोध पत्र, प्रामाणिक मूल लेखों के अनुवाद एवं पुस्तक समीक्षायें आदि प्रकाशित होती हैं।

वार्षिक शुल्क स्वदेश में ५० रु०
विदेशों में २० डालर
अथवा समकक्ष अन्य विदेशी मुद्रायें
(सोसायटी के सदस्यों को अर्ध शुल्क पर प्राप्य)
विद्यार्थियों के लिये विशेष सुविधा—२५ रु० वार्षिक

संपर्क सूत्र—
संपादक 'मानव', एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी
पोस्ट बाक्स २०९, ७ ए, रामकृष्ण मार्ग, फैजाबाद रोड, लखनऊ—२२६ ००७

पनार मुद्रक, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111122

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

76737

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १३ जनवरी–मार्च १९८५ अंक : १

इस अंक में

वेरियर एलविन–व्यक्तित्व एवं कृतित्व	उमाशंकर मिश्र	१
लाहुल के मृतक संस्कार	डी० डी० शर्मा	७
विपन्न बिहार के विकास कार्यक्रमों का एक मानव वैज्ञानिक अध्ययन	सचिन्द्र नारायण	२५
'आरक्षण'—एक समाजशास्त्रीय विवेचना	वन्दना शर्मा	३१
नगरीय परिवेश में गढ़वाली नारी और परिवार	अनीता सजवान	३५

आदिवासी स्तम्भ

बस्तर जिले के अबूझमाड़ क्षेत्र की जनजातीय संस्कृति	जो० पी० पटेल	४७

विद्यार्थी स्तम्भ

भारत में संयुक्त परिवार का भविष्य	सुन्दर लाल	५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ
की १९८५ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	श्री बी० एस० शुक्ला, प्रो० एस० सी० तिवारी, प्रो० एस० एन० रथ डा० पी० के० भौमिक
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० बनवीर सिंह
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० राकेश शुक्ल, डा० ए० पी० सिंह
निर्वाचित सदस्य	डा० पी० के० मिश्रा (तालिमनाडु), डा० जी० सी० हेलन (मेरठ) डा० ए० आर० बनर्जी (कलकत्ता), डा० वी० एन० मिश्रा पुणे) डा० वी०एस० उपाध्याय (रांची), डा० एल०पी० विद्यार्थी (रांची) डा० आर०के० गुलाटी (देहरादून), श्री अरविन्द सहाय (लखनऊ) डा० मन्जू शुक्ला (लखनऊ), डा० रघुराज गुप्त (लखनऊ) डा० डी०पी० बाजपेयी (लखनऊ), श्री आर०एस० बिष्ट (लखनऊ) नदीमुल हसनैन (लखनऊ), श्रीष चन्द्र (लखनऊ),
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपॉलोजिस्ट) श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव) डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपॉलोजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स) श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्ध समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरों दत्त सनवाला (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

एनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १३ अप्रैल–सितम्बर १९८५ अंक : २, ३

इस अंक में

प्रागैतिहासिक मानव के कार्य कलाप शैलचित्रों के दर्पण में	यशोधर मठपाल	एक
तिब्बत—देश व देशवासी	गिरिजा सकलानी	५९
रस्तोगी महिलाएँ—एक मानवमितीय अध्ययन	सुधा रस्तोगी, प्रभात कुमार तिवारी एवं दीपक त्यागी	६९
थारू और उनकी ऐतिहासिकता	अंगने लाल	७५
उत्तर-प्रदेश के दुहाई गाँव में अस्थायी गुट	विजय कुमार	७९

आदिवासी स्तम्भ

मिशिंग जनजाति का लोक साहित्य	भिक्षु कौण्डिन्य	८९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ
की १९८५ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	श्री बी० एस० शुक्ला, प्रो० एस० सी० तिवारी,
	प्रो० एस० एन० रथ
	डा० पी० के० भौमिक
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० बनवीर सिंह
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० राकेश शुक्ल, डा० ए० पी० सिंह
निर्वाचित सदस्य	डा० पी० के० मिश्रा (तालिमनाडु), डा० जी० सी० हेलन (मेरठ)
	डा० ए० आर० बनर्जी (कलकत्ता), डा० वी० एन० मिश्रा (पुणे)
	डा० वी०एस० उपाध्याय (रांची), डा० एल०पी० विद्यार्थी (रांची)
	डा० आर०के० गुलाटी (देहरादून), श्री अरविन्द सहाय (लखनऊ)
	डा० मन्जू शुक्ला (लखनऊ), डा० रघुराज गुप्त (लखनऊ)
	डा० डी०पी० बाजपेयी (लखनऊ), श्री आर०एस० बिष्ट (लखनऊ)
	नदीमुल हसनैन (लखनऊ), श्रीष चन्द्र (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट)
	श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव)
	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स)
	श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्ध समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरों दत्त सनवाला (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

पुनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १३ अक्तूबर–दिसम्बर १९८५ अंक : ४

इस अंक में

उत्तर-प्रदेश में आठवें दशक में नगरीय वृद्धि का स्वरूप	राधे श्याम त्रिपाठी	११३
युवा छात्राओं के सांस्कृतिक दृष्टिकोण	कु० ललिता शर्मा	१२३
वर्तमान भारत की राजनैतिक संरचना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण	सत्यव्रत पाण्डे	१३१
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में देवी देवता	टी० आर० सिंह	१३९
वाराणसी की डोम जाति की सामाजिक-आर्थिक दशा का समाज वैज्ञानिक अध्ययन	नूतन अग्रवाल	१५३
रानीखेत (जिला अल्मोड़ा) उत्तर-प्रदेश में पर्वतीय नारियों की सामाजिक दशाओं का अध्ययन	विमल चन्द्र जैन	१६९

आदिवासी स्तम्भ

बिहार की जनजातियाँ	त्रिवेणी झा	१७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ
की १६८५ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	श्री बी० एस० शुक्ला, प्रो० एस० सी० तिवारी, प्रो० एस० एन० रथ डा० पी० के० भौमिक
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० बनवीर सिंह
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० राकेश शुक्ल, डा० ए० पी० सिंह
निर्वाचित सदस्य	डा० पी० के० मिश्रा (तालिमनाडु), डा० जी० सी० हेलन (मेरठ) डा० ए० आर० बनर्जी (कलकत्ता), डा० वी० एन० मिश्रा (पुणे) डा० वी०एस० उपाध्याय (रांची), डा० एल०पी० विद्यार्थी (रांची) डा० आर०के० गुलाटी (देहरादून), श्री अरविन्द सहाय (लखनऊ) डा० मन्जू शुक्ला (लखनऊ), डा० रघुराज गुप्त (लखनऊ) डा० डी०पी० बाजपेयी (लखनऊ), श्री आर०एस० बिष्ट (लखनऊ) नदीमुल हसनैन (लखनऊ), श्रीष चन्द्र (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट) श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव) डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स) श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्ध समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरों दत्त सनवाल (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

पूनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेरियर एलविन—व्यक्तित्व एवं कृतित्व

उमाशंकर मिश्र

[इक्कीस वर्ष पूर्व, २२ फरवरी १९६४ को भारतीय नृतत्व के स्तम्भ वेरियर एलविन का देहान्त दिल्ली में हुआ था। ब्रिटेन में जन्मा एक भारतीय जिसने भारतीय जीवन दर्शन को अपना कर स्वयं को देश के लिए समर्पित किया। मिसेज एनी बेसेंट, फादर ऐन्ड्र्यूज एवं सिस्टर निवेदिता की परंपरा के पोषक, जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से तादात्म्य स्थापित कर भारतीय संस्कृति को आत्मसात किया। भारतीय जनजातियों के अध्येता, एक मानव वैज्ञानिक के रूप में एलविन ने भारतीय नृतत्व में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। आजीवन जन-जातियों की सेवा और अध्ययन में लिप्त एलविन ने स्वयं को जनजातियों की सेवार्थ समर्पित किया। मानवता का पुजारी, सेवा-त्याग एवं प्रेम की भावना से ओत प्रोत व्यक्तित्व, सुदूर जंगलों में आदिवासियों के हृदय में मानवीय प्रेम की ज्योति जलाता रहा। आदिवासियों के प्रति उनके लगाव, निष्ठा एवं समर्पण ने पं० नेहरू का ध्यान भी आकर्षित किया। नेहरू जी स्वयं आदिवासियों से अत्यधिक प्रेम करते थे। उनके स्वभाव का यह अंश उनकी बेटी इन्दिरा में भी परिलक्षित हुआ। अपनी आकस्मिक मृत्यु के एक दिन पूर्व ही लाखों देशवासियों ने उन्हें उड़ीसा के आदिवासियों के बीच देखा। एलविन ने भारतीय आदिवासियों पर जो कुछ लिखा, उनकी पुस्तकें एवं लेखों के माध्यम से आदिवासी संस्कृतियों के प्रति जन सामान्य की भावनायें प्रभावित हुयी हैं।]

एलविन का जन्म इंगलैंड के केन्ट नामक स्थान पर २९ अगस्त, सन् १९०२ को हुआ था। उनके पिता श्री एडमंड स्वयं एक ऐंग्लिकन बिशप थे। एलविन की सात वर्ष की अवस्था में, उनके पिता का ३८ वर्ष की अल्पायु में ही देहांत हो गया था। उनकी माता भी स्वभाव से धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। पति के देहांत के उपरांत उन्होंने भी चर्च की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर दिया। अत्यंत अभावग्रस्तता की स्थिति में एलविन ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा समाप्त की। सन् १९२१ में वे ऑक्सफोर्ड चले आये और वहाँ मेस्टन कॉलिज में पढ़ने लगे। ऑक्सफोर्ड में उनका संपर्क ए० सी० ब्रैडले, वाल्टर रेले एवं ए० डब्लू० शैरोड जैसे महान व्यक्तित्वों से हुआ। १९२४ में धर्मशास्त्र में उपाधि ग्रहण करने के उपरांत उन्हें वाइशिफ

उमाशंकर मिश्र, मानव विज्ञान विभाग, विद्यांत कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हॉल का वाइस प्रिंसिपल नियुक्त किया गया । इस समय का उन्होंने पाश्चात्य धर्मों के अध्ययन में प्रयोग किया । ऑक्सफोर्ड में ही वे प्राच्य धर्मों से काफी प्रभावित हुए । उनका संपर्क डॉ० कृष्णमूर्ति से भी हुआ जिन्हें श्रीमती एनी बेसेंट ऑक्सफोर्ड में भरती कराने के लिए ले गई थीं । वहीं ऑक्सफोर्ड में ही भारतीय दर्शन के फेलो, डॉ० राधा कृष्णनन के विचारों को सुनकर उन पर काफी प्रभाव पड़ा और भारत के प्रति एक विशेष आकर्षण उनमें उत्पन्न हुआ । किंतु अंत में महात्मा गाँधी के संपर्क में आने के उपरांत वे भारत जाने के लिए मानसिक रूप में कटिबद्ध हुए । ऑक्सफोर्ड में रहकर एलविन ने जो कुछ भी सीखा एवं पढ़ा उस सबसे उन्हें आत्मिक संतोष नहीं हो सका । उनके मन में भारत, भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रति एक विचित्र आकर्षण जन्म ले चुका था । भारतीय लोगों पर अपने देशवासियों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों एवं शोषण से वे अत्यंत पीड़ित होते रहे और उसके प्रतिकार स्वरूप अत्यंत गरीब एवं अभाव ग्रस्त भारतीयों की सेवा का वचन उन्होंने लिया । भारतवर्ष में पूना में 'क्रिस्ट सेवा संघ' नाम के आश्रम के संस्थापक जैक विन्सलों के प्रयास से एलविन भारत आये ।

जनवरी सन् १९२८ का एक दिन एलविन के जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण दिन साबित हुआ जिस दिन उन्होंने महात्मा गाँधी के साबरमती आश्रम में जाकर उनसे भेंट की । उन्होंने कहा "गांधी जी से साक्षात्कार करने के उपरांत मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि एक भारतीय के रूप में, भारत भूमि पर मेरा पुनर्जन्म हुआ" । सन् १९२८ में ही बीमार पड़ जाने पर वे इंगलैंड वापस चले गये और फिर एक वर्ष के बाद १९२९ में भारत लौट आये । भारत से दूर अपने देश में इस एक वर्ष के समय का सदुपयोग उन्होंने भारतीय दर्शन के अध्ययन में किया । इस अवधि में राजगोपालाचारी द्वारा 'भगवत् गीता' पर लिखित पुस्तक का अध्ययन किया । इस अवधि में उन्होंने "स्टडीज इन इण्डियन गॉस्पेल्स" नामक पुस्तक भी लिखी ।

सन् १९२९ में पूना पहुंचने पर क्रिस्ट सेवा संघ के अधिष्ठाता फादर विन्स्लो ने संघ छोड़ने का फैसला कर लिया था और उन्होंने अपने स्थान पर एलविन को अपना उत्तरदायित्व सौंपना चाहा । किंतु वहाँ फिर वे अधिक समय तक नहीं रह सके । गाँधीवादी विचारों के कारण पुलिस उनका पीछा करने लगी थी । पूना में ही एलविन का परिचय शामराव हिवले से हुआ । वास्तव में एलविन में आदिवासियों के प्रति आकर्षण का सूत्रपात शामराव के द्वारा ही हुआ जो बाद में जीवन भर आदिवासियों के बीच एलविन के मित्र , दार्शनिक एवं संरक्षक-सहयोगी के रूप में कार्य करते रहे ।

सन् १९२८ से १९३२ के मध्य महात्मा गाँधी के संपर्क ने एलविन के जीवन को महत्वपूर्ण मोड़ प्रदान किया । चार वर्षों का यह समय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक ऐसा समय था जिसमें एक के बाद एक महत्वपूर्ण घटनायें होती गयीं । इन सभी घटना क्रमों से प्रभावित एलविन की मानसिकता में महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व उभरता गया । अंततः सन् १९३३ में उन्होंने महात्मा के साबरमती आश्रम में शरण ली । महात्मा गाँधी ने उन्हें अत्यंत भावुकता से पुत्रवत ग्रहण किया । और उन्हें, उनकी विकट इच्छा के विरुद्ध, भारतीय स्वतंत्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्राम से दूर रहने की सलाह दी । उन्होंने एलविन से कहा 'तुम एक अंग्रेज हो, अंग्रेजी हुकूमत हमारी तरह तुम्हें भारतीय जेलों में नहीं बन्द करेगी । वे तुम्हें तुम्हारे देश में ले जा कर, एक देशद्रोही के रूप में कुत्तों की मौत मरने पर तुम्हें मजबूर करेंगे ।' गाँधी ने कहा कि उनके ऐसे व्यक्ति की इस देश के करोड़ों असहाय और पीड़ित जनों को बहुत जरूरत है । इस देश की सेवा के लिये उन्हें इस आंदोलन से अपने को दूर रखना होगा । अन्त में सरदार पटेल, जिनका कि वे बहुत सम्मान करते थे, की सलाह पर उन्होंने आदिवासियों के बीच अपनी कर्म भूमि चुनने का फैसला कर लिया और मध्य प्रदेश के मांडला जिले के आदिवासी क्षेत्र में कार्यरत हो गये ।

सर्वप्रथम एलविन मांडला जिले के पतनगढ़ में रहे । आदिवासियों की ही भाँति, मिट्टी की दीवालों से घिरे और छप्पर से छायी हुयी झोपड़ी में रहना शुरू कर दिया । ऐसी ही मिट्टी की दीवालों से घिरे हुए लोगों में उन्हें एक नवीन मानवता के दर्शन हुये—एक ऐसे जीवन दर्शन से उनका साक्षात्कार हुआ जिससे वे एकदम अपरिचित थे । प्राकृतिक सौंदर्य के पुजारी और काव्यमय हृदय वाले इस व्यक्ति को आदिवासियों का सरल, प्राकृतिक जीवन और उनकी संस्कृति और भी अधिक काव्यमय प्रतीत हुयी । सर्वप्रथम उनका प्रवास 'गोंड' जनजाति के मध्य रहा । उनकी संस्कृति, उनके शांत सरल जीवन की एलविन के मस्तिष्क पर गहरी छाप पड़ी । उन्होंने एक गोंड कन्या से विवाह भी किया । किंतु किन्हीं व्यवधानों के कारण उन्हें विवाह विच्छेद करना पड़ा । बाद में फिर उन्होंने एक अन्य प्रधान आदिवासी कन्या 'लीला' से विवाह किया । लीला आजीवन उनकी जीवन संगिनी बनकर रही । उनके तीन पुत्र थे ।

मध्य प्रदेश के आदिवासियों के बीच एलविन ने लगभग २० वर्षों का समय व्यतीत किया और इस समयावधि में उन्होंने 'बैगा', 'अगारिया', 'मारिया' तथा 'मुरिया' लोगों का अध्ययन किया । इसी समयावधि में कुछ समय उन्होंने उड़ीसा के कुछ आदिवासियों में भी व्यतीत किया । उड़ीसा में उन्होंने कुरिया कुंड, बोंदो एवं साओरा जनजातियों में विशेष अध्ययन किया ।

सन् १९५२ में एलविन शामराव के साथ शिलाँग गये । उस समय वहाँ श्री जयराम दास दौलत राम गवर्नर थे । एलविन से उनके मधुर सम्बन्ध थे । उन्हीं के व्यक्तिगत आग्रह पर एलविन NEFA के आदिवासियों के अध्ययन हेतु वहाँ पहुंचे । दोनों ने एक साथ मनीपुर का भ्रमण किया । मनीपुर में 'कबुई' नागा जनजाति से परिचय का उनके ऊपर काफी प्रभाव पड़ा । सन् १९५३ में वे पुनः पतनगढ़ लौट आये । इस समय कुछ अर्थाभाव के कारण तथा कुछ आसाम भ्रमण के दौरान हुई कठिनाइयों के परिणामस्वरूप उनके मन में तीव्र हताशा विकसित हुयी और वे फिर मध्य प्रदेश में अपने पतनगढ़ निवास में पहुंच गये । किंतु अचानक ही उन्हें विदेश सचिव श्री टी० एन० कौल के आमंतण पर दिल्ली जाना पड़ा । वे सपत्नीक दिल्ली पहुंचे ।जहाँ पं० नेहरू से उनका साक्षात्कार हुआ । श्री टी० एन० कौल ने उत्तर पूर्वी सीमांत प्रदेश के प्रशासन के लिये एक नई सेवा की स्थापना के प्रशासनिक निर्णय से एलविन को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवगत कराया जिसे भारतीय सीमा प्रशासनिक सेवा नाम दिया गया था। श्री कौल ने एलविन को उत्तर पूर्वी सीमांत प्रदेश का प्रशासनिक सलाहकार नियुक्त किये जाने के केन्द्र सरकार के निर्णय से उन्हें अवगत कराते हुये उनसे इस सेवा के लिए प्रशासनिक अधिकारियों के चयन के लिए निवेदन किया। अपने अभिन्न एवं विख्यात मित्र शामराव से सलाह लेकर एलविन ने केन्द्र सरकार के इस निर्णय पर अपनी सहमति दे दी और अपने २० वर्ष पुराने पतनगढ़ आवास एवं गोंड़ सहवासियों का सम्मोहन त्याग कर वे अपने नवीन उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए शिलांग के शानदार सरकारी आवास में चले गये। किंतु वहाँ मानसिक रूप से वे अपने को एक नजरबन्द कैदी की स्थिति में महसूस करने लगे। प्रशासनिक अधिकारियों के बीच एवं नियमों से बंधकर कार्य करने की मानसिकता उनमें कभी विकसित नहीं हुई और आदिवासियों के सत्संग एवं उनके उन्मुक्त जीवन एवं प्राकृतिक वातावरण को त्यागने का मानसिक कष्ट उन्हें अपने जीवन के अंतिम चरण में सदैव बना रहा। यद्यपि समय पाकर वे बीच-बीच में उत्तर पूर्वी सीमांत क्षेत्र के आदिवासियों में पहुंच जाया करते थे जहाँ उन्हें आत्म संतोष मिलता था। इस क्षेत्र के आदिवासियों की मनोदशा भी उन्होंने भली-भाँति आत्मसारित की। उनकी पुस्तक "द फिलॉसफी फार नेफा" वास्तव में उन आदिवासियों का जीवन दर्शन ही है जिसे उन्होंने अत्यंत निकट से समझा है। इसी क्षेत्र के आदिवासियों के संसर्ग से उनमें अपने जीवन के अंतिम पाँच वर्षों में बौद्ध धर्म से अत्यधिक लगाव हो गया था। इसी समय उन्होंने महात्मा गाँधी पर एक पुस्तक लिखी।

सन् १९५९ में तत्कालीन गृह मन्त्री पं० गोविन्द बल्लभ पंत के आग्रह पर उन्होंने सारे देश में कुछ चुने हुए जनजातीय क्षेत्रों में विकास की प्रगति के अध्ययन से सम्बन्धित एक समिति की अध्यक्षता स्वीकार की। इस समिति के तत्वावधान में उन्हें सारे देश के आदिवासी क्षेत्रों के भ्रमण का अवसर प्राप्त हुआ जिसे उन्होंने अपने जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में महसूस किया। इस समिति के विवरणों के आधार पर लगभग पाँच सौ पचास पेजों की एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार हुई जिसे सन् १९६० में गृह मन्त्रालय को प्रेषित कर दिया। यह रिपोर्ट एक महत्वपूर्ण आलेख था जिसमें सर्वत्र एलविन के मानववादी दृष्टिकोण की छाप थी जिसमें उन्होंने आदिवासियों की समस्याओं को उनके अपने दृष्टिकोण एवं मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। बाद में एलविन को अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति आयोग का सदस्य भी मनोनीत किया गया जिसके अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेबर थे। सन् १९६० में उन्हें सरदार पटेल स्मृति व्याख्यान के लिये आमन्त्रित कर सम्मानित किया गया, जिसके व्याख्याताओं में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डा० जे० बी० एस० हाल्डेन तथा डा० जाकिर हुसेन जैसे लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान इनसे पूर्व सम्मानित हो चुके थे। इस व्याख्यान में एलविन ने 'द फिलॉसफी ऑव लव' को अपना विषय बनाया। २६ जनवरी १९६१ को उन्हें 'पद्म भूषण' के राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किया गया। इससे पूर्व ही कुछ वर्षों पहले उन्हें उनके आग्रह पर भारतीय राष्ट्रीयता प्रदान की जा चुकी थी। जिस देश को उन्होंने अपनी कर्मभूमि के रूप में चुना था, उसने उनकी सेवाओं का भरपूर सम्मान किया। जिस समर्पण की भावना से उन्होंने अपने व्यक्तित्व को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासियों के लिए समर्पित किया उसी भावना का आदर करते हुए आदिवासियों से संबंधित नीति निर्धारण प्रक्रिया में शासन ने उन्हें अपने विश्वास में लिया।

एलविन का जीवन दर्शन आद्योपांत मानवतावादी दृष्टिकोण से ओतप्रोत था। प्राकृतिक सौंदर्य, कविता एवं प्रकृति की गोद में पली पोसी जनजातीय संस्कृतियों का लालित्य एवं उनकी सहजता उनके जीवन का आकर्षण बन गयी। जिस काव्यमय हृदय को लेकर वे मिट्टी की दीवालों के घेरे में रह रहे आदिवासियों में पहुंचे थे, वह उनके दारिद्रय एवं दैन्य की ज्वाला में दग्ध होकर पिघल कर काव्य सरिता के रूप में बहा। आदिवासी संस्कृतियों को उन्होंने एक ऐसे ताजे खिले हुये सुन्दर फूल के रूप में देखा जिसकी ताजगी एवं सौंदर्य को सुरक्षित रखना आवश्यक समझा। भारतीय जनजातीय संस्कृतियों के अध्येता के रूप में उन्हें एक उच्चकोटि का मानव दृष्टा कहा जायेगा। वे साहित्य एवं धर्मशास्त्र में प्रशिक्षित थे। केवल मात्र सेवा भावना एवं मानवीय दृष्टिकोण को लेकर वे भारतीय आदिवासियों में पहुंचे किंतु अंततः वे एक सफल 'मानव वैज्ञानिक' के रूप में सम्मानित हुए। मानव विज्ञान की परंपरा में यह कोई नई घटना नहीं थी। वस्तुतः मानव विज्ञान का प्रारम्भिक इतिहास ऐसे अनगिनत विद्वानों के योगदानों से पुष्पित एवं पल्लवित हुआ जो अन्य विषयों से आये और अपनी रुचि से मानव वैज्ञानिक बने। अपने समय के स्तम्भ सर जेम्स फ्रेजर, डब्लू० एच०आर० रिवर्स, लिविस एच० मार्गन और वर्तमान में योरोप में सामाजिक-साँस्कृतिक मानव विज्ञान के प्रकाश स्तम्भ क्लॉड लेविस्ट्रास कोई भी प्रशिक्षित मानव वैज्ञानिक नहीं था। किंतु इन सभी ने अपनी रुचि से मानव विज्ञान को अपनी विद्वत्ता एवं अध्ययन का क्षेत्र बनाया। एलविन इस धारणा से आदिवासियों में नहीं पहुंचे थे। भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गाँधी के विरोध के कारण सम्मिलित नहीं हो सके थे। सरदाल पटेल के आग्रह एवं मित्र शामराव की प्रेरणा ने उनको आदिवासियों के संसार में पहुंचा दिया। उनके सानिध्य से उन्होंने जो भी महसूस किया लेखनी ने लिपिबद्ध कर दिया। उन्हें मानव वैज्ञानिक बना दिया। आज स्थिति यह है कि कोई भी भारतीय जनजातीय संस्कृतियों में रुचि रखने वाला अध्येता एलविन की पुस्तकों की अवहेलना नहीं कर सकता।

राँची के वकील रायबहादुर शरत चन्द्र राय एवं समाज सेवक डा० वेरियर एलविन दोनों के व्यक्तित्व ऐसे थे जिन्होंने प्रशिक्षित मानव वैज्ञानिक न होते हुए भी भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक मानव विज्ञान पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। श्री राय ने वास्तव में एक अध्येता के रूप में ही जनजातीय संस्कृतियों में रुचि ली थी। किंतु डा० एलविन विशुद्ध सेवा भावना से जनजातियों में पहुंचे और उनके आकर्षण ने उन्हें आदिवासियों का मसीहा बना दिया। शायद ही कोई ऐसा मानव वैज्ञानिक हो जिसने अपने जीवन का इतना लम्बा समय आदिवासियों के बीच रह कर गुजारा हो। सामाजिक-सांस्कृतिक मानव विज्ञान की विशुद्ध अध्ययन प्रणाली में स्व-अनुभव के आधार पर लोगों की संस्कृतियों से व्यक्तिगत स्तर पर तादात्म्य स्थापित कर अध्ययन करके विवरण प्रस्तुत करने की अध्ययन विधि अपनायी जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके अतिरिक्त स्वयं अपनी संस्कृति से भिन्न संस्कृतियों के अध्ययनों को वरीयता प्रदान की जाती है। इन दोनों ही कसौटियों पर एलविन की पुस्तकों में प्राप्त विवरण मानव वैज्ञानिक अध्ययनों की श्रेणी में आते हैं।

कुछ विश्वविद्यालयों के प्रशिक्षित मानव वैज्ञानिकों एवं समाज शास्त्रियों ने इस प्रकार से एक अप्रशिक्षित व्यक्ति को विशेषज्ञ के रूप में मान्यता दिये जाने का विरोध किया, यद्यपि विरोध सैद्धांतिक आधार पर ही प्रगट किये गये। प्रो० घुरे ने आदिवासी संस्कृतियों के संरक्षण से सम्बन्धित उनके विचारों की कटु आलोचना करते हुये उन्हें परिवर्तन विरोधी कहा। मध्य प्रदेश में 'बैगा' जनजाति की विलुप्त हो रही संस्कृति एवं बैगा लोगों की बीमार मानसिकता से क्षुब्ध होकर श्री एलविन ने उनके सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता पर बल देते हुये उन्हें सभ्य समाजों के संसर्ग से कुछ समय तक बचा कर रखने की आवश्यकता पर बल दिया था। इसी को आधार बनाकर प्रो० घुरे ने उन्हें परिवर्तन-विरोधी प्रचारित किया। एलविन ने बार-बार इस आरोप का खण्डन करते हुये बताया कि—उनके यह विचार केवल मात्र 'बैगा' जन-जनजाति की विशुद्ध परिस्थितियों को देखते हुए, उनमें पुनः आत्म-विश्वास का जागरण कराना अति आवश्यक था। उन्होंने आदिवासियों को सभ्यता से दूर रखने की वकालत कभी नहीं की किंतु उनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान बनी रहे और ऐसे वाह्य तत्वों के संपर्कों से उन्हें बचाया जाये जो सदैव अपने आर्थिक स्वार्थों के लिये उनका शोषण करते रहे हैं—इस धारणा के वे सदैव हिमायती रहे। अपनी मूल्यांकन रिपोर्ट 'ए न्यू डील फॉर ट्राइबल इंडिया' में भी उन्होंने इसी विचार की पुरजोर सिफारिश की और जनजातियों के विकास कार्यक्रमों में ऐसी नीति अपनाने पर जोर दिया जिससे जनजातीय दृष्टिकोण की अवहेलना न की जाये।

अपनी जीवनी के रूप में लिखी गयी पुस्तक 'द ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एलविन' में उन्होंने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण के लिये कविता, संगीत, इसाई धर्म, गाँधी, टैगोर की गीतांजली और पं० नेहरू के विचारों को प्रभावी माना है। नेहरू के विचारों में उन्होंने टैगोर और गाँधी का समन्वय पाया। जनजातियों के सम्वन्ध में नेहरू के विचारों में उन्हें स्वयं की अनुभूति के दर्शन हुये। एलविल का स्वयं का व्यक्तित्व विनम्रता, मितव्ययता, शालीनता, आत्म सम्मान एवं मानवीयता जैसे गुणों का एक विशिष्ट सम्मिश्रण था। भारतीय आदिवासियों की संस्कृति पर उनकी लेखनी सतत रूप से सक्रिय रही। आदिवासियों से उनका आध्यात्मिक स्तर का तादात्म्य उनकी लेखनी को शक्ति देता रहा। और ६२ वर्ष की आयु में २२ फरवरी १९६४ को वह लेखनी अचानक स्थिर हो गयी।

टिप्पणी—दैनिक पायोनियर, लखनऊ के २१ अप्रैल के अंक में छपे लेख पर आधारित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाहुल के मृतक संस्कार

डी० डी० शर्मा

मृत्यु—शरीर का अंत, एक प्राकृतिक नियम एवं जैविकीय अनिवार्यता है, किंतु मृतक एवं उसके छूटे हुये अपने लोग इसी अनिवार्यता की कठोर नींव पर अपने और मृतक के बीच कोमल सम्बन्धों के ताने वाने बुनकर संस्कृति के माध्यम से इस अनिवार्य कठोरता को ग्राह्य वना लेते हैं। प्रस्तुत लेख में प्राकृतिक-जैविकीय एवं सांस्कृतिक धाराओं के संगम 'मृतक संस्कारों' का रोचक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है —संपादक

कभी विन्ध्य की भाँति अलंघ्य समझे जाने वाले रोहतांग हिमद्वार के उस पार चन्द्रा एवं भागा के तटों पर स्थित हिमांचल प्रदेश के लाहुल उप मण्डल को "हिमालय की विस्मय भूमि" के रूप में जाना जाता है। प्रकृति के विषम एवं विस्मयकारी रूपों की छाया में जीवन-यापन करने वाली यहाँ की जनजातियों की जीवन पद्धति में भी उसका यह रूप पदे पदे प्रतिबिम्बित होता है। उनके खान, पान, रहन-सहन, उत्सव-मेले, विश्वास-संस्कार सभी में इसकी झलक पायी जाती है। प्रस्तुत लेख में हम वहाँ के मृतक संस्कारों के कतिपय विचित्र विधि-विधानों का विवरण प्रस्तुत कर रहे है जो कि अनेक अंशों में भारत के अन्य प्रदेशों में प्रचलित विधियों से सर्वथा भिन्न हैं। लाहुल में भी वहाँ की भिन्न-भिन्न घाटियों में इन विधि-विधानों में भिन्नता पायी जाती है। लेख के प्रथम भाग में मुख्यतः उपरि लाहुल की प्रथाओं तथा द्वितीय भाग में निम्न लाहुल की प्रथाओं को प्रस्तुत किया गया है।

१. उपरिलाहुल की प्रथाएं

मृत्यु संस्कार

लाहुली समाज में प्रचलित सभी संस्कारों में से मृत्यु संस्कार को अति विस्तार पूर्वक एवं विधि विधान के साथ किया जाता है। यहाँ के हिन्दू तथा बौद्ध दोनों ही सम्प्रदायों से मृत्यु की अवश्यम्भाविता, आत्मा की अमरता तथा मृत्यु के उपरांत कर्मानुसार पुनर्जन्म की धारणा सामान्यतः पाई जाती है। बौद्धों में मृत्यु के अधिष्ठाता देव को "शिनडेग्यपो" (यमराज) तथा

प्रो० डी० डी० शर्मा, जवाहरलाल नेहरू फैलो, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मराज को "छोइग्यर" कहा जाता है और हिन्दुओं में मृत्यु के देवता को "मशाणनाथ" तथा धर्मराज को "धर्मराज" ही कहा जाता है। मृतक के संस्कारों के सम्बन्ध में बौद्धों तथा हिन्दुओं में अनेक अंशों में विभेद पाया जाता है। अतः दोनों का पृथक-पृथक विवरण देना ही अधिक उपयुक्त होगा। चन्द्रभागा घाटी में हिन्दू धर्म का अधिक प्रभाव होने के कारण यहाँ के बौद्धों की मृतक-संस्कार विधि उपरिलाहुल के बौद्धों से कई अंशों में पृथक् तथा हिन्दुओं के संस्कारों के निकट पाई जाती है।

पट्टन में परिवार के लोग किसी व्यक्ति की मृत्यु को सन्निकट जानकर उसकी सद्गति के लिये मरणासन्न व्यक्ति के मुँह में लामाओं के द्वारा तैयार किया हुआ एक विशिष्ट प्रसाद "चिनलप् मिनड़प्" डालते हैं तथा सुवर्ण-कण शमशान भूमि में ले जाने के बाद डाला जाता है।

किन्तु गाहर में मृत्यु होते ही मृतक के ऊपर एक चादर डाल दी जाती है तथा शाशुर गोन्पा से लामा को बुलाने के लिए आदमी भेजा जाता है। यदि मृतक लामा हो तो प्रधान लामा के आने तक उसे उसके पट्ट शिष्यों के अतिरिक्त और कोई स्पर्श नहीं कर सकता। मृतक के पास एक दीपक जला दिया जाता है तथा उमज़द (प्रधान लामा) के आने की प्रतीक्षा की जाती है। अन्त्येष्टि संस्कार के सम्बन्ध में उसे "उमजद" कहा जाता है तथा वही मुख्य रूप से इस संस्कार का आचार्य होता है। विशेष कर "फोवा" लगाने का अधिकार केवल उमजद को ही होता है। यदि वह किसी कारण से न आ सकता हो तो वह अपनी ओर से अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए गांव के किसी वरिष्ठ लामा को नियुक्त कर देता है तथा इसके प्रतीक के रूप में उसको एक सुई या अन्य कोई वस्तु भेज देता है। तिनन तथा पट्टन में उमज़द नहीं होता है।

फोवा

यह एक विशेष संस्कार है। इसका अर्थ है, "आत्मा का संक्रमण" "बौद्धों की धारणा है कि लिंग शरीर (बर्दो-बीच का शरीर), जो कि अगले जन्म के अनुरूप आकृति धारण कर लेता है, को विश्वास नहीं होता कि वह इस शरीर से पृथक् हो गया है। वह घर के सभी सगे सम्बन्धियों के पास जाता है तथा जब कोई भी उससे बातचीत नहीं करता है तथा उन्हें रोते हुये देखता है तो वह सोचता है कि ये सभी लोग मुझसे रुष्ट और असन्तुष्ट हैं इसीलिये बोल नहीं रहे हैं। माना जाता है कि यद्यपि "फोवा" करने के साढ़े तीन दिन के बाद उसे विश्वास हो जाता है कि वह अब शरीर छोड़ चुका है फिर भी वह आत्मा उन्तालिस दिन तक उस घर में भटकती रहती है क्योंकि अपने कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहने के कारण यमराज को मृतक के कर्मो के अनुसार उसे स्वर्ग या नरक में भेजने का निर्णय करने में कम से कम ४९ दिन लग जाते हैं। इसके बाद वह नया शरीर धारण कर लेता है। इसीलिये मृतक संस्कारों की अवधि ४९ दिन की रखी जाती है। फोवा के समय उस कक्ष नें चमड़े की कोई वस्तु नहीं रखने दी ज़ाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोवा का संस्कार मरने के पूर्व भी कराया जा सकता है। गुरु परम्परा के आधार पर "फोवा" के कई रूप होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का "फोवा" उस परम्परा की निकटतम परम्परा के आधार पर किया जाता है। यह सभी लामा लोग नहीं करा सकते। इसके लिये कठोर साधना करनी पड़ती है। साधक को अभ्यास के द्वारा सुषुम्ना से अपने प्राणों को ब्रह्माण्ड में ले जाकर स्थिर करना होता है। इसमें अभ्यास के समय साधक की शिखा का ऊर्ध्व भाग फोड़े की तरह ऊपर उठ जाता है, और स्पर्श करने पर दुखता है। उसकी पूर्णता के परीक्षण के लिये गुरु उसके ऊपर कुशाग्रास को खड़ी करता है। यदि वह वहाँ पर खड़ी टिक जाए तो समझा जाता है कि साधना पूर्ण हो गयी तथा उस साधक को "फोवा" लगाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

माना जाता है कि फोवा लगाने के बाद लिंग शरीर को विश्वास हो जाता है कि वह पूर्व शरीर से पृथक हो गया। इस सम्बन्ध में बौद्धों में जो एक अन्य धारणा प्रचलित है वह यह है कि अपने पृथकत्व की अनुभूति होने पर लिंग शरीर अपने परित्यक्त शरीर को मानव शरीर के रूप में न देखकर उस रूप में देखता है जो कि तिब्बती पंचाङ्ग के अनुसार उसके जन्म वर्ष के पशु का नाम होता है अर्थात् यदि वह व्यक्ति मूषक वर्ष में उत्पन्न हुआ हो तो उसे यह शरीर मूषक के शरीर के रूप में दिखाई देता है और यदि शूकर वर्ष में उत्पन्न हुआ हो तो उसे वह शूकर के शरीर के रूप में दिखाई देता है। उल्लेखनीय है कि तिब्बती संवत्सर चक्र बारह वर्षों का होता है और उसके नाम हैं—मूषक, वृषभ, व्याघ्र, शशक, अजगर, सर्प, अश्व, मेष, मर्कट, खग, कुक्कुर और शूकर।

फोवा लगाने के बाद उमजद चला जाता है तथा अन्य लामा लोग शेष क्रिया कर्म का कार्यभार संभालते हैं। वे लोग वहाँ पर पूजा-पाठ का कार्य प्रारम्भ करते हैं और "रोब्दग्पा" (रो+ब्दग्पा अर्थात् मृत शरीर के स्वामी या शव-वाहक) उस शव को उठा कर एक कोने में एक कुर्सी पर बैठा देते हैं। आवश्यक होने पर उसे कुर्सी के साथ बाँध भी दिया जाता है।

इस प्रकार शव को कुर्सी या काष्ठ के किसी अन्य आसन पर बैठे हुये की स्थिति में रख कर उस पर श्वेत वस्त्र लपेट देते हैं। उसके आगे मक्खन का एक दीपक जलाया जाता है। उसके सिर पर "ग्यल्वर्रिङा" पहना कर उसके आगे एक पर्दा लटका दिया जाता है।

ग्यल्वर्रिङा

यह ध्यानी बुद्ध की पाँच मूर्तियों से युक्त मुकुट होता है जिसे कि पंच बोधित्व का प्रतीक माना जाता है। लामा मृतक की स्थिति नें इन पाँचों चित्रों का मुख सामने की ओर तथा गृहस्थ मृतक की स्थिति में पीछे की ओर रखा जाता है।

उपरि लाहुल में शव की दाह क्रिया उसी दिन नहीं की जाती है। उसे मृतक के परिवार की आर्थिक स्थिति के अनुसार दो-तीन दिन तो रखा ही जाता है। कम से कम एक दिन तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी उसे रखता ही है। वैसे यदि कोई चाहे तो उसे अधिक से अधिक सात दिन तक भी रखा जा सकता है। पर आजकल कोई भी तीन दिन से अधिक नहीं रखता है। उनका विश्वास है कि मनुष्य की आत्मा कम से कम तीन दिन तक उसी शरीर नें रहती है, वह पुनः जीवित भी हो सकता है। अतः उसकी दाह-क्रिया करना पाप है। तीन दिन के बाद उसकी नाक से एक श्वेत रस का स्राव होता है जो कि इस बात का संकेतक होता है कि अब उसकी आत्मा उसके शरीर से निकल गयी है। मृतक के प्राण, आँख, कान, नाक. मुँह, ब्रह्माण्ड, गुदा आदि किसी भी अंग से निकल सकते हैं। शिखा से प्राण निकलने को उत्तम गति, आँखों से मध्यम गति तथा गुदा से निकलने को निकृष्टतम गति का सूचक समझा जाता हैं।

शव को कितने दिन तक रखना है इसका निर्णय स्वयं मृतक के परिवार के लोग करते हैं तथा शव की किस समय में तथा किस दिशा में दाह क्रिया करनी है इसका निर्णय लामा उसके जन्म वर्ष के आधार पर करते हैं। मृतक के सभी सम्बन्धी तथा इष्ट मित्र लोग उस घर में एकत्र हो जाते हैं तथा स्वर्गीय आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करते रहते हैं। शोक संतप्त परिवार के लोगों में रोना धोना चलता रहता है पर वे उस कमरे में नहीं जाते हैं जहां पर शव रखा हुआ होता है। लामा लोग दिन भर धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करते रहते हैं। सायंकाल उन्हें तथा रात्रि में जागरण करने वालों को खूब छङ (स्थानीय सुरा) पिलाई जाती है। शव को रात्रि में अकेला असुरक्षित नहीं छोड़ा जाता है। लोगों का विश्वास है कि असुरक्षित छोड़ देने पर उस शरीर में भटकती हुई प्रेतात्माएँ प्रवेश कर जाती हैं और यह शव विकराल रूप धारण कर लेता है। और उठकर चलने-फिरने लगता है। इसे "रोलाङ" कहा जाता है और रोलाङ् बन जाने पर उसका नियंत्रण कठिन हो जाता है। इसलिये उस पर दृष्टि रखने के लिये कुछ लोग तथा लोहार रात्रि भर जागते रहते हैं। लोहार लोग गर्मी हो तो छत पर अन्यथा पास वाले कक्ष में बैठकर ढोल बजाते रहते हैं। उन्हें पीने के लिए बराबर छङ् दी जाती है।

यदि शव को दो तीन दिन रखा गया हो तो उसे ले जाने से पूर्व स्नान कराया जाता है। स्नान के जल को घर से थोड़ी दूर ले जाकर फेंका जाता है तथा उस पात्र को उल्टा करके वहीं पर छोड़ दिया जाता है। इसे बाद में वापस लाया जाता है। लोहार या रीव्दगपा अर्थी तैयार करते हैं जिस पर कि शव को बैठी स्थिति में बांधकर रखा जाता है। आजकल केलंग आदि प्रमुख स्थानों पर शव को उसकी कुर्सी सहित चारपाई से बांधकर ले जाने लगे हैं। वैसे तो अर्थी को शव के साथ ही जला दिया जाता है किन्तु लोग मूल्यवान् कुर्सी और चारपाई की हानि को सहन नहीं कर सकते हैं अतः उन्हें उस दिन शमशान में ही छोड़कर अगले दिन ले जाते हैं। निर्धारित समय पर रोब्दग्पा शव को बाहर लाकर शवासन (सीट) पर बांधते हैं, उसको सफेद वस्त्र में लपेटा जाता है तथा शवासन के चारों ओर एक पर्दा लगाया जाता है। यह किसी भी रंग का हो सकता है।

अर्थी पर मृतक के पैरों की ओर उसके वस्त्र विशेष का "चौड़ू" (कोट) रख दिया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिसे चलने से पूर्व "मदुम्बा" (अपने लोहार) को दिया जाता है। दिये जाने वाले चोड़ू से लोग मृतक परिवार का उसके प्रति कितना स्नेह है इस बात का अनुमान लगाते हैं। अतः प्रत्येक परिवार अपनी सामर्थ्य के अनुसार अच्छे से अच्छा चोड़ू रखने का यत्न करता है। लामाओं के मन्त्रोच्चारण के साथ शव को घर के अन्दर से बाहर निकाला जाता है।

याङ् खुग पूजा

शव को घर से बाहर निकालते समय एक विशेष अनुष्ठान किया जाता है जिसे "याङ् खुग पूजा" कहा जाता है। "याङ् खुग" का अर्थ है "श्री को वापस लाना"। घर की श्री कहीं मृतक के साथ ही न चली जाये इसलिये एक पोटली में कुछ जेवर बांधकर अर्थी के साथ रख दिये जाते हैं, साथ में एक तीर रखा जाता है जिस पर क्रमशः सा (पृथ्वी), छु (जल), में (अग्नि), लुङ् (तेज), नम (आकाश) का प्रतिनिधित्व करने वाले पीले, हरे, लाल, सफेद और नीले रंग के पांच वस्त्र खण्ड बाँध दिये जाते हैं जो कि उपर्युक्त पंच महाभूतों के प्रतीक होते हैं। अर्थी के घर से चलने से पूर्व लामा मन्त्रोच्चारण पूर्वक इन वस्तुओं को अर्थी से उठाकर किसी ऐसे बालक के हाथ में पकड़ाया जाता है जिसके माता-पिता जीवित हों। अर्थात् जो "फमाछाई" हो। इसके बाद वह बालक उन्हें अन्दर ले जाकर गृहस्वामी को दे देता है और विश्वास किया जाता है कि इसके साथ ही मृतक की स्त्री तथा सद्गुण उस घर में वापस आ गये हैं। इस सेवा के लिये बालक को भोजनार्थ कुछ वस्तु दी जाती है।

अन्त में मृतक की अर्थी को आंगन में रख दिया जाता है। सभी बन्धु जन घुटने टेक कर विदाई देकर घर के अन्दर चले जाते हैं। क्योंकि यहाँ पर स्त्रियाँ तथा सम्बन्धी लोग शव के साथ श्मशान भूमि को नहीं जाते हैं। पताका वाहक, शंख वादक तथा ढोल वादक (लोहार) उस शव की दाहिनी ओर से बाँयी ओर को परिक्रमा करते हैं। इस पर उन्हें कुछ रुपये पैसे भी दिये जाते हैं। इसके बाद रोब्दग्पा (शव वाहक) जो कि गांव के ही लोग होते हैं, अर्थी को कन्धों पर उठा लेते हैं और शव यात्रा प्रारम्भ होती है। इसमें सबसे आगू ढोल वादक (लोहार या गरा), फिर लामा वाद्य इसके पीछे शव वाहक, इसके पीछे शंख वादक तथा पताका वाहक, उनके पीछे शव यात्री होते हैं।

शंख तथा शव पताकाएँ (दरदुङ्) शवयात्रा के आवश्यक अंग होते हैं। शव पताकाओं की संख्या दो होती है। ये आकार में दो गज लम्बी तथा एक गज चौड़ी होती हैं। इनमें दुष्ट ग्रहों के प्रभाव का निवारण करने के लिये चार महाभूतों का प्रतीक रक्त, पीत, श्वेत और नील रंग की चार पट्टियाँ तिरछी और बारह पट्टियाँ आड़ी लगी होती हैं। ये झंडे अर्थी के साथ ले जाये जाते हैं। इनके डंडों को तो अर्थी के साथ ही जला दिया जाता है किन्तु झंडों को वापस लाकर शंख के साथ ही पूजा के स्थान में या गोनपा में संभाल कर रख लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग में मृतक के निमित्त 'कोर्चुम' किया जाता है। "कोर्चुम" का अर्थ है "चक्कर लगाना"। इसमें अर्थी को नीचे रखकर ढोल वादक, शंख वादक तथा पताका वाहक ढोल बजाते हुए उसकी परिक्रमा करते हैं। और प्रत्येक परिक्रमा पर ढोल वादक को पैसे दिये जाते हैं, इसे मृतात्मा के लिये कल्याणकर समझा जाता है। क्योंकि इसमें परिक्रमा करने वालों को प्रत्येक परिक्रमा पर पैसे देने होते हैं, अतः मार्ग में कितनी बार शव को विश्राम करवाना है तथा प्रत्येक विश्राम पर कितनी परिक्रमाएँ करनी हैं इसका निर्णय परिवार तथा निकट सम्बं-धियों की ओर से पहले ही कर लिया जाता है। यह बहुत कुछ परिवार की आर्थिक स्थिति तथा निकट सम्बन्धियों की इच्छा पर आधारित होता है क्योंकि सम्बन्धियों को भी "कोर्चुम" में पैसे देने होते हैं।

दाह क्रिया के निमित्त काष्ठ संकलन

लाहोल में जंगलों के अभाव के कारण मृतक की दाह क्रिया के लिये काष्ठ मृतक के घर से ही ले जाना पड़ता है। गाँव के लोग अपने-अपने घरों से भी एक-एक लकड़ी ले जाते हैं। इसके लिये सर्व प्रथम लकड़ी मृतक के घर की काष्ठ की ढेरी से निकाली जाती है। इसके उपरांत उनका हरिजन सारे गाँव के लोगों को लकड़ी लाने के लिये आह्वान देता है। लक-ड़ियों के ढेर में से लकड़ी निकालते समय जिस बात का विशेष ध्यान रखना होता है वह यह है कि सर्व प्रथम ढेर की जिस लकड़ी पर हाथ लगे उसे ही ले जाने के लिये निकाल लिया जाये। यदि एक लकड़ी पर हाथ लगने के बाद उसे छोड़कर दूसरी लकड़ी निकाली जाये तो इसे बड़ा अशुभकर समझा जाता है। लोगों का विश्वास है कि यह इस बात का संकेतक है कि गाँव में अभी और मृत्यु होगी जिसके लिये पुनः लकड़ी निकालने की आवश्यकता पड़ेगी।

श्मशान भूमि

यद्यपि सामान्यतः प्रत्येक गाँव की एक निर्धारित श्मशान भूमि होती है किन्तु कुछ लोग अपने शवों का अपने निजी खेतों में दाह करना पसन्द करते हैं। शव यात्रा से पूर्व ही लामा लोग पूजा की सामग्री तथा हवन सामग्री लेकर वहाँ पहुंच जाते हैं तथा चिता के लिये स्थान का निर्धारण करते हैं। यदि चिता के लिये बिल्कुल नवीन स्थान निर्धारित करना हो तो वे वहाँ पर पूजा करके "दौर्जे" (वज्र) से उसके चारों ओर एक रेखा खींचकर उसके बीच में उसी से कमल की आकृति अंकित करते हैं। यदि इस स्थान पर पहले भी चिता बन चुकी हो तो वहां पर केवल दोर्जे से गोल रेखा खींचकर बीच में कमल की आकृति मात्र बनाते हैं यदि बोधगया की सिकता या मिट्टी हो तो उस पर थोड़ी सी वह भी बिछा दी जाती है।

श्मशान भूमि में पहुंचते के बाद शव को यहाँ पर रखकर उसके सारे वस्त्र एवं आभूषण उतार लिये जाते हैं और ढोल बजाने वाले हरिजनों को दे दिये जाते हैं। शव यदि स्त्री का हो तो उसके आगे चादर का पर्दा कर लिया जाता है। हरिजन लोग तुरन्त चिता रचना करते हैं। चिता रचना का कार्य पूरा होते ही हरिजन लोग पुनः नवीन शोक धुन बजाने लगते हैं । इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही शव को बैठे हुए रूप में ही चिता में रख दिया जाता है। अर्थी के डंडों के टुकड़े करके उन पर कुल्हाड़ी से सीढ़ियों के निशान बनाकर चिता के चारों ओर खड़ा कर दिया जाता है। ये आत्मा के स्वर्गारोहण के लिये सोपान के प्रतीक माने जाते हैं। कफन को पाँच भागों में फाड़ कर उसके चार टुकड़े चारों सीढ़ियों पर बाँध दिये जाते हैं और एक टुकड़ा चिता पर शव के सिर के ऊपर रख दिया जाता है।

उल्लेखनीय है कि चिता को प्रज्ज्वलित करने के लिये अग्नि मृतक के घर से ही ले जाई जाती है। इसे एक गरा या लोहार भूर्जपत्र के वल्कल में लेकर चलता है। चिता तैयार हो जाने पर मृतक का निकटतम सम्बन्धी उसी भुर्जपत्र की अग्नि से चिता को प्रज्ज्वलित करता तब लामा लोग "मेछोद" (अग्नि पूजा) के उपरान्त धूप, मक्खन तथा अन्न-धान्य से उसमें "जिङ्शा" (हवन) करते हैं तथा लोहार या गरा ढोल को अर्ध गोलाकार स्थिति में रखकर शोक की धुनें बजाते हुए चिता की दाहिने से बाँयीं ओर की परिक्रमा करते रहते हैं।

शंख वादक शंख वादन करते हैं और लामा लोग इसके बाद मृतक के घर आ जाते हैं। शव यात्री शव के पूरी तरह जलने तक वहीं रहते हैं। यहाँ पर शव की कपाल क्रिया करने का कोई विधान न होने के कारण शव को जल जाने पर (रीव्दग्पा) स्नान करके तथा अन्य लोग केवल हाथ मुंह धोकर घर को वापस आ जाते हैं। आधे मार्ग में आकर सभी लोग एक-एक तिनका उठाकर तथा उसके दो-दो टुकड़े करके बिना पीछे की ओर देखे ही सिर से पीछे की ओर को फ़ेंक देते हैं जो कि मृतक के साथ उन लोगों के सम्बन्ध विच्छेद का प्रतीक माना जाता है। ये सभी लोग मृतक के घर पर आते हैं तथा वहाँ पर उन्हें चाय, छङ्, भोजन वगैरह दिया जाता है इसके उपरान्त वे अपने घरों को चले जाते हैं। उस घर में उस दिन भोजन नहीं बनाया जाता है। उन लोगों के लिये उनके रिश्तेदार लोग रोटी, छङ्, सत्तू लेकर आते हैं तथा उन्हें सांत्वना दिलाकर भोजन कराते हैं, किन्तु इसके बाद सभी शव यात्रियों को तीन चार दिन तक दोनों बार भोजन कराना पड़ता है।

ई० बी० टाइलर के अनुसार आदिवासियों में दोहरी अन्त्येष्टि क्रिया की प्रथा इस बात का प्रमाण है कि आदिवासी मृत्यु और चेतना के प्रमेय को नहीं समझ पाता। पहली अन्त्येष्टि क्रिया मृत्यु के बाद की जाती है, जिसमें शव को अन्तिम रूप से गाड़ा या जलाया नहीं जाता है। क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि हो न हो दिवंगत आत्मा लौट आये और दूसरी उस समय की जाती है जब यह निश्चय हो जाता है कि अब दिवंगत आत्मा के लौटने की कोई आशा नहीं है।

दोहरी अन्त्येष्टि का यह रूप भारत ही नहीं अपितु भारत से बाहर भी पाया जाता है। यहाँ पर यह लाहुलों के अतिरिक्त रोड़ा, कोटा और हो जनजातियों में पाई जाती हैं, अंग्रेजी में पहली अन्त्येष्टि को ग्रीन (ताजा) तथा दूसरी को ड्राइ (अन्तिम) फ्यूनरल कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्थि प्रवाह

इससे अगले दिन लौहार ब्राह्म महूर्त में उठकर वहां पर जाकर ढोल बजाना प्रारम्भ कर देते हैं जहाँ पर कि मृतक का दाह संस्कार किया गया होता है। इसके बाद अस्थि संकलन के लिये मृतक के घर के तीन व्यक्ति जाकर एक थैले में अस्थि संकलन करके घोड़े पर रखकर लाते हैं। पहले इस थैले में लकड़ियाँ लगाकर उसका मानवाकार पुतला बनाया जाता था तथा मृतक की स्त्री-पुरुष जाति के अनुसार उसे उसी प्रकार का आकार प्रदान किया जाता था। किन्तु अब लोग वैसे ही थैले को घोड़े पर रखकर ले आते हैं। इसे लाकर वहाँ पर रख दिया जाता है जहाँ पर कि लामा लोग उसकी सद्गति के लिए पूजा पाठ कर रहे होते हैं। आचार्य लामा एक कागज पर "ओम् आहुङ्" लिखकर उस पर रख देता है। घर के सब लोग उसके सामने माथा टेक कर उसे प्रणाम करते हैं। इसके बाद प्रत्येक भोजन के समय उसके सम्मुख मृतक का प्रिय भोजन, चाय, छङ् आदि रखा जाता है जो कि बाद में लोहारों या गरा लोगों को दे दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कि उसके निमित्त घर में "तम्बर्ग्या" पूजा चलती रहती है। पूजा के अन्तिम दिन अस्थियों को चन्द्रभागा के संगम, लाहुल के प्रयाग, तांदी में प्रवाहित करने के लिये ले जाया जाता है। अस्थियों को लेकर जाने वाले लामा के साथ थोड़ी दूर तक लामा वाद्य वादक तथा आधे मार्ग तक ढोल वादक लोहार जाता है वहाँ से आगे फिर लामा और एक निकट सम्बन्धी अस्थियों को लेकर तांदी संगम पर जाते हैं और लामा थैले में से एक-एक अस्थि निकाल कर मंत्र पढ़कर चन्द्रभागा के जल में प्रवाहित करता जाता है। इस प्रकार थैला खाली हो जाने पर उसे घर को वापस ले आते हैं। अब कुछ लोग हरिद्वार भी जाने लगे हैं। बताया जाता है कि करीब ४०-५० वर्ष पूर्व तक यह प्रथा भी थी कि प्रत्येक अस्थि कलश (थैले) में से लामा लोग एक अस्थि बचा कर रख लेते थे। इस प्रकार काफी अस्थियों का संग्रह हो जाने पर उन्हें पीस कर उसमें मिट्टी मिलाकर उसकी टिकियां सी बना लेते थे तथा उन पर छोर्तेन का छापा लगा कर किसी पवित्र स्थान पर रख देते थे। गिल का कथन है कि इसकी शिलाएं बनाकर गुरु घण्टाल गोनपा के ऊपर एक गुफा में रख दी जाती थीं। (१९७४-७९), किन्तु अब यह प्रथा समाप्त हो गई है।

जिस दिन लोग अस्थि चयन के लिये जाते हैं उसी दिन प्रातःकाल से ही घर में मृतक की सद्गति के लिये लामाओं के द्वारा पूजा पाठ प्रारम्भ कर दिया जाता है जो कि तीन से लेकर आठ दिन तक चलता है। पूजा किस प्रकार की हो तथा कितने दिन की हो इसका निर्णय स्वयं परिवार वाले अपनी आर्थिक स्थिति एवं सामर्थ्य के अनुसार करते हैं। यह पर्याप्त व्यय साध्य तम्बर्ग्या के रूप में भी हो सकती है तथा सामान्य व्यय साध्य "छोग्स" (अक्षोभ्य की पूजा) या "मिथुग्पा" या "चरनजी" (अवलोकितेश्वर की पूजा) भी हो सकती है। तम्बेर्ग्या पूजा भी एक या एकाधिक हो सकती हैं। इसमें पूजा के लिये आठ से लेकर दस तक लामाओं की आवश्यकता होती है, तथा पूजा में १०० घी के दीपक जलते हैं और बलि की संख्या भी पर्याप्त होती है। तम्बर्ग्या पूजा का प्रचलन मुख्यतः रक्तवस्त्रीय सम्प्रदाय में पाया जाता है। पूजा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्ति पर लामाओं को दक्षिणा दी जाती है जिसमें कि उमजद को अधिक मिलता है। तथा कुछ रुपये तथा बर्तन गोनपा के लिये भी दिये जाते हैं। इसके बाद वे इस मृत्यु का शुभाशुभ फल बताकर चले जाते हैं।

अशौच काल

उपरिलाहुल में अशौच काल की कोई निश्चित अवधि नहीं और न अशौचकाल में धार्मिक या सामाजिक दृष्टि से किसी प्रकार का कोई वर्जन ही होता है। यथा सम्भव लोग "छोगा" लगाने तक मांस भक्षण का परहेज करते हैं इसके साथ ही वह भी प्रारम्भ हो जाता है।

छोगा (मृतक भोज)

यहाँ पर मासिक या वार्षिक श्राद्ध जैसा कोई मरणोत्तरकालिक अनुष्ठान नहीं किया जाता है और न ही मृतक के नाम पर किसी को भोज देने की ही परम्परा है। किन्तु मृतक के घर वालों की सुविधानुसार कुछ दिनों के बाद एक रस्म की जाती है जिसे "छोगा" कहा जाता है। इसमें उतने दिन तक गाँव के प्रत्येक घर से एक-एक व्यक्ति को दोनों वार भोजन व पान कराना होता है जितने दिन का "छोगा" लगाया जाता है। इसमें मृतक के सभी रिश्तेदार योगदान करते हैं, सभी लोग अपने-अपने घरों से छङ, सतू, मक्खन वगैरह लेकर आते हैं, पट्टन में इस दिन विशेष रूप से "थुग्पा" बना कर मांस भक्षण का प्रारम्भ किया जाता है। कुछ लोग ४९वें दिन भी मृतक भोज का आयोजन करते हैं।

मृतक के निमित्त किये जाने जाने वाले विविध क्रियाकर्म

लामा

मृतक के नाम पर किये जाने वाले अन्तिम क्रिया कर्म को गाहरी में "गेवा" या "तोलमो" कहा जाता है। तिब्बती में तोलमो (शुद्ध रूप तोन्मो) का अर्थ होता है "उत्सव" जो कि मृत्यु के ४९वें दिन के बाद किया जाता है। "गेवा" दो प्रकार का होता है, एक में भाग लेने वालों को पकवान तथा दूसरे में कच्ची भोजन सामग्री दी जाती है। तोलमो में प्रत्येक अतिथि को तथा गाँव में प्रत्येक परिवार के प्रति व्यक्ति को दो-दो बड़ी पूड़ियाँ, जिन्हें "भकसावें" कहा जाता है, दी जाती हैं। गाँव के जो लोग नहीं आ पाते हैं उनका हिस्सा उनके घर के आये हुए सदस्यों या पड़ोसियों के हाथ भेज दिया जाता है।

पट्टन की प्रचलित परम्परा के अनुसार इस दिन उस घर की विवाहित लड़कियाँ अपने-अपने घरों से आटा, तेल और लुगड़ी लेकर आती हैं। इसके पीछे सामाजिक भावना यह है कि उनके विवाह के समय माता-पिता की ओर से जो रुपये पैसे तथा लत्ते कपड़े दिये गये थे उसके प्रतिदान के रूप में वे इस संकट की घड़ी में अपने पीहर वालों की सहायता करें। यह सामग्री लगभग उसी हिसाब से लायी जाती है जिस हिसाब से कि लड़की को विवाह के समय धन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्त्र आदि दिये गये हों। इसमें माँ, बाप के मरने पर सबसे अधिक, भाई के मरने पर कुछ कम तथा दादा दादी के मरने पर थोड़ी सी सामग्री लाई जाती है।

छिग्स

छोटी आयु के बच्चों के मरने पर उनके निमित्त छोटे बच्चों को जो भोजन कराया जाता है उसे गाहरी में "छिग्स" कहा जाता है। यह क्रिया बालक की मृत्यु के उपरान्त सातवें या इक्कीसवें दिन की जाती है। कुछ इसे एक महीने के बाद भी करते हैं। इस दिन मृतक की माँ आमन्त्रित बच्चों के सिर धोती है, उन पर तेल लगाती है, तथा उन्हें घी और खिचड़ी का भोजन कराती है।

थोकफुद

भागा घाटी के क्षेत्र में यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु नई फसल आने से पूर्व हुई हो तो नई फसल प्राप्त कर लेने के बाद मृतक के नाम पर गाँव वालों को एक दिन भोजन कराया जाता है। इसे स्थानीय बोली में "थोकफुद" कहा जाता है।

शुगुरोटी

शुगुरोटी (पट्टनी), शुगुरोची (गाहरी) का अर्थ है "कागज जलाना"। यह मृतक के लिये की जाने वाली क्रिया कर्म की पूर्णाहुति के रूप में सम्पादित की जाती है। यह प्रत्येक व्यक्ति की अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मृतक के निमित्त करवाई जा रही पूजा पाठ आदि के अन्तिम दिन की जाती है। इसके लिये दिनों की संख्या निश्चित नहीं है। सामर्थ्यानुसार तीसरे, सातवें, इक्कीसवें या उन्तालिसवें दिन में से किसी दिन भी करवाई जा सकती है।

इसे शुगुरोटी / शुगुरोची इसलिए कहा जाता है कि इस दिन लामा लोग कागज पर एक मानवाकृति बनाते हैं। उसके हाथ में एक डंडा बनाया जाता है जिस पर कागज पर "आ" (आत्मा) लिखा होता है। इस कागज को पुनः एक तीर (तीराकृतिक लकड़ी की तीली पर) लगाकर मन्त्र पाठ के साथ जोर-जोर से मृतक का नाम पुकार कर अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है। इसके पीछे यह धारणा है कि उस पर आलिखित "आ" आत्मा का प्रतीक है और उसे अग्निसात् कर देने से आत्मा को निर्वाण प्राप्त हो जाता है। यह कार्य पट्टन में तो जंस्कर से आये हुए लामाओं के द्वारा तथा गाहर में शाशुगोन्पा के लामाओं के द्वारा किया जाता है।

पट्टन में लामा लोग शुगुरोटी पर कागज के टुकड़ों पर मृतक का नाम लिखते हैं फिर जोर से उसका नाम पुकार कर उन्हें अग्नि को समर्पित कर देते हैं।

मृतक स्मारक

ऊपरिलाहुल में प्रसिद्ध लामाओं तथा सम्पन्न व्यक्तियों की मृत्यु पर उनकी स्मृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्मारक बनवाने की भी परम्परा है जिन्हें स्थानीय भाषा में "छार्तेन" के नाम से पुकारा जाता है।

बौद्ध धर्म परम्परा में "छोर्तेन" का वही महत्व एवं रूप है जो कि हिन्दू धर्म परम्परा में समाधि का तथा मुस्लिम धर्म परम्परा में मजार का होता है। इसकी संरचना गोल या चतुष्कोण न होकर पिरामिड की भाँति सूची-स्तम्भीय होती है। लाहुल में ये बौद्ध मठों के परिसरों के अतिरिक्त किसी भी प्रमुख स्थान पर पाये जाते हैं। शाशुर गोनपा के निकट ऐसे कई स्मारक हैं। मुख्यत: ये प्रसिद्ध लामाओं के पार्थिव अवशेषों, अस्थियों को संचित रखने के लिए बनाये जाते हैं। उनके पार्थिव शरीर को एक शवपेटी (पुरगम) में रखकर अथवा उनकी अस्थियों को एक अस्थिपात्र में रखकर इसके अन्दर रख दिया जाता है। इसके साथ उसके प्रार्थना चक्र, भोजपत्र पर लिखित प्रार्थना मन्त्रों, थोड़ा सा सोना, चाँदी, मूल्यवान रत्न, धार्मिक मन्त्र, थोड़ा सा अन्न, एक दीपक, सात जलपात्र (कटोरियां), उसके भोजन पात्र (प्याला एवं थाली), भगवान बुद्ध तथा उनके शिष्यों की मूर्तियाँ आदि को रखा जाता है। बौद्ध लोग इनके प्रति बड़ा श्रद्धा भाव रखते हैं तथा देव मन्दिरों के समान ही इन्हें पावन मानकर इनकी परिक्रमा करते हैं।

इसके अतिरिक्त सामान्य गृहस्थ भी अपने किसी प्रियजन की स्मृति में "छोर्तेन" बनवा लेते हैं किन्तु उनके अन्दर अस्थि आदि कुछ नहीं रखा जाता है।

२. निम्न लाहुल की प्रथाएं

चन्द्रभागा घाटी के क्षेत्र में हिन्दू प्रभाव के कारण बौद्धों में अन्त्येष्टि संस्कार का रूप भागा घाटी की बौद्ध परम्पराओं से भिन्नता लिए हुए है। हिन्दुओं के समान ही बौद्ध भी मनुष्य के प्राणान्त काल में उसके मुँह में गंगाजल और सुवर्ण डालते हैं तथा प्राणों के निकलते ही फर्श पर मिट्टी बिछाकर उसे उस पर रख देते हैं। उसी समय अन्त्येष्टि के लिये लामा या भाट को तथा गाँव के ब्राह्मणों को बुलाया जाता है। चाह्ण शोक धुन का ढोल बजाने लगता है जिसे सुनकर गाँव के लोग वहाँ एकत्र हो जाते हैं। मृतक के संगोत्री उसे तुरन्त स्नान कराते है तथा सफेद वस्त्र (कफन) में सीकर एक कम्बल में लपेट कर एक कोने पर रख देते हैं। उसके आगे एक पर्दा भी लटका दिया जाता है।

यहाँ पर किसी सम्प्रदाय में भी शव को रखे रखने की प्रथा नहीं है। जहाँ तक सम्भव हो मृत्यु के दिन ही उसकी दाह-क्रिया कर दी जाती है। मृत्यु यदि सायंकाल के समय या रात्रि में हो जाये तो उसकी दाह-क्रिया अगले दिन मध्याह्न से पूर्व ही कर दी जाती है।

मृत्यु की सूचना प्राप्त होने पर भाट या लामा अपने साथ शंख लेकर आता है और उसे बजाकर मृतक के ऊपर रख देता है तथा उस पर गंगाजल छिड़कता है। उसके सिरहाने एक घी का दीपक जला दिया जाता है। थोड़ा गंगाजल घर के आंगन में उस स्थान पर भी छिड़का जाता है जहां अर्थी तैयार की जाती है। लामा द्वारा किये गये मन्त्र पाठ के साथ ही मृतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को स्नान कराया जाता है और उसके दो निकट सम्बन्धी गले में चादरें डाल कर स्नान कराये हुये जलपात्र को दोनों ओर से पकड़कर गाँव से बाहर ले जाते हैं। वहाँ पर उस पानी को उलट कर उस पात्र को उल्टा करके वहीं पर छोड़ दिया जाता है। उनके आते ही शव को घर के अन्दर से निकाल कर बाहर आंगन में उतारा जाता है तथा अर्थी पर रखा जाता है। यहाँ पर शव को उपरिलाहुल की भाँति बैठी हुई स्थिति में नहीं अपितु लिटाकर रखा जाता है। कफन को शव के शरीर के साथ सिल दिया जाता है। अर्थी में पहले शव के ऊपर एक कम्बल डाला जाता है और उसके ऊपर रंग बिरंगे वस्त्र डाले जाते हैं। इन सबको रस्सियों से बाँध दिया जाता है। इसके साथ ही अर्थी पर मृतक के पैरों की ओर उसके प्रतिदिन पहनने के वस्त्र भी बाँध दिये जाते हैं जिससे कि मृतात्मा को सन्तोष हो ज।ये कि उसकी सारी आवश्यक वस्तुएं उसे दे दी गई हैं। बाद में ये वस्त्र ढोल बजाने वाले हरिजनों को दे दिये जाते हैं। अर्थी पर फूल चढ़ाकर घर के लोग उसकी परिक्रमा करते हैं। इसके बाद मन्त्र पाठ के साथ "याङ्खुग्" पूजा की जाती है। लामा मृतक की छाती पर एक ताज सा रखा जाता है, गृहस्थों के नहीं/ बौद्धों में लामा "याङ्खुग्" पूजा करने के बाद चला जाता है। हरिजन बाजा बजाते हुए शव की परिक्रमा करते रहते हैं। अन्तिम परिक्रमा के साथ वे लोग वहाँ पर रखे हुए पैसों को उठाकर अलग हो जाते हैं। तब मृतक के परिवार के तथा निकट सम्बन्धी लोग उसके आगे झुककर व मस्तक टेककर उसे अन्तिम प्रणाम करके बिदा करते हैं। स्त्रियाँ रोती हुई पीछे रह जाती हैं तथा पुरुष अर्थी को उठाकर चल देते हैं। हरिजन लोग ढोल बजाते हुए आगे-आगे चलते हैं और उनके पीछे-पीछे शव यात्री शव को कन्धों पर उठाकर चलते हैं।

विशिष्ट स्वांगला प्रथा

यहाँ पर बौद्धों तथा स्वांगलाओं की अन्त्येष्टि प्रथाओं में महत्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है। स्वांगला प्रथा के अनुसार भाट आकर मृतक के सिर के पास अपना शंख रखकर उसके पास घी का दीपक जलाते हैं। जब शव को निकालने का समय होता है तो भाट वहाँ पर जौ के आटे से फर्श पर एक मानवाकृति को आरेखित करता है तथा उसके सिर से लेकर दरवाजे के बाहर उस स्थान तक उसी आटे से एक लकीर खींचता है जहाँ तक कि शव के लिये अर्थी तैयार की जाती है। शव को बाहर निकालने तक कोई भी इस लकीर को लांघ नहीं सकता है। इसके उपरान्त भाट पुनः शंख पर गंगाजल छिड़कता है तथा शंख फूंकता है। तब कुछ व्यक्ति शव को इस प्रकार थोड़ा सा उठाकर उस पंक्ति के साथ-साथ चलते हुए उसे अर्थी तक लाते हैं जिससे कि उस पर पड़े कम्बल से वह रेखा मिटती चली जाये। इस समय चाह्ण लोग अपने ढोलों पर शोक धुनें बजाना प्रारम्भ करते हैं। इसके बाद भाट एक दूध का घड़ा (पात्र) तथा गोदान के लिए एक गाय उस शव के पास लाता है। मृतक के परिवार के लोग गाय के चारों खुरों पर रुपये पैसे रखते हैं। भाट एक धागा लेकर उसका एक सिरा मृतक की कनिष्ठा अंगुली के साथ तथा दूसरा अपनी कनिष्ठा अंगुली के साथ बाँधता है फिर "गोत्री" लगाता है, जिसमें गायत्री मन्त्र आदि का पाठ करके गाय के दिव्य महत्त्व का बखान करता है। जिसमें पवित्र गोमूत्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये स्वर्ग से गाय को धरती पर लाने की पौराणिक कथा का वर्णन होता है। मृतक को अपनी अन्तिम श्रद्धाञ्जलि देने के लिये आये हुए सम्बन्धी जन घड़े से दूध लेकर इस गोदान काल में उसे गाय के ऊपर छिड़कते रहते हैं। इस प्रकार गो पूजा पूर्ण होने पर पुनः भाट शव की कनिष्ठा के साथ बंधे हुये धागे को झटका मारकर तोड़ देता है और शंख फूंकता है। गाय को तीन बार दाहिनी ओर से बांयीं ओर को तथा तीन बार बांयीं ओर से दाहिनी ओर को अर्थी के चारों ओर घुमाया जाता है। हिन्दू धर्मशास्त्रों की धारणा के अनुरूप लोगों का विश्वास है कि यह गोदान मृतात्मा को उसकी कठिन परलोक यात्रा में सहायक होता है। वैतरणी की धारणा शायद इन लोगों में नहीं है। चाहृणों में इसे जीवदा (जीवदान) कहा जाता है। मृतक के सम्बन्धी अपनी सामर्थ्य के अनुसार भेड़, बकरी या गाय किसी का भी दान करते हैं। निकट सम्बन्धी विलाप करते हुए अर्थी की परिक्रमा करते ही रहते हैं। कभी-कभी भूमि पर लेट कर उसे प्रणाम भी करते जाते हैं। इसके साथ ही लोग अर्थी को उठा लेते हैं। चाहृणों के ढोल वादन के साथ शवयात्रा प्रारम्भ हो जाती है। स्वांगलाओं तथा हरिजनों में न "याङ्खुग्" पूजा होती है और न "फोवा" ही लगाया जाता है। "गोत्री" लगाने तथा गोदान (साक्षात् या निष्क्रिय रूप में) करने की प्रथा चाहृणों में भी स्वांगलाओं के समान ही पायी जाती है। इसके आगे सभी वर्गों एवं सम्प्रदायों की मृतक क्रियाओं में लगभग एक रूपता पायी जाती है। घर से चलते समय एक टोकरी में मिष्ठान्न एवं पैसे आदि रखे जाते हैं। इन्हें मार्ग में शव के ऊपर से थोड़ा-थोड़ा करके बिखेरते हुए जाते हैं। बच्चे एवं हरिजन लोग इन्हें इकट्ठा करते जाते हैं। मार्ग में अर्थी को विश्राम के लिये कई स्थानों पर उतार कर भूमि पर रखा जाता है। प्रत्येक बार अर्थी के एक सिरे पर एक पत्थर पर मृतक के परिवार के लोग तथा निकट सम्बन्धी कुछ पैसे, थोड़ा सा ऊन व थोड़ा सा अनाज रखते हैं। ढोल वादक हरिजन ढोल बजाते हुए उसकी दाहिनी ओर से बांयीं ओर परिक्रमा करते हैं तथा इन पैसों को उठा लेते है। भाटों को भी इस अवसर पर दान दक्षिणा दी जाती है। ये विश्राम पैसे देने वालों के हिसाब से किये जाते है— अर्थात् यदि पैसे देने वाले अधिक हों तो विश्राम अधिक स्थानों पर किया जाता है यदि कम हों, तो कम स्थानों पर, बौद्धों में लामा तथा हिन्दुओं में भाट अन्तिम संस्कार कराने के लिये साथ जाते हैं।

दाहक्रिया

चिता की स्थापना सभी स्थिति में हरिजनों के द्वारा की जाती है। बौद्धों में हवन आदि की व्यवस्था लामाओं के द्वारा उसी प्रकार की जाती है जैसे कि भागा घाटी में। किन्तु दाह प्रक्रिया के सम्बन्ध में यहाँ के बौद्धों का गाहर के बौद्धों तथा पट्टन के स्वांगला तथा हरिजनों में अन्तर पाया जाता है जो कि इन रूपों में होता है।

शव को चिता पर रखकर दो व्यक्ति (पुत्र, भाई या निकट सम्बन्धी) दो मशालें जला कर चिता के दोनों ओर से परिक्रमा करते हुए एक स्थान पर आकर "मेतुपची" (अग्नि पूजा) करते हैं। इसके बाद पुनः एक बार इसी प्रक्रिया को दुहराते हैं और फिर आकर एक व्यक्ति पैरों की ओर से तथा दूसरा सिर की ओर से चिता को प्रज्ज्वलित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह संस्कार

इन लोगों में यह भी एक विशेष प्रथा है कि यदि मृतक आजीवन अविवाहित है तो इस समय उसका विवाह संस्कार भी किया जाता है। ऐसे व्यक्ति की चिता तैयार होने पर उसके चारों कोनों पर चार लकड़ियाँ गाड़कर उन पर कफन के कपड़े को फाड़कर उसकी पगड़ी बांध दी जाती है तथा चिता प्रज्ज्वलित करने के बाद हरिजन ढोलों पर विवाह की धुनें बजाते हैं जो कि उनके विवाह संस्कार की सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता है। यह संस्कार अविवाहित स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए किया जाता है।

अर्थी के छोटे डंडों को तो हरिजन लोग बीच-बीच में निशान लगाकर दूर से ही चिता का स्पर्श किये बिना उसमें डाल देते हैं किन्तु बड़े डंडों में से एक को रख लिया जाता है। इसे "होलण" कहते हैं तथा इससे शव की दाहान्त में "कपाल क्रिया" की जाती है। यहाँ के बौद्धों में कपाल क्रिया की प्रथा के पीछे हिन्दू प्रभाव स्पष्ट है।

शवयात्री चिता प्रज्ज्वलित हो जाने के बाद वापस आ जाते हैं। केवल दो व्यक्ति अन्त तक वहां रहते हैं। रात्रि की सम्भावना होने पर साथ के लिये कुछ अन्य व्यक्ति भी रह सकते हैं। स्नान केवल वे ही लोग करते हैं जो कि शव को उठाकर ले जाते हैं और अन्त तक रहते हैं। शेष लोग केवल मुँह हाथ धो लेते हैं। आते हुए आधे मार्ग में "तृणच्छेदन" की रस्म भी की जाती है और इसके बाद वे लोग अपने-अपने घरों को चले जाते हैं। उस दिन घर के लोग भोजन में नमक, दूध और मांस का परिहार करते हैं। हाड़ (रक्त सम्बन्ध) के लोग जिस दिन भी उस मृत्यु का समाचार सुनते हैं उसी दिन के लिये भोजन में उपर्युक्त वस्तुओं का परिहार करते हैं। उस दिन उस घर में भोजन नहीं बनता है। निकट सम्बन्धी ही अपने घरों से बना हुआ भोजन लाकर उन्हें खिलाते हैं। हिन्दुओं में दो दिन का उपवास रखा जाता है।

दाह क्रिया के सम्बन्ध में बौद्धों तथा हिन्दुओं (स्वांगला एवं हरिजन) में थोड़ा अन्तर पाया जाता है। हिन्दुओं में दाह-क्रिया का रूप इस प्रकार देखा जाता है—चिता के तैयार होते ही भाट उसकी एक परिक्रमा करता है इसके अन्त में उसे मृतक दक्षिणा दी जाती है तथा चाह्णों को सत्तू के पिण्ड दिये जाते हैं। मृतक के सभी सपिण्ड जो कि आयु में उससे छोटे हों और कर्म कराते हों, उन्हें "भद्र" कहा जाता है। यह कर्म प्रथम बार माता-पिता की मृत्यु पर किया जाता है पर फिर इसके बाद किसी भी अपने से ज्येष्ठ सम्बन्धी के लिये करना पड़ता है। अन्यथा ये लोग मूछों का मुण्डन अशुभ मानते हैं। इसके बाद भाट तथा अन्त्येष्टि करने वाला व्यक्ति मृतक के चेहरे से कफन को हटाता है तथा उसके अन्तिम दर्शन करके उसे चिता पर रख कर शव को सभी ओर से लकड़ियों से ढक दिया जाता है। अन्त्येष्टि करने वाला व्यक्ति घर से ले जायी गयी अग्नि से एक मशाल जलाकर सिर की ओर से चिता की अग्नि प्रज्ज्वलित करता है। भाट मन्त्र पाठ के पूर्व उस पर घी और सरसों के दाने डालता है। अन्त में होलण से उसकी कपाल क्रिया करता है। इसके बाद शव के पूरी तरह जल जाने तथा चिता के शांत हो जाने पर हरिजन उसमें से एक हड्डी को निकालता है और अन्त्येष्टि करने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111122

व्यक्ति उसे भली भांति एक कपड़े में लपेट कर तथा अपने सिर पर रखकर नदी में प्रवाहित करने के लिए ले जाता है। भाट भी उसके साथ जाता है और दोनों जाकर उसे नदी में प्रवाहित करके पुनः वहीं वापस आ जाते हैं। इस समय भाट को कुछ पैसे तथा वस्त्र दिये जाते हैं। स्मरण रहे कि चिता नदी तट पर बनायी जाती है। इसके बाद सभी लोग घर को लौट आते हैं। केवल शव वाहक ही स्नान करते हैं शेष लोग केवल जल के छींटे डाल लेते हैं।

अस्थि प्रवाह

अस्थिसंकलन तथा अस्थिप्रवाह का रूप लगभग उपरिलाहुल का सा ही है किन्तु यहाँ तम्बग्र्या पूजा की परम्परा न होने के कारण अस्थियों को एक दिनके लिए घर में रखकर प्रवाहित करने के लिये ले जाया जाता है। कभी-कभी सम्पन्न घरों में अस्थि कलश को वस्त्राभूषणों से मानवाकार रूप में सजाकर घोड़े की पीठ पर या किसी व्यक्ति की पीठ पर रखकर ले जाया जाता है साथ में ढोल बांसुरी आदि वाजे भी बजाये जाते हैं। भाट तथा लामा भी साथ जाते हैं। तांदी संगम पर जाकर वे वस्त्राभूषण उतार कर भाटों तथा हरिजनों को वितरित कर दिये जाते हैं। सुना जाता है कि पुराने समय में धनी लोग घोड़ा सहित उन्हें दान कर देते थे, किन्तु अब ऐसा कोई नहीं करता।

अशौच काल

बौद्धों में उपरिलाहुल के बौद्धों के समान ही अशौचकाल की कोई निश्चित अवधि नहीं है किन्तु स्वांगला तथा हरिजनों में तेरह दिन का अशौचकाल मनाया जाता है। इन दिनों इनके घर में दिन में तो ढोल तथा बाँसुरी पर शोक धुने बजती रहती हैं और रात्रि को धार्मिक कथा पाठ चलता है। पहले सात दिन मृतक के घर वालों को अपने सगे सम्बन्धियों को दोनों समय भोजन देना होता है, तेरहवें दिन हवन करके शुद्धि की जाती है।

शोकावधि में वर्ज्यकार्य

हरिजनों में पति की मृत्यु पर पत्नी शोक प्रकट करने के लिये उस दिन उलटे वस्त्र धारण करती है। आभूषण उतार देती है तथा अपने सिर पर राख बिखेर लेती है। घर के लोग दो दिन तक उपवास रखते हैं तथा अस्थि प्रवाह तक भोजन में दूध, नमक तथा मांस का प्रयोग नहीं करते। मांस भक्षण का परिहार तो अन्तिम क्रिया कर्म तक चलता रहता है किन्तु लवण का एक मास तक इसके अतिरिक्त घर के लोगों में फूल धारण करना, सोने के आभूषण पहनना, गीत गाना, नये वस्त्र धारण करना, पूला (जूता) पहनना तथा पुरुषों में क्षौर कर्म करना वर्जित होता है।

सामा / पुष्कल

यह मृतक के नाम पर किया जाने वाला अन्तिम कर्म है। उसके नाम पर दिये जाने वाले भोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सामा या पुष्कल) साल के भीतर तथा ६ महीने के बाद किसी भी दिन किया जा सकता है। इसमें सारे गाँव को भोज दिया जाता है जिसमें मुख्यतः छङ् तथा मार्चू दिया जाता है। सम्बन्धी लोग आकर अन्तिम बार मृतक के परिवार वालों को सान्त्वना देते हैं तथा उन्हें फूल भेंट करते हैं। इस दिन से ही वे लोग फूल, सोना, नवीन वस्त्र, पूला आदि धारण करना तथा पूजा पाठ करना प्रारम्भ करते हैं।

मृत्यु यदि किसी युवा व्यक्ति की हुई हो तो इस अवसर पर मृतक के बन्धुजन गाँव के सभी युवकों को बुलाकर उन्हें भोजन कराते हैं तथा पैरों में पहनने के लिए एक-एक जोड़ा "पूला" (घास के जूते) तथा सिर पर लगाने के लिये एक फूल प्रदान करते हैं।

मड़ (मृतक स्मारक)

चन्द्रभागा घाटी में यद्यपि मृतक स्मारक के रूप में छोर्तेन निर्माण की प्रथा अधिक नहीं है किन्तु "सामा" की वार्षिकी क्रिया के अवसर पर किसी पाषाण पट्टिका या काष्ठ पट्टिका पर एक मानवाकृति को उत्कीर्ण करके मृतक की स्मृति में उसे गाँव की परिसीमा पर स्थापित कर दिया जाता है जिसे कि "मड़" कहा जाता है। इस पर घी मल कर उसके सामने धूप जलाई जाती है तथा उसके आगे मृतक के निमित्त भोजन आदि भी रख दिया जाता है।

अस्वाभाविक मृत्यु में विशेष संस्कार

अपघात या दुर्घटना आदि से होने वाली अस्वाभाविक मृत्यु के दुष्प्रभाव को दूर करने के निमित्त एक विशेष प्रथा का अनुपालन किया जाता था। इसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति गले में फांसी लगाकर अपना अपघात कर ले तो उसके निमित्त वहां पर एक काले बकरे को फांसी लगायी जाती थी और यदि कोई पहाड़ से गिर कर मरा हो तो पहले उसी स्थान से, जहां से वह गिरा था, एक काले भेड़े या बकरे को नीचे गिराया जाता था। इस प्रकार से मृत व्यक्ति के शव को घर के अन्दर भी नहीं ले जाते। उसकी सारी क्रियायें बाहर से ही सम्पन्न की जाती हैं। यहां तक कि अस्पताल में मरे हुये व्यक्ति को भी घर के अन्दर नहीं ले जाया जाता है।

शिशुओं की अन्त्येष्टि

छोटे बच्चों का, जब तक कि उनके दूध के दांत बदल नहीं जाते, दाह संस्कार नहीं किया जाता। उन्हें भूमि में गाड़ दिया जाता है। किन्तु उपरिलाहुल में उनके शव को नदी में प्रवाहित करने की प्रथा भी प्रचलित है। इससे अधिक आयु के बच्चों का विधिवत् संस्कार किया जाता है। यद्यपि उनके लिये अन्त्येष्टि के बाद किया जाने वाला क्रिया कर्म बहुत ही संक्षिप्त होता है। शवयात्रा तथा दाहक्रिया के सम्बन्ध में वे सारे धार्मिक अनुष्ठान नहीं किये जाते हैं जो कि प्रौढ़ों के लिए किए जाते हैं। इनके लिये मरणोपरान्त किये जाने वाले क्रिया कर्मों में केवल एक अनुष्ठान किया जाता है जिसे कि "छिग्स" कहा जाता है।[१२]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. गिल, एम० एस० (१९७७) हिमालयन द वण्डर लैण्ड, दिल्ली

२. चक्रवर्ती, एम० तथा डी० मुकर्जी (१९७१) इण्डियन ट्राइब्ज, कलकत्ता

३. दूबे, एस० सी० (१९७७) ट्राईबल हैरिटेज आफ इण्डिया, दिल्ली

४. नेगी, टी० एस० (१९७६) शिडूल्ड ट्राइब्ज आफ हिमांचल प्रदेश, शिमला

५. बेनेडिक्ट, रुथ (१९३४) पैटर्नस् आफ कलचर, बोस्टन

६. घोष, एन० के० (१९५३) कल्चरल एन्थ्रोपोलोजी एण्ड अदर एसेज़, कलकत्ता

७. मजूमदार, डी० एन० (१९४४) रेसेज़ एण्ड कलचर्स आफ इण्डिया, लखनऊ

८. ममगाई, एम० डी० (१९७५) हिमालयन डिस्ट्रिक्ट, गजेटियर : लाहुल एण्ड स्पिति (सम्पा०), शिमला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपन्न बिहार के विकास कार्यक्रमों का एक मानव वैज्ञानिक अध्ययन

सचिन्द्र नारायण

तिहत्तर वर्ष पूर्व, २२ मार्च १९१२ को छोटा नागपुर के पर्वतीय क्षेत्र और पवित्र गंगा नदी के उत्तर और दक्षिण में फैले उपजाऊ मैदानी इलाके को बंगाल से काटकर पृथक बिहार राज्य का गठन किया गया। इस क्षेत्र में आर्थिक विकास की दृष्टि से एक आदर्श राज्य की सारी सम्भावनायें सन्निहित थीं। एक ओर आधुनिक उद्योगों के लिए आवश्यक विपुल खनिज पदार्थ एवं प्रचुर नैसर्गिक सम्पदा युक्त हरित वन क्षेत्र था, तो दूसरी ओर उन्नत कृषि योग्य विशाल उर्वर-भू-भाग और सिंचाई के लिये नदियों एवं प्रपातों का जाल। कृषि और औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं का ऐसा पूरक संयोग दुनिया के बिरले देशों में ही मिलता है। बिहार-वासियों और निर्माताओं की सुखद कल्पना थी कि अपने प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतों का समुचित उपयोग कर बिहार न केवल भारत के राज्यों में अग्रणी रहेगा बल्कि दुनिया के औद्योगिक नक्शे पर बिहार का विशिष्ट स्थान होगा।

परन्तु आज स्थिति ठीक विपरीत है। आजादी के लगभग ३८ वर्ष एवं छह पंचवर्षीय योजनाओं के विकास काल से गुजरने के बाद भी बिहार देश के सर्वाधिक पिछड़े प्रदेशों की श्रेणी में है और विकास के क्रम में अन्य राज्यों की तुलना में दिनानुदिन पिछड़ता ही जा रहा है। यदि क्रम यही रहा तो २१वीं शताब्दी में भी बिहार गरीबी और पिछड़ेपन की छूत की बीमारी से मुक्त नहीं हो पायेगा। प्रति व्यक्ति आय की कसौटी पर बिहार देश के २२ राज्यों में सबसे पीछे है, नीचे से पहले नम्बर पर। सरकारी आँकड़ों के अनुसार बिहार की प्रति व्यक्ति आय मात्र ८७० रुपये है जबकि राष्ट्रीय औसत १५३७ रुपये है। पंजाब की प्रति व्यक्ति आय २६४२ रुपये, महाराष्ट्र की २२२७ रुपये, गुजरात की १८१६ रुपये और पं० बंगाल की १५४५ रुपये है। यहाँ तक कि आसाम, मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा जैसे राज्यों की प्रति व्यक्ति आय बिहार से ज्यादा है। बिहार की प्रति व्यक्ति आय तो कम है ही साथ ही साथ बिहार की प्रति व्यप्ति आय और इसके राष्ट्रीय औसत का अन्तर भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। १९७२-

---

डा० सचिन्द्र नारायण, शोध अधिकारी, अनुग्रह नारायण सिंह समाज अध्ययन संस्थान, पटना–८०१००१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७३ में बिहार की प्रति व्यक्ति आय ४८० रुपये १४ पैसा थी और प्रति व्यक्ति, आय का राष्ट्रीय औसत ७१३ रुपये ६ पैसा था। दोनों में अन्तर करीब ३२.७% था। परन्तु १९८२-८३ में यह अन्तर बढ़कर ४३.४% हो गया क्योंकि प्रति व्यक्ति आय का राष्ट्रीय औसत तो बढ़कर १५३७ रुपये हो गया किन्तु बिहार की प्रति व्यक्ति आय केवल ९७० रुपये तक ही बढ़ी। यह इस बात का द्योतक है कि अन्य राज्यों की तुलना में विकास की गति बिहार में काफी धीमी है या यूँ कहें कि पंचवर्षीय योजनाओं की बिहार की प्रगति में कोई सार्थक भूमिका नहीं रही। विकास दर में वृद्धि भी असंतोषजनक ही रही। १९६०-६१ और १९७७-७८ के दरम्यान राष्ट्रीय आय की विकास दर में ३.४८% बढ़ोत्तरी हुई किन्तु बिहार की विकास दर मात्र २.५०% तक ही रही। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन आंकड़ों में बड़े-बड़े उद्योगपतियों और नवसामन्तों तथा जागीरदारों की आय भी शामिल है। इनकी आय अलग कर दी जाये तो शायद बिहार के आम आदमी की माली हालत में कोई सुधार हुआ प्रतीत नहीं होता है। कई कस्बों, जिलों और कबीलों की माली स्थिति तो और भी बिगड़ी हुयी प्रतीत होती है।

संथाल परगना और छोटा नागपुर में छह पंचवर्षीय योजनाओं के बाद विकास का खर्च ५.२५ लाख रुपये प्रति वर्गइंच आता है किन्तु विकास की दर सर्वविदित है। इन स्थानों में प्रति वर्गइंच जनसंख्या का न्यूनतम भार तीन व्यक्ति आता है, यदि ये रुपये इन्हें यूँ ही दे दिये जाते तो शायद उनकी माली हालत में आशातीत सुधार हो गया होता। बिहार में गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करने वालों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। नेशनल सैम्पुल सर्वे के अनुसार १९७३-७४ में बिहार की ग्रामीण जनसंख्या का ७५.२६% और शहरी जनसंख्या का ५०.५४% अर्थात औसतन ६०.७६% लोग गरीबी रेखा के नीचे थे। १९७७-७८ में यह औसत बढ़कर ७५.०६% हो गया। औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक खनिज साधन बिहार में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। देश के कोकिंग कोयला के भंडार का ९० प्रतिशत साधारण कोयला का ४५% लौह अयस्क भंडार का २५% और अबरख भंडार का करीब ५० प्रतिशत बिहार में है। इसके साथ तांबा, यूरेनियम और औद्योगिक दृष्टिकोण से अन्य महत्वपूर्ण अधातु खनिज पदार्थ जैसे—पाइराइट, क्वार्टज़, लाइमस्टोन, ग्रेफाइट, केन्टोनाइट, फेल-सपार चाइनाक्ले, फायरक्ले, काईनाइट आदि भी यहाँ बहुतायत में पाये जाते हैं। बिहार के जंगलों में विपुल जड़ी बूटियाँ उपलब्ध हैं जिनसे बंगाल और बम्बई की कई बड़ी कम्पनियाँ दवा बना रही हैं जिनका बिहार के लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने में कोई योगदान नहीं है। परन्तु इस विपुल सम्पदा का स्वामी होने के बावजूद देश के औद्योगिक मानचित्र पर बिहार महत्वहीन है। १९७५-७६ के आँकड़ों के अनुसार बिहार में प्रति एक हजार जनसंख्या पर उद्योगों में कार्यरत लोगों की संख्या केवल ५ थी जबकि यह संख्या महाराष्ट्र में १९ और बंगाल तथा गुजरात में १८ थी। उद्यमियों का अभाव, लागत पूंजी की कमी और अनियमित विद्युत आपूर्ति का कारण बताना सरकारी फैशन है किन्तु बिहार के प्रगति में बाधक है।

कृषि के विकास में भी बिहार काफी पीछे है। १९८१ के सर्वे के अनुसार बिहार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनसंख्या का ८७.५% गाँव में रहता है जबकि ग्रामीण जनसंख्या का राष्ट्रीय औसत ७६.३% है। राज्य की कुल जनसंख्या का ७६.९% लोग खेती पर आश्रित हैं—कृषक अथवा कृषक-मजदूर के रूप में। खेती पर जनसंख्या का दबाव अन्य राज्यों की तुलना में काफी अधिक है, क्योंकि बिहार में जनसंख्या का घनत्व ४०२ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जबकि राष्ट्रीय औसत सिर्फ २०८ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या दबाव में वृद्धि और औद्योगिक विकास में कमी का नतीजा है कि बेरोजगारी बढ़ रही है और जोत क्षेत्र अलाभकारी होते जा रहे हैं। बिहार में कुल जोत क्षेत्र ७५.७७ लाख है जिसमें से ४६.५५% ०.५ हेक्टेयर से कम हैं और २ हेक्टेयर से कम के जोत क्षेत्र ७९% हैं। अलाभकारी जोत क्षेत्र के कारण सीमान्त किसान मजदूर की श्रेणी में और मजदूर बेरोजगार की श्रेणी में पहुंच रहे हैं। १९५१ में किसानों और खेतिहर मजदूरों का अनुपात ५७ और १३ का था अर्थात् अगर ५७ लोग ऐसे थे जिनके पास कमो-वेश खेती लायक जमीन थी और १३ लोग भूमिहीन मजदूर। परन्तु १९८१ आते-आते यह अनुपात ३० और ४० प्रतिशत का हो गया अर्थात जमीन वालों की संख्या ५७ से घटकर ४० हो गयी और मजदूरों की १३ से बढ़कर ३० हो गयी। राज्य में अनाज का उत्पादन १९५०-५१ में ४७.७ लाख टन से बढ़कर १९८२-८३ में करीब १०६ लाख टन हो गया। पर उपज का उचित मूल्य नहीं मिलने और बिचौलियों की राजनैतिक संरक्षणता के कारण तथा औद्योगिक और कृषि उत्पादनों के व्यापार शर्तों में असंतुलन के कारण प्रति व्यक्ति आय और जीवन स्तर को पर्याप्त गति नहीं मिल पा रही है।

सिंचाई उन्नत कृषि की रीढ़ है। सिंचाई मद में बढ़ते व्यय के बावजूद सिंचाई क्षमता के सृजन में बिहार पिछड़ा हुआ है। बिहार में कुल मध्यम और बृहद सिंचाई स्रोतों की अनुमानित क्षमता करीब ९२.३० लाख हेक्टेयर है किन्तु अब तक केवल २६.०९ लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता अर्थात् अनुमानित लक्ष्य का मात्र २८.३% ही पूरा हो पाया है। वैसे ही लघु सिंचाई स्रोतों की अनुमानित क्षमता का केवल ४७% अर्थात् ५९ लाख हेक्टेयर में से केवल २५.८९ लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता का लक्ष्य ही अब तक पूरा हो पाया है। कुल मिलाकर बिहार में उपलब्ध कुल कृषि योग्य भूमि के ३१.८ प्रतिशत में ही सिंचाई की व्यवस्था हो पायी है।

बिजली के उत्पादन और खपत में वृद्धि कृषि और उद्योग के विकास की पहली और आवश्यक शर्त है। राष्ट्रीय औसत की तुलना में इस मामले में भी बिहार की हालत निराशा-जनक है। बिहार में केवल ३६.९% ऐसे गाँव हैं जहाँ बिजली पहुंची है। मैंने अपने एक अध्ययन में (१९७९) स्पष्ट रूप से पाया है कि आदिवासियों को बिजली की लाइन लेने के लिये सम्बद्ध अधिकारी के चपरासी और बिचौलिये के साथ-साथ उच्चतम अधिकारियों तक को 'खुश' करना पड़ता है जबकि आर० ई० सी० के तहत उन्हें यह सुविधा निःशुल्क उपलब्ध कराना था। विद्युतकृत गाँवों का राष्ट्रीय औसत ४७.५% है। बिहार में विद्युत उत्पादन की क्षमता कुल राष्ट्रीय उत्पादन क्षमता का २.९% है जबकि बिहार की कुल जनसंख्या देश की जनसंख्या का १०.३५% है। बिहार में बिजली की खपत भी काफी कम है। यह ८१.२८ किलोवाट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जब कि प्रति व्यक्ति खपत का राष्ट्रीय औसत १३०.९४ प्रतिशत है। सड़क यातायात के मामले में भी बिहार अन्य राज्यों से काफी पीछे है। बिहार में प्रति १०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सड़क की लम्बाई केवल ४२ किलोमीटर है, जब कि उत्तर प्रदेश में ६४ किलोमीटर, पंजाब में ९१ किलो मीटर, उड़ीसा में ७४.२१ किलो मीटर और केरल में २३२.४५ किलो मीटर है।

स्वास्थ्य, शिक्षा और पेयजल सदृश आवश्यक सुविधाओं के क्षेत्र में भी बिहार अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाया है। कुल ६७ हजार ५६६ गांवों में से आज भी लगभग १० हजार से अधिक गांवों में पीने के पानी की सुविधा नहीं है। योजना आयोग द्वारा निर्धारित लक्ष्य के अनुसार राज्य में प्रत्येक ५० हजार जनसंख्या पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और २५ हजार जनसंख्या पर एक स्वास्थ्य उपकेन्द्र स्थापित करने के लक्ष्य में भी हम काफी पीछे हैं। बिहार में स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति खर्च केवल १० रुपये ४० पैसे है जबकि राजस्थान में २२ रुपये ५२ पैसे, हिमांचल प्रदेश में ५२ रुपये ८४ पैसे, मेघालय में ५३ रुपये ६२ पैसे, उत्तर प्रदेश में १४ रुपये २४ पैसे और नागालैंड में ९५ रुपये ५ पैसे हैं। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश को छोड़कर बिहार में शिक्षा पर व्यय भी प्रति व्यक्ति सबसे कम है। बिहार में शिक्षा पर व्यय प्रति व्यक्ति ३३ रुपये ८२ पैसे है जबकि केरल में ८४ रुपये ९४ पैसे, हिमाचल प्रदेश में ९४ रुपये ९३ पैसे, नागालैन्ड में १६१ रुपये ३० पैसे प्रति व्यक्ति है। इसका नतीजा है कि ६ से १० वर्ष के ७१% और ११ से १४ वर्ष के केवल २७% बच्चों का ही नामांकन विद्यालयों में हो पाता है। बिहार के ग्रामीण उद्योग भी जर्जर स्थिति में हैं। १९५५ से अब तक ग्रामीण उद्योगों में लगे व्यक्तियों की संख्या में ३८ प्रतिशत की कमी हुई है।

उपरोक्त आंकड़े बिहार के पिछड़ेपन की भयावह तस्वीर का एक पहलू मात्र हैं। आजादी के ३८ वर्षों में न केवल बिहार की गरीबी और पिछड़ेपन में वृद्धि हुई है, बल्कि पिछड़ेपन और गरीबी से उत्पन्न कतिपय समस्यायें इसके विकास गति में रोड़ा बन रही हैं। ये कारण अब इसके सामाजिक-आर्थिक विकास में ठहराव का कारण बन रहे हैं। राज्य के आय का अति निम्न स्तर, अत्यल्प बचत, पूंजी निर्माण में ठहराव, अतिशय अपर्याप्त विकास व्यय, व्यक्ति की अल्प भुगतान क्षमता तथा प्रति व्यक्ति आय एवं व्यय में कमी आदि समस्याओं पर शीघ्र काबू नहीं पाया गया तो विपुल सम्पदा, जनबल एवं बाह्य सहायता के बावजूद राज्य के आर्थिक-सामाजिक विकास की गति को ठहराव के बिन्दु से पीछे की ओर जाने से नहीं रोका जा सकता है।

यूँ तो राजनीतिज्ञ इसके पिछड़ेपन के कारणों में मुख्य रूप से केन्द्र द्वारा शोषण और उपेक्षा की नीति तथा कमजोर एवं स्वार्थी राजनैतिक नेतृत्व को मानते हैं किन्तु एक मानव वैज्ञानिक होने के नाते मैं इससे सहमत नहीं हूं। मैं निम्न कारणों को बिहार के पिछड़ेपन का कारण मानता हूं।

(१) योजना निर्माण कार्य में मानव वैज्ञानिकों का कोई स्थान न होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) क्षेत्रीय विशेषज्ञों को योजना निर्माण प्रक्रिया से न जोड़ना

(३) शोध और मूल्यांकन की रिपोर्टों को योजनाओं में कोई महत्व न देना

(४) क्षेत्र विशेष की समस्याओं के अनुरूप योजना का न होना

(५) क्षेत्रीय जातियों अथवा जनजातियों की समस्याओं के अनुरूप योजना का निरूपण न करना

(६) क्षेत्र विशेष के लोगों का विकास योजनाओं से कटे रहना

(७) क्षेत्रीय विकास के कार्यक्रम के निरूपण का कार्य मात्र प्रबुद्ध वर्ग का अधिकार मानना ।

(८) क्षेत्रीय एवं विषय विशेषज्ञों की विकास योजनाओं में कोई महत्वपूर्ण भूमिका का न होना ।

उदाहरण के लिए संथाल परगना की घटती हुई जनसंख्या वाली सौरीय पहाड़ी जनजाति को साक्षर करने की २ लाख रुपये की योजना । महज ५०,००० हजार की जनसंख्या के लिए प्रौढ़ शिक्षा विभाग द्वारा चलायी जा रही इस योजना में क्षेत्रीय एवं विषय विशेषज्ञों की उपेक्षा के कारण यह २ लाख की योजना बेकार और मात्र राजकीय कोष का अपव्यय सिद्ध हो रही है । पहाड़ियों की संस्कृति और भावनाओं को कोई महत्व दिये बिना बनायी गयी इस योजना के प्रति पहाड़ी न केवल उदासीन हैं बल्कि इसके विपरीत हैं । यदि यह योजना किसी मानव वैज्ञानिक, क्षेत्रिय एवं विषय विशेषज्ञ के सहयोग से उनकी संस्कृति और भावनाओं को उचित सम्मान देकर बनायी जाती तो न यह केवल उन्हें ग्राह्य होती बल्कि उनके वर्त्तमान सामाजिक राजनैतिक आन्दोलन (झारखंड मुक्ति मोर्चा) को सुलझाने में कारगर होती ।

अन्त में, आजकल बिहार के सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन पर लिखना एक छूत की बीमारी हो गयी है और शायद मैं भी इससे प्रभावित हुआ हूं । पिछले दो दशकों से मैं बिहार की समस्याओं पर अपने ही विचारों को अभिव्यक्त करता रहा हूं मुख्यतः आदिवासियों, महिलाओं, बच्चों और हरिजनों के विकास के सन्दर्भ में । यद्यपि उनके विकास के लिये अथक प्रयास किये जाते रहे हैं, योजनाओं और परियोजनाओं की भरमार रही है किन्तु उनकी स्थिति सुधरने के बजाय या तो यथावत है या बिगड़ रही है । बड़े-बड़े राष्ट्रीय, राजकीय परिसंवादों में विद्वान अपने-अपने विचार प्रकट करते रहे हैं किन्तु यह मात्र नदी में एक कंकड़ फेंकने के समान व्यवहार रहा है । विद्वानों और मनीषियों की सन्तुष्टि हो जाती हो किन्तु आम आदमी की स्थिति यथावत रहती है । मैंने एक प्रसिद्ध मानवशास्त्री से जो अन्तर्राष्ट्रीय मानवशास्त्र संघ के प्रधान भी रह चुके हैं, इस विषय पर चर्चा की तो उन्होंने कहा "मैंने नेहरू से लेकर राजीव गाँधी तक इसकी चर्चा की है किन्तु फल सर्वविदित है ।" यह एक बड़ा ही अहम प्रश्न है सभी मानव शास्त्रियों एवं सामाजिक मूल्यांकन शोध से जुड़े विद्वानों के लिये कि वे अपने मन को टटोलें और सोचें कि कमी कहां है । कि उनके विद्वत्तापूर्ण शोध प्रतिवेदनों को केवल कार्गालयों अथवा बैठक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कक्षों की शोभा बढ़ाने का एक उपादान मात्र समझा जा रहा है। यदि सभी शोध प्रतिवेदनों की यह उपेक्षा है तो फिर खानापूर्ति करने की इस परिपाटी से हम अपने आपको क्यों जोड़ें ? यदि वर्त्तमान शोध परम्परा चलती रही तो बिहार की सामाजिक आर्थिक प्रगति की मूल्यांकनों से हमें हट जाना चाहिये अन्यथा इक्कीसवीं सदी का मानवशास्त्र और बिहार हमें कदापि माफ नहीं करेगा। व्यवस्था में बदलाव आवश्यक है। बिहार के विकास को सही दिशा और विकास की गति को तीव्र करने के लिए आवश्यक है कि हमारे प्रतिवेदनों को योजनाओं में उचित स्थान मिले। साथ ही साथ मानवशास्त्रियों को भी इन योजनाओं से जोड़ना आवश्यक है क्योंकि मानवशास्त्री एक सामाजिक चिकित्सक है, वह समाज और विकास की नब्ज को टटोल कर सही दवा लिखेगा जिसकी वर्तमान परिप्रेक्ष में आवश्यकता है। सही दवा और डाक्टर के अभाव में रोगी की मृत्यु हो जाती है। सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का सही समाधान न होने से सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त है। यदि समय रहते इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो अस्त-व्यस्त सामाजिक व्यवस्था एक सामाजिक भूल-भुलैया बन जायेगी जिसे सुलझाना तब शायद सम्भव न होगा। इंगलैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी इत्यादि देशों में मानवशास्त्र की भूमिका को अहम महत्व दिया गया है किन्तु इस देश में इसकी ऐसी उपेक्षा क्यों ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आरक्षण'—एक समाजशास्त्रीय विवेचना

वन्दना शर्मा

देश का सर्वाधिक जलता हुआ सवाल आरक्षण है। मध्य प्रदेश सरकार की नई नीति के कारण देश में एक बार फिर इस पर काफी बहस चल निकली है। आरक्षण जायज है अथवा नहीं ? मध्य प्रदेश के लगभग सभी नगरों में छात्रों द्वारा आरक्षण विरोधी आन्दोलन किया जा रहा है इसका कारण है आरक्षण का प्रतिशत बढ़ाया जाना। अब राजपत्रित नौकरियों में ६२ प्रतिशत, अराजपत्रित नौकरियों में ७७ से ८२ प्रतिशत और मेडिकल, इंजीनियरिंग शिक्षा में ७३ प्रतिशत स्थान आरक्षित हैं, आरक्षण का यह स्वरूप दर्शाता है कि मध्य प्रदेश में आरक्षण जितना अधिक है उतना देश में कहीं नहीं है। यही कारण है कि अनारक्षित जातियों तथा वर्गों में रोष उभरा है और उन्होंने आंदोलन का रुख अपनाया है। इससे आरक्षण का आधार क्या हो ? ये सवाल अक्सर जेहन में उठते हैं, इन पर पर्याप्त चर्चा होना तथा इस चर्चा में आम जन की भागीदारी दोनों ही अनिवार्य हैं। मध्य प्रदेश के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं पिछड़े जिले भिंड के सांख्यिकीय एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन द्वारा जिले के सामाजिक, आर्थिक धरातल पर आरक्षण की बहस चलाई जा सकती है। सामाजिक संरचना—जिले की अधिकांश आबादी हिन्दू धर्म को स्वीकार करती है। धार्मिक आधार पर किये गये जिले के वर्गीकरण को विभिन्न स्तरों पर निम्न तालिका में दर्शाया गया है—

क्रमांक	धर्म	प्रतिशत
१—	हिन्दू	८१.५३
२—	अनु० जाति	२०.५०
३—	इस्लाम	१०.१०
४—	जैन	०७.२४
५—	अनु० जनजाति	०१.१६
६—	ईसाई	००.३७
७—	सिक्ख	००.२४
८—	बौद्ध	००.१०

Source—Census of India—Bhind Distt. 1971

वंदना शर्मा, प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय महाविद्यालय, सतना (मध्य प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिले में ब्राह्मण एवं ठाकुरों की संख्या लगभग समान है। दो दशक पूर्व भिंड जिले में रूपा एवं लाखन नामक दो बागी (दस्यु) काफी प्रसिद्ध रहे हैं। इनकी आपसी खींच तान एक ब्राह्मण की हत्या को लेकर प्रारम्भ हुई जिसका प्रभाव सम्पूर्ण जिले में ब्राह्मण एवं ठाकुर समुदाय पर पड़ा। इनके मध्य जातिगत मतभेद प्रत्येक स्तर पर उभर कर सामने आये। मध्य प्रदेश के मन्त्रि मण्डल में भिंड जिले को सदैव प्रतिनिधित्व मिला। उस जाति के सदस्यों को नौकरियों में प्राथमिकता मिली। क्रमशः ब्राह्मण एवं ठाकुर विवाद बढ़ता चला गया और हरिजन तथा अन्य पिछड़ी जातियां, इस संघर्ष में पिसती रहीं।

आर्थिक संरचना

भिंड जिला वर्तमान म०प्र० निर्माण के पूर्व ग्वालियर स्टेट का एक जिला था, अतः सामंती परिवेश का सम्पूर्ण प्रभाव आज भी इस जिले पर स्पष्ट दिखाई देता है। जमीनों का स्वामित्व ठाकुरों के पास है तथा साहूकारी व्यवसाय के प्रचलन के कारण जैन धर्म के सदस्यों के पास अब पर्याप्त कृषि योग्य भूमि है तथा अन्य उद्योगों एवं बड़े व्यवसायों पर इनका एकाधिकार है। मुसलमान एवं अन्य पिछड़ी जातियाँ सुअर पालन में, चमड़ा पकाने तथा परम्परागत व्यवसायों में रत हैं। ब्राह्मणों के पास अधिकांशतः कृषि का व्यवसाय है।

राजनीतिक संरचना

जिले में तीन राजनीतिक दल प्रमुखतः काम करते रहे हैं कांग्रेस, सोशलिस्ट एवं जनसंघ। ये आपातकाल के पूर्व प्रमुख दल रहे हैं। जातिवाद की जकड़न से राजनीतिक विचार धाराएं भी मुक्त न हो सकीं और नरसिंहराव दीक्षित के नेतृत्व में अधिकांश ब्राह्मण, कांग्रेस तथा स्व० रघुवीर सिंह कुशवाहा (सो०पा०) के नेतृत्व में अधिकांश ठाकुर सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बने।

सामंती आर्थिक परिवेश और जातीय जकड़न के इस माहौल में अनु० जातियों और पिछड़ी जातियों के विकास का मार्ग अवरुद्ध हुआ इस धरातल पर आरक्षण की बहस प्रारम्भ हो सकती है।

हज़ारों वर्षों से ब्राह्मणी सभ्यता ने शूद्रों की सामाजिक चेतना पर रोक लगाने का कार्य किया है। परिणाम स्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में इन जातियों का पिछड़ जाना अवश्यंभावी था। काल्पनिक संस्तरीकरण के दर्शन के परिणामस्वरूप प्रत्येक स्तर पर वास्तविक संस्तरीकरण निर्मित हुआ और समाज की सावयवी संरचना लंगड़ी होकर रह गई। शूद्र और पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व देश निर्माण की प्रक्रिया में शून्य रहा। लोकतंत्र के मूलमंत्र के एक अंश की "जनता द्वारा" हत्या लगातार होती रही। असुरक्षा और अपमानित होने की सम्भावना से अन्य धर्मों में शूद्र और पिछड़ी जातियों का निर्गमन होने से सामाजिक और पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, जिसके दुष्परिणाम आज सामने आ रहे हैं (दलित पेंथर)। समता की अपेक्षा स्वयं को ऊँचे पर विस्थापित करके द्विजों को नीचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाने की कल्पना क्रान्तिकारी भले ही कहलाये, किन्तु प्रगतिशील विचारधारा नहीं बन सकती।

आरक्षण के विरोध में आज बहुत से तर्क दिये जा रहे हैं। मध्यम वर्गीय छात्र की चिंता का विषय यह बनता जा रहा है, कि आरक्षण के परिणामस्वरूप उनका अहित होगा। यह सोच अधिकारी तन्त्र की अधूरी समझ का परिणाम है। बड़े और छोटे पदों पर चयन का आधार देश में जाति, वर्ग, नौकरशाही पर निर्मित होता है। बड़े पदों पर दोहरी शिक्षा नीति, दोगली भाषा नीति के आधार पर वैधानिक मार्ग खोला गया है। शेष उच्च वर्गीय युवा, पिछले रास्ते से उच्च पदों पर पहुंच रहे हैं। मध्यम एवं निम्न वर्गीय छात्रों के लिए बड़े पदों पर पहुंचने की सम्भावनायें वर्तमान व्यवस्था में कम होती जा रही हैं।

रोजगार की सम्भावनाओं की कमी का खतरा युवा पीढ़ी में व्याप्त असंतोष का प्रमुख कारण है। भारतवर्ष में बेकारी विकराल रूप धारण करती जा रही है, जिसमें शिक्षित बेरोजगारी की दशा अत्यन्त दयनीय है। कोठारी कमीशन के अनुसार सन् १९७५-७६ में ४४.३३ लाख और सन् १९८५-८६ में ९०.८५ लाख डिप्लोमा व डिग्री प्राप्त बेकार होंगे। कुल बेरोजगारी का ३३.२ प्रतिशत भाग शिक्षित लोगों का है इनमें ७५ प्रतिशत पुरुष हैं। बेकारी के ये आंकड़े समाज पर दुष्प्रभाव डाल रहे हैं। इससे गरीबी, पराश्रितता, युवकों में आक्रामक प्रवृत्ति एवं चिड़चिड़ापन पनपता है। गुण्डागर्दी, आवारागर्दी को बढ़ावा मिलता है। अस्थायी बेकारी से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क विकृत हो जाता है। ऐसे में आरक्षण की बढ़ी दर के कारण युवकों में अपने भविष्य के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक है। शैक्षणिक पीढ़ियों का भेद भी पद प्राप्ति में समता विरोधी है। हिन्दुस्तान में इस समय तक नौ शैक्षणिक पीढ़ियां उच्च अध्ययन प्राप्त कर चुकी हैं। उच्च अधिकारियों की सन्तानें ६ से लेकर ९वीं पीढ़ी तक उच्च अध्ययन से जुड़ी हैं। इनकी पारिवारिक संस्कृति मध्यम एवं निम्न वर्गीय संस्कृति से नितांत भिन्न है जिसका प्रभाव नई पीढ़ी के शैक्षणिक स्तर पर स्पष्ट दिखायी देता है।

आरक्षण की यह नई नीति समाज में जातिगत भेदभाव को पुनः उकसायेगी। इससे अनारक्षित जातियों और आरक्षित जातियों के बीच में एक गहरी खाई निर्मित हो रही है। विषम अलगाव की स्थिति पनप रही है। अनारक्षित जातियों का निम्न जातियों को प्राप्त इन सुविधाओं के प्रति आक्रोश बढ़ रहा है। आरक्षण के आधार पर निम्न जातियों के व्यक्तियों को उच्च पदों तक पहुंचने के लिए कोई खास परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है। न्यूनतम अंकों के आधार पर ही उनका चुनाव हो जाना इस सवाल को जन्म देता है कि इस तरीके से शासन उन्हें विकसित कर रही हैं या कि पंगु बना रही है?

यदि आरक्षण के लिए आर्थिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन को आधार बनाया जाये तो ४०% से ५०% तक सुरक्षित पदों से मध्यम वर्गीय युवा जन को कोई खतरा नहीं है तथा इस विधान से न केवल उस वर्ग को लाभ पहुंचेगा जिसकी शैक्षणिक सम्भावनाओं को हमारी चरमराती अर्थव्यवस्था और बीमार सामाजिक व्यबस्था ने समाप्त कर दिया है, वरन् समाज की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण संरचना भी स्वस्थ एवं सुन्दर बनेगी ।

इसके साथ-साथ वर्तमान व्यवस्था पर चोट पहुंचाना भी युवा पीढ़ी का कर्त्तव्य है। आरक्षण के नये स्वरूप का रास्ता खोलकर (जो कि आर्थिक व सामाजिक पिछड़ेपन पर आधारित होगा) सुविधा शुल्क प्रदान कर पिछड़े वर्ग को विकसित करना होगा, तभी रोजगार की समतावादी सम्भावनायें उत्पन्न हो सकेंगी ।

सन्दर्भ

1. Economic and Political weekly, Vol. IIXI, 1976 P. P. 915—35
2. Stuart, A. Rice :—Business cycles and unemployment, P. P. 99—109
3. Thorshen, Sellin :—Research Memorandum on the Crime in the Depression, Social Sciences Reasearch council, 1937.
4. Don, D. Lescohier : —The labour market, 1919, P. 107.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगरीय परिवेश में गढ़वाली नारी और परिवार

अनीता सजवान

अध्ययनरीतीय आयाम

गढ़वाली नारी की सामाजिक परिस्थिति पर प्रकाशित अधिकतर वर्णनों का सन्दर्भ गढ़वाल का ग्रामीण परिवेश है। किन्तु प्रस्तुत शोध पत्र का संदर्भ देहरादून का नगरीय परिवेश है। क्योंकि, नगरीय परिवेश में स्थानान्तरण और नगरीकरण के प्रभावों के कारण परिवार के बदलते आयामों ने नारी की सामाजिक परिस्थिति पर क्या प्रभाव डाला है इसका विश्लेषण प्रस्तुत लेख का मुख्य विषय है।

नगरीय परिवेश में स्थानान्तरित तथा सफेदपोश पेशों में लगे, मध्यवर्गी लोगों में सिद्धान्ततः परिवर्तन की गति अधिक तेज हो जाती है। इसलिए मेरे जिस अध्ययन से यह निबन्ध जन्मा है, वह देहरादून में बसे तथा सफेदपोश पेशों में लगे और यदृच्छया चुने गये पचास गढ़वाली राजपूतों में परिसीमित है।

राजपूत ही क्यों ? गढ़वाली सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में अपेक्षाकृत सर्वाधिक साधन-सम्पन्न और गतिशीलता के आधुनिक साधनों, जैसे शिक्षा को अपनाने में सक्षम, उच्च जातियों के (ब्राह्मण, राजपूत) लोग ही अधिकतर गढ़वाल के ग्रामों से नगरीय परिवेश में स्थानान्तरित हुए हैं। स्वयं राजपूत होने के कारण अध्ययनकर्त्ता को फील्डवर्क में मिलने वाली सुगमता और अध्ययन किए जाने वाले समग्र की सजातीयता से मिलने वाले अध्ययनरीतीय लाभ, राजपूतों के चुनाव के प्रमुख कारण रहे हैं। इसके साथ-साथ समय व साधन का दबाव तो है ही।

जैसा कि अभी तक होता रहा है प्रस्तुत अध्ययन पुरुष द्वारा पुरुषों के माध्यम से नारी की सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन नहीं है। यह गढ़वाली नारी द्वारा, गढ़वाली नारियों के माध्यम से, गढ़वाली नारी की सामाजिक परिस्थिति का एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण है। चुने गये परिवारों के पुरुष-कर्त्ताओं की पत्नियों और/या नारी-कर्त्ताओं से एक अनुसूची-प्रश्नावली के आधार पर एकत्रित सामग्री के एक अंश पर यह लेख आधारित है। अनुसूची - प्रश्नावली के

अनीता सजवान, शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, डी० ए० वी० कॉलेज, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ-साथ अवलोकन, साक्षात्कार तथा सूचनादाता–प्रयोग के तकनीकों से बहुत कुछ पूरक सामग्री ली गई है।

इस प्रबन्ध का सारा ठाठ संरचनात्मक उपागम में बंधा है। इसी ठाठ में नारी-परिस्थिति के विश्लेषण में भूमिका की अवधारणा को मुख्य उपकरण बनाया गया है। यहां भूमिका (कर्त्तव्य) और परिस्थिति (अधिकार) का द्वैध नहीं है। आनुभाविक अध्ययन शैली में भूमिका अधिक विश्वसनीय तथ्य है नाकि परिस्थिति। और, जहां भूमिका है वहाँ सामाजिक वृत्त और आदर्श नियम भी हैं। क्योंकि, सामाजिक पद, वृत्त तथा नियमों से ही कर्त्तव्य तथा अधिकार परिभाषित होते हैं।

सूचनादात्रियाँ और समग्र

इक्कीस से लेकर सत्तर वर्ष के बीच आने वाली पचास सूचनादात्रियों की औसत आयु ४२.४६ वर्ष है। अधिकतर (६६%) शिक्षित हैं—प्राइमरी से लेकर बी०ए०/बी०एस-सी० तथा एम० ए० / एम० एस-सी० तक। कुछ ने बी० ए० की व्यवसायिक शिक्षा भी प्राप्त की है।

अधिकतर (७६%) गाँवों में जन्मी हैं और पति के स्थानान्तरण के कारण नगर में स्थानान्तरित हुई हैं। सभी विवाहित हैं और अधिकतम (९२%) का विवाह आयोजित है। केवल छः प्रतिशत ने प्रेम-विवाह किया है और दो प्रतिशत ने अन्तर्जातीय विवाह। उनका एक बहुत ही छोटा अंश (१४%) कामकाजी नारी की भूमिका में है, अधिकतम (८६%) गृहिणी हैं—मध्यवर्गीय गृहिणी।

कोई भी सूचनादात्री गढ़वाल के बहुपति प्रदेश की नहीं है। उनके पति का देहरादून नगर में स्थानान्तरण पौड़ी (७८%), टिहरी (१२%), चमोली (६%) तथा देहरादून (४%) जिले के गाँवों से हुआ है। स्थानान्तरण का प्रमुख कारण नौकरी है। पचास परिवारों की कुल जनसंख्या (३३४) में प्रत्येक एक सौ पुरुषों के पीछे नव्वे नारियां हैं जबकि दे रादून तथा उत्तरकाशी के जिलों को छोड़कर शेष गढ़वाल में नारियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। इसका कारण पुरुषों का अधिक संख्या में नगरों में स्थानान्तरण है?

इस समग्र के कार्यरत पुरुष (६६%), सरकारी नौकरी (४७.३७%) तथा प्राइवेट नौकरी (१४.५४%), सेना (१४.५४%), डाक्टरी तथा वकालत (प्रत्येक ३.६३%), व्यापार (९.९०%), तथा अध्यापन (७.२९%), के पेशों में लगे हैं। कार्यरत महिलायें (११) प्रधानतः (८१.८२%) अध्ययन में हैं। शेष (१८.१८%) सरकारी दफ्तरों में क्लर्क और टाइपिस्ट हैं।

कुल परिवारों में से अधिकतर (६८%) के कर्त्ता अपने निजी पक्के मकानों में रहते हैं। औसतन प्रत्येक परिवार के पास ४.५८ कमरे हैं। वे बिजली (१००%), गैस (६०%), टी० वी० (५०%), फ्रिज (२२%), स्कूटर (३०%), मोटर साइकिल (६%) और कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८%) जैसी आधुनिक सुविधाओं का प्रयोग करते हैं। कुल समग्र में केवल ७.७८% अनपढ़ हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों (२६.९४%) में ग्रेजुएट, पोस्ट ग्रेजुएट के अलावा बी०एड०, एल-एल०बी० और पी-एच०डी० भी हैं। सूचनादात्रियों के पति के भाई की पत्नी, पति की बहिन तथा सूचनादात्री की बहू के स्तरों पर कोई भी अनपढ़ नहीं है और अधिकतर की शिक्षा ग्रेजुएट स्तर तक है।

गढ़वाली ग्रामीण परिवेश में नारी

उत्तर प्रदेश के देहरादून, पौढ़ी, टिहरी, चमोली तथा उत्तरकाशी जिलों में परिसीमित गढ़वाल क्षेत्र ऊँचे-ऊँचे विराट पर्वतों तथा उनमें बहती वेगवती नदियों की घाटियों में बसे गाँवों का क्षेत्र है। यहाँ की कृषि-प्रधान आर्थिक व्यवस्था जंगलों तथा उनमें मिलने वाली जड़ी-बूटियों तथा बद्री, केदार, गंगोत्री और यमुनोत्री के तीर्थाटन से जुड़ी रही है।

परिवार-विवाह-संरचना के दृष्टिकोण से गढ़वाल दो सांस्कृतिक क्षेत्रों में बंटा है—एक, जौनसार-बावर, जौनपुर तथा रवाई का टोंस और यमुना की घाटियों में परिसीमित बहुपति-प्रथा वाला क्षेत्र और दूसरा वह शेष भाग जहाँ बहुपत्नीत्व की प्रथा पाई जाती रही है। जहाँ बहुपति-प्रदेश में पुरुषों की अपेक्षा नारियों की संख्या कम है (भट्ट, गौरी शंकर १९८१) वहाँ शेष गढ़वाल में पुरुषों की अपेक्षा नारियों की संख्या अधिक है (बहुगुणा, अंजली : १९८३)—विशेषतया पौड़ी जैसे क्षेत्रों में जहाँ जंगलों का तेजी से विनाश हुआ है, आधुनिक परिवर्तनकारी शक्तियों का अधिक प्रभाव पड़ा है और जीविका की तलाश में पुरुषों को स्थानान्तरण के लिए विवश होना पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप, गाँवों की जनसंख्या में वृद्धों तथा नारियों की बहुतायत है।

सारे गढ़वाल में नारी आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ है। कृषि में हल लगाने को छोड़कर, शेष कार्यों में वह पुरुषों से अधिक भाग लेतीं तथा श्रम करती हैं। डंगर चुगाना, उनके लिए जंगल से घास पत्ती लाना, उनके रखने के स्थान की सफाई करना, दूध निकालना–बिलोना तथा रसोई बनाना, पीने का पानी लाना, घर-कपड़ों की सफाई तथा रख-रखाव और बच्चे पालना—ये सब नारी के काम हैं। सोलह-सत्रह घंटे दिनचर्या वाली गढ़वाली नारी का जीवन घर से लेकर खेत तथा जंगलों तक प्रसारित है। (बहुगुणा १९८३, भट्ट १९८१)।

इस व्यवस्था में नारी के जीवन में स्कूली शिक्षा का स्थान नगण्य है। जब माँए काम पर जाती हैं या घर के कामों में लगती हैं तो कन्याएं बच्चों को सम्भालती हैं। घर-गृहस्थी तथा कृषि के कामों में कन्या को प्रशिक्षित करना माँ-बाप का धर्म है, क्योंकि, बलिष्ठ तथा खेती और घर-गृहस्थी के कामों में निपुण बहू की मांग अधिक है।

ब्राह्म (दान) तथा आसुर (दाम) विवाह परम्पराओं से बंधी गढ़वाली नारी, चाहे कन्या हो या विधवा, विवाह के मामले में स्वतन्त्र मानी जाती है। कन्या देने का अधिकार मूलतः माता-पिता, भाई और उनके न होने पर चाचा-ताऊ जैसे स्वजनों को है "गढ़वाली खसिया जाति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं बल्कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों में भी एक से अधिक सवर्ण कन्याओं के साथ विवाह करने का रिवाज है" (रतूड़ी, हरिकृष्ण १९८०)।

नारी सवर्ण तथा सजाति विवाह-परम्पराओं से बंधी हैं। बहुपति प्रदेश में ब्राह्मण तथा राजपूतों में विवाह हो जाते थे, हो सकते हैं, पर प्रायः होते नहीं हैं। ब्राह्मण तथा आसुर दोनों प्रकार की विवाह परम्पराओं में नारी विवाह-विच्छेद की अधिकारिणी है। आसुर-विवाह तोड़ने पर पिता द्वारा लिया कन्या शुल्क/शादी खर्च लौटाना नारी का उत्तरदायित्व है। (भट्ट १९८१)।

गढ़वाली नारी के कठिन परिश्रमी जीवन में पर्यवेक्षकों को एक दमित तथा शोषित नारी-जीवन की झलक मिलती है। कुछ भी हो, वहां की उत्पादन प्रक्रिया में नारी की अपनी एक सशक्त भूमिका है। तभी नारी के प्रति परिसम्पत्ति का भाव है। चिपको तथा शराबबन्दी के आन्दोलन में गढ़वाली नारी ने एक सक्रिय भूमिका निभाई है।

परिवार-संरचना : बदलते आयाम

इस लेख के अन्त में दी गई पहली और दूसरी सारणियों में ग्राम और नगर में परिवार के आकार तथा पीढ़ी-रचना की एक संख्यात्मक तुलना प्रस्तुत की गई है। सारणी संख्या एक से पता चलता है कि जहां छोटे आकार के परिवार का प्रतिशत ग्राम में कुछ ज्यादा है, वहां मध्यम तथा बड़े आकार वाले परिवारों का प्रतिशत नगर में ज्यादा है। लेकिन जहां ग्राम में अति बड़े आकार वाले परिवारों का प्रतिशत १८.५ है वहां नगर में उनका प्रतिशत ८ है।

पीढ़ी-रचना सम्बन्धी आंकड़े (सारणी संख्या २) परिवर्तन की दिशा को और भी स्पष्ट करते हैं। नगर में एक पीढ़ी वाले परिवार का संयोग २% है जबकि ग्राम में एक पीढ़ी का एक भी परिवार नहीं है। दो पीढ़ी के परिवारों का संयोग नगर में ७०% है जबकि ग्राम में २९.६% तीन पीढ़ी के परिवारों के संयोग में ग्राम (६६.७%) नगर (२४%) से बहुत आगे है। चौथी पीढ़ी के परिवारों में दोनों की स्थिति लगभग समान है।

नगर में, इस प्रकार, परिवार के आकार की प्रवृत्ति प्रधानतः (८०%) मध्यम से लेकर बड़े आकार की ओर है। कुल जनसंख्या का ८२.३३% इस प्रकार के परिवारों में निवास करता है। अधिकतम (७२%) परिवार एक से लेकर दो पीढ़ी वाले हैं। औसत परिवार ६.६८ व्यक्तियों के आकार तथा २.३ की पीढ़ी में संकुचित हो गया है। तीस प्रतिशत सूचना-दात्रियों के पतियों ने अपने पिता के परिवार से बंटवारा किया है जबकि उनके पुत्रों में से केवल चौदह प्रतिशत ने। यह स्थिति इस टिप्पणी से मेल खाती है कि "यदि पिता और उसके विवाहित पुत्रों के बीच बना संयुक्त परिवार बिरले ही बंटता है तो भाइयों के बीच बना संयुक्त परिवार बिरला ही जीवित रहता है" (निकोलस १९६१)।

परिवार-रचना की बदलती प्रवृत्ति ने परिवार की स्वजन-संरचना को प्रभावित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सूचनादात्रियों को आधार मानकर कुल जनसंख्या का स्वजन-सम्बन्धों में वर्गीकरण (सारणी संख्या ३) करने से पता चलता है कि कुल जनसंख्या में सूचनादात्रियों तथा उनके पतियों का प्रतिशत २७.२३ है तथा उनके पुत्र, अविवाहित पुत्रियों, पुत्र-वधुओं तथा पौत्र-पौत्रियों का प्रतिशत ६२.४३ है। शेष (१०.३४%) में सूचनादात्रियों के पति के माता-पिता, पति के भाई, उनकी पत्नियां तथा बच्चे, ननदें और बहिनें आती हैं। दो पीढ़ी के औसत वाला परिवार मूलतः कर्त्ता, उसकी पत्नी, अविवाहित पुत्र-पुत्रियों तक ही सीमित है। क्योंकि, कुल में पुत्र-वधुओं और पौत्र-पौत्रियों का प्रतिशत केवल ८.३४ है।

इस स्वजन-रचना में नारी की दो मुख्य भूमिकायें बनती हैं—एक कन्या की और दूसरी पत्नी की। पुत्री, पौत्री, बहिन, ननद और बुआ (पिता की बहिन) ये रोल-सेट कन्या की भूमिका के ही स्वजनी विस्तार हैं। उसी प्रकार, पत्नी (गृहिणी) मां, सास, दादी, देवरानी, जेठानी तथा परिवार की कर्त्ता होना पत्नी की भूमिका से निकले हुए रोल-सेट हैं। नगर में बदलती परिवार-संरचना, जीवन शैली तथा जीवन दृष्टि के कारण नारी के रोल-सेट भी बदल रहे हैं।

नारी-भूमिकाएं

कन्या-नगरीय परिवेश में गढ़वाली कन्या भी अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती है लेकिन ग्रामीण परिवेश की कन्या की भांति वह मुख्यतया "बेबीसिटर" नहीं है। ग्रामीण परिवेश के विपरीत यहां उसकी स्कूली शिक्षा के अधिकार को अधिक स्वीकृति मिल रही है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सूचनादात्रियों में केवल ३४% ही अनपढ़ हैं और शेष की शिक्षा मिडिल स्कूल के स्तर से लेकर पोस्ट ग्रेजुएट. तथा एल-एल० बी० और बी० एड० तक है। सूचनादात्रियों के अलावा कुल समग्र में जो भी नारियां हैं वे सभी की सभी शिक्षित हैं या शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

इस अध्ययन के समग्र में कन्या का जीवन मां के साथ घर से लेकर खेती तथा जंगलों के कामों तक ही सीमित नहीं हैं। शिक्षा के साथ-साथ उसे बाहर के कामों में भाग लेने की अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता है लेकिन मां-बाप के अनुशासन में रहते हुए। यहां भी विवाह में कन्या देने का अधिकार पिता को है। हां, यह अवश्य है कि वर-कन्या से चुनाव में ग्रामों की अपेक्षा नगर में माँ का प्रभाव तथा अधिकार बढ़ रहा है।

कामकाजी तथा कमाऊ कन्या का आयाम गढ़वाल के गांवों की अपेक्षा नगर में अधिक विकसित हो रहा है। कुल समग्र में चार अविवाहित पुत्रियां नौकरी करती हैं। इन अविवाहित पुत्रियों में तीन अर्थात् ७५% अपनी सारी आय सूचनादात्रियों को दे देती हैं और उनमें से दो अर्थात् ५०% की आय दहेज के लिए जमा की जाती है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गढ़वालियों में दहेज का उस रूप में प्रचलन है जहां वह एक आर्थिक-सामाजिक समस्या बन जाता है। यहां आसुर विवाह में भी दहेज के रूप में कन्या को वर्तन, वस्त्र, आभूषण तथा गाय इत्यादि देने की परम्परा रही है। लेकिन, नगरीय परिवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जहाँ भौतिक जीवन दृष्टि का प्राधान्य हो रहा है, घर-गृहस्थी में आधुनिक सुख-सुविधा की प्रतिष्ठित वस्तुओं तथा उपकरणों को देने का रिवाज बढ़ रहा है। इस प्रकार, धीरे-धीरे गढ़वाली कन्या भी दहेज की चपेट में आ रही है।

परम्परागत जीवन दृष्टि में पुरुष को प्रधानता मिली हुई है। पुत्र की कामना भी अधिक की जाती है। मुण्डन जैसे संस्कार से भी कन्या वंचित है। लेकिन, फिर भी, गढ़वाल में कन्या भार नहीं रही है क्योंकि उत्पादन में वह सक्रिय सहयोग देती रही है। कन्या-विवाह समस्या नहीं रही है। लेकिन नगरीय संस्कृति में जहाँ नारी अपनी सक्रिय उत्पादक की भूमिका खो चुकी है. यह स्थिति धीरे-धीरे बदल रही है। नगर में नारी उत्पादक नहीं, उपभोक्ता मात्र रह गयी है।

गड़वाली ग्रामीण परिवेश की कृषि पर आधारित सामाजिक-आर्थिक संरचना में विवाहित कन्या को पिता के घर में कुछ विशेषाधिकार मिलते हैं जैसे तीज-त्यौहार पर मिलने वाला नेग और जाड़ों में पिता के घर आमन्त्रित किये जाने वाला विशेष अधिकार। नगरीय परिवेश में ये विशेषाधिकार उस रूप में नहीं हैं लेकिन विवाह के बाद कन्या का अपने पिता के घर से प्रगाढ़ सम्बन्ध बना रहता है। उसका एक कारण है। अधिकतर विवाहों का देहरादून में या उसके आस-पास होना। जैसा कि रॉस (१९६२) ने लिखा है यहाँ भी माँ की मृत्यु के बाद बड़ी बेटी का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है।

विवाह परम्परायें और नारी

नगरीय परिवेश में ब्राह्म तथा आसुर परम्पराओं का संगम हो गया है और वे अलग-अलग भी हैं। जैसा कि गड़वाल के ग्रामीण परिवेश हैं, यहां भी वर-पक्ष की ओर से कन्या मांगी जाती है जो कि आसुर विवाह का एक मुख्य आधार है। देहरादून के गढ़वाली राजपूतों में पहले कन्या पक्ष के लोग वर चुन लेते हैं; फिर वर-पक्ष वाले कन्या मांगने आते हैं और बाद में सारा विवाह ब्राह्म परम्परा से होता है। इस अध्ययन के समग्र में केवल तीन केस ऐसे मिले जिनमें शादी के खर्चे के रूप में कन्या शुल्क लेकर तथा कन्या की बारात वर-पक्ष के घर ले जाकर कन्या दी गई। परम्परा से गढ़वाली नारी को विवाह-विच्छेद का अधिकार रहा है जो विवाह सम्बन्धी नये कानून से और भी प्रतिरोपित हो गया है। विवाह-विच्छेद के तीन केस मिले हैं एक में पति ने पत्नी को छोड़ा है और दो में नारियों ने अदालत से विवाह-विच्छेद किया है।

पत्नी

पत्नी के रूप में नारी के अधिकार तथा कर्त्तव्य विवाह की मर्यादाओं से प्रतिफलित होते हैं। देहरादून के गढ़नाली राजपूतों में गढ़वाली नारी की पत्नी की तस्वीर एकदम बदल गयी है। परिवार के छोटे होते हुए आकार के कारण पत्नी पति के अधिक समीप आ गई है और गृहस्थी के संचालन में उसकी भूमिका अधिक अहम और उत्तरदायित्वपूर्ण बन गई है।

पत्नी को सम्पत्ति अधिकार मिले हुए हैं। पत्नी अपने मृत पति की सम्पत्ति की उत्तरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिकारिणी है। लेकिन परिवार-विभाजन में न तो पुत्री के रूप में उसकी राय ली जाती है और न पत्नी के रूप में।

कामकाजी पत्नी अर्थात् कमाऊ पत्नी नारी की आर्थिक भूमिका में एक नया आयाम है जो शहरों में विकसित हुआ है। कुल सूचनादात्रियों में १४% कामकाजी महिलायें हैं। इनमें से कुछ पतिविहीन हैं। जिनके पति भी कमाते हैं उनमें से अधिकतर अपने पति के साथ संयुक्त खाता रखती हैं और ६२% सूचनादात्रियाँ बैंक में अपना खाता अलग रखती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नगरीय परिवेश में पत्नी के अधिकार बढ़ने के साथ-साथ अधिक स्पष्ट हो गये हैं।

नारी-कर्त्ता

कुल सूचनादात्रियों में से ८% का परिवार की कर्त्ता होना एक बदली हुई परिस्थिति का द्योतक हैं। परम्परागत परिवार-संरचना में यह स्थिति कल्पना से परे है। ये नारियाँ यद्यपि परिस्थितिवश अपने परिवार की कर्त्ता बनी हैं फिर भी उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस अध्ययन के समग्र तथा उसके सामाजिक परिवेश में नारी-कर्त्ता का पद स्वीकृत है। इसका एक प्रमुख कारण बदली हुई आर्थिक संरचना का परिवार पर प्रभाव है। इस सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि चार नारी-कर्त्ताओं में से तीन कामकाजी नारियाँ हैं।

कर्त्ता की पत्नी

कर्त्ता की पत्नी के रूप में परिवार की सत्ता में नारी का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। परिवार में नारी की सत्ता उस कालावधि पर भी निर्भर करती है जो उसने अपने पति के परिवार में बिताई है। पति के परिवार में नारी एक तरुणी के रूप में प्रवेश करती है। उस समय वह पति से अधिक अपने सास-श्वसुर और पति के अन्य सम्बन्धियों के आश्रय तथा दबाव में होती है। आज निरन्तर बढ़ते हुए स्थानान्तरण तथा परिवार-विभाजन के कारण नगरीय परिवेश में बहू पर से सास का परम्परागत आधिपत्य कम होता जा रहा है यद्यपि आज भी जहाँ तक हो सकता है बहू सास का आधिपत्य स्वीकार करती है। लेकिन उसमें विरोध तथा विद्रोह की प्रवृत्ति भी बढ़ गई है।

माँ

स्थानान्तरण से मां के अधिकार और कर्त्तव्य बढ़े हैं। जैसा कि रॉस ने लिखा और इस अध्ययन से भी पुष्ट होता है, माँ बनने के साथ-साथ नारी की सत्ता में बढ़ोत्तरी आती है। नगरीय परिवेश में भी पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक अच्छा माना जाता है। इसलिए, पुत्रवती माँ को अपेक्षाकृत अधिक मान और सत्ता मिलती है।

पति तथा पिता के समक्ष पत्नी-मां के अधिकार आज बढ़ गये हैं। सन्तान पर माँ की सत्ता की दो अवस्थायें हैं—एक, विवाह के पहले की और दूसरी, विवाह के बाद की। सन्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कमाऊ होना या न होना भी सन्तान पर माँ की सत्ता को प्रभावित करता है। ऐसा देखा गया है कि विवाहित और कमाऊ पुत्रों पर आज मां की वह सत्ता नहीं है जो परम्परागत संरचना में थी। कमाऊ पुत्र प्रायः अपना अलग घर बना लेते हैं। यदि वे साथ भी रहते हैं तो वे अपनी सारी की सारी आय मां को नहीं देते हैं। पुत्र की अपेक्षा पुत्री पर माँ का अधिक आधिपत्य रहता है और पुत्री माँ की अधिक सहयोगी तथा शुभचिन्तक रहती है।

एकाकी परिवार में, विशेषतः शहरी परिवेश में, पिता और मां तथा पति और पत्नी में एक नया श्रम-विभाजन आया है जिसमें मां के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य बढ़े हैं। माँ वस्तुतः वह धुरी है जिस पर परिवार घूमता है।

टिप्पणियाँ

१— प्रस्तुत लेख मेरी प्रॉजेक्ट रिपोर्ट 'देहरादून में बसे गढ़वाली राजपूतों के विवाह और परिवार में नारी की परिस्थिति' (१९८४) पर आधारित है। इस लेख के लिखने में मैं अपने अध्यापक प्रोफ़ेसर गौरी शंकर भट्ट, अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, डी०ए०वी० कालेज, देहरादून से मिले मार्ग-दर्शन तथा उत्साह-वर्धन के लिए उनकी आभारी हूं।

२— यहाँ प्रस्तुत पहली और दूसरी सारणियों में दिए गए ग्राम सम्बन्धी आंकड़े मैंने अपने अग्रज सहपाठी श्री शिव दयाल ढौंडियाल की प्राजेक्ट रिपोर्ट "गढ़वाल के एक ग्राम–समुदाय से स्थानान्तरण के संरचनात्मक पहलुओं की एक विवेचना" (१९८३) से लिए हैं। मैं उनके प्रति भी आभारी हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—१

ग्रामीण तथा नगरीय परिवेश में परिवार का आकार

सदस्य संख्या और आकार	ग्राम	नगर
१— ३ छोटा परिवार	४	६
	१४.८%	१२%
४— ६ मध्यम परिवार	११	२४
	४०.८%	४८%
७— ९ बड़ा परिवार	७	१६
	२५.९%	३२%
९— ९ से अधिक : अति बड़ा परिवार	५	४
	१८.५%	८%
योग	२७	५०
	१००%	१००%

सारणी—२

ग्रामीण तथा नगरीय परिवेश में परिवार-पीढ़ी-रचना

पीढ़ी-संख्या	ग्राम	नगर
१. पीढ़ी	—	१
		२%
२. पीढ़ी	८	३५
	२९.६%	७०%
३. पीढ़ी	१८	११
	६६.७%	२४%
४. पीढ़ी	१	२
	३.७%	४%
योग	२७	५०
	१००%	१००%

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—३

नगरीय परिवेश में परिवार-स्वजन-रचना

क्र०सं०	सम्बन्धी श्रेणियाँ	संख्या	प्रतिशत
१—	सूचनादात्रियाँ	५०	१४.९६
२—	सूचनादात्रियों के पति	४१	१२.२७
३—	सूचनादात्रियों के पुत्र	११२	३३.५३
४—	सूचनादात्रियों की वधुएं	२०	५.९८
५—	सूचनादात्रियों के पौत्र-पौत्री	८	२.३६
६—	सूचनादात्रियों की पुत्रियाँ	६९	२०.५६
७—	सूचनादात्रियों के पति की माता	८	२.३६
८—	सूचनादात्रियों के पति के पिता	६	१.८०
९—	सूचनादात्री के जेठ	१	.३
१०—	सूचनादात्री की जेठानी	१	.३
११—	सूचनादात्रियों के देवर	६	१.८०
१२—	सूचनादात्रियों की देवरानी	३	.९
१३—	सूचनादात्रियों के भतीजे-भतीजी	५	१.४८
१४—	सूचनादात्रियों की ननद	३	.९
१५—	सूचनादात्री की बहिन	१	.३
		३३४	१००%

सन्दर्भिका

ढौंडियाल, शिवदयाल १९८३ "गढ़वाल के ग्राम समुदाय से स्थानान्तरण के संरचनात्मक पहलुओं की एक विवेचना" : अप्रकाशित प्रोजेक्ट रिपोर्ट; समाजशास्त्र विभाग; डी० ए० वी० कालेज, देहरादून ।

निकोलस, राल्स डब्ल्यू० १९६१ "इकनोमिक्स आफ फेमिली टाइप्स इन टू वेस्ट बंगाल विलेजेज" द : इकनोमिक वीकली : वाल्यूम १३ संख्या २७,२८,२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुगुणा, अंजली १९८३ वुमन्स पार्टीसिपेशन इन दि इकानमी आफ गढ़वाल:, हिमालय-निवासी और निसर्ग, वर्ष ७ संख्या ६७; हिमालय सेवा संघ, राजघाट, नई दिल्ली।

भट्ट, गौरीशंकर १९८१ "एक बहुपतीय समाजार्थ व्यवस्था मे नर-नारी समायोजन" : मानव वर्ष ९ अंक १, इथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी; लखनऊ।

मदन, टी० एन० १९६३ दि ज्वाइंट फ़ेमिली—ए टर्मिनालाजिकल क्लियरीफिकेशन : मोगे, जॉन द्वारा सम्पादित, फेमिली एण्ड मैरिज, में : ब्रिल, लेडेन, नदरलैण्ड्स।

रतूरी हरिकृष्ण १९८० गढ़वाल का इतिहास; भागीरथी प्रकाशन, टिहरी।

रॉस, ऐलन डी० 'दि हिन्दू फेमिली इन इट्स अरबन सेटिंग' : यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्तर जिले के अबूझमाड़ क्षेत्र की जनजातीय संस्कृति

जी० पी० पटेल

परिचय

बस्तर जिले के अबूझमाड़ क्षेत्र में मुरिया एवं मारिया जनजाति निवास करती हैं। इस जनजाति के लोग बहुत ही सीधे सादे होते हैं। यह क्षेत्र तीन तहसीलों में बंटा है।

(१) नारायणपुर

(२) बीजापुर

(३) दतेवाड़ा

यह सम्पूर्ण क्षेत्र जंगली है। यहां की मढ़ई काफी प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र के सम्पूर्ण लोग मढ़ई में भाग लेते हैं। इस मढ़ई का यहां के लोगों के लिये बहुत अधिक धार्मिक महत्व है। यहां के आदिवासी शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार के होते हैं। सन् १९८१ की जनगणना के अनुसार कुल ग्रामों की संख्या २०३ है। डब्ल्यू० व्ही० ग्रिग्रसन के अनुसार सन् १९३१ में यहां की जनसंख्या ११,५०० थी। सन् १९४१ के अनुसार यहां की जनसंख्या १३,००० थी; इसके बाद के आंकड़े प्राप्त नहीं हो सके। इस क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि की दर बहुत कम है।

शारीरिक बनावट

यहां के लोगों की औसत ऊँचाई ५.१०" है। राय एवं मजूमदार के अनुसार इन लोगों की ऊँचाई ५.८" है। पवार के अनुसार यहां के लोगों का मुँह चौड़ा एवं होठ मोटे होते हैं। नाक चपटी होती है। पुरुषों में मूँछ पाई जाती है। अबूझमाड़ के लोग अपने शिर पर बोझा कभी नहीं ले जाते, यह कार्य स्त्रियों का है। पुरुष अपने कंधों पर बोझा ले जाते हैं। पुरुष एवं महिलायें औसतन ४० से ५० किलो मीटर प्रतिदिन पैदल चलते हैं।

डा० जी० पी० पटेल, मानवशास्त्री, १०४, एल० आई० जी०, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल (म० प्र०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदतें

यहां के आदिवासी ठंड के दिनों में २ दिन में एक बार नहाते हैं एवं गर्मी के दिनों में प्रतिदिन नहाते हैं। पुरुष एवं महिलाओं के नहाने का स्थान अलग-अलग रहता है। ये लोग निर्वस्त्र होकर नहाते हैं।

ये लोग काफी हंस-मुख होते हैं, ये आपस में हंसी मजाक बहुत करते हैं। बहुत ही कम लोग निराशावादी प्रवृत्ति के होते हैं। शासकीय दवाइयों पर भरोसा नहीं करते। स्वभाव से बहुत सादे होते हैं। जब कोई व्यक्ति इनके गांव पहुंचता है, तो काफी सहयोग करते हैं। इन लोगों की बातचीत का ढंग बहुत ही सरल होता है।

रहन-सहन

शरीर में बहुत कम कपड़े पहनते हैं। आम तौर पर पुरुष शर्ट पहनते हैं, एवं औरतें ब्लाउज पहनती हैं। लड़कियां छोटी साड़ी पहनती हैं लड़के लुंगी पहने हुये भी दिखाई देते हैं। महिलायें गले में मोटा हार पहनती हैं।

मकान

इनके मकान एकदम अस्थाई होते हैं। एक बार बनाने के बाद ये लोग उसे सुधारते नहीं हैं। दूसरा बना लेते हैं। आमतौर पर यह देखा गया है कि हर पांच वर्ष में नया मकान बना लेते हैं। खाना बनाने के कमरे में कभी-कभी पति-पत्नी सो जाते हैं। इनका मकान पांच भागों में विभक्त रहता है।

(१) अहगी :— इसमें बाहर के लोग आ जा सकते हैं।

(२) अहपानी :— यह खाना बनाने का कमरा है।

(३) आगता :— यह पति के लिए सोने का कमरा है। एवं इसमें सामान वगैरह भी रखा जाता है

(४) सेन्टम :— इसमें बाहर के लोग आ जा नहीं सकते। यहां तक कि पत्नी भी जब मासिक धर्म में रहती है वह यहां नहीं आ जा सकती।

(५) वेंडू कुरमा :—मासिक धर्म के समय यहां पत्नी बैठी रहती है।

आमतौर पर यहां के आदिवासी जंगल में एक झोपड़ा बनाये रहते हैं। इसे सिहारी कहते हैं। इसमें वह अपनी पत्नी के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ये लोग दिन में संभोग करना ज्यादा पसंद करते हैं। रात में ये लोग अपनी पत्नी से अलग सोना पसंद करते हैं, इनके घरों में एल्यूमिनिएम के बर्तन पाये जाते हैं। नारियल की रस्सी अपने हाथ से बनाते हैं एवं मछली का जाल भी अपने हाथ से बनाते हैं। सोने के लिए चटाई भी अपने हाथ से बनाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन संबंधी आदतें

ये लोग जंगल से कन्दमूल फल इत्यादि लाकर खाते हैं। मसाले बिल्कुल नहीं खाते, आम तौर पर उबला भोजन ज्यादा पसंद करते हैं या आग से भुना हुआ भोजन भी करते हैं। ये लोग शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन करते हैं।

मद्यपान

यहां के आदिवासी लांदा, सल्फी एवं शराब बहुत पसंद करते हैं। महिलायें एवं बच्चे भी शराब पीते हैं। पुरुष बीड़ी भी पीते हैं।

गोत्र

रायबहादुर पंडा के अनुसार अबूझमाड़ में १५९ गोत्र पाये जाते हैं। ग्रिग्रसन के अनुसार सिर्फ ५० गोत्र पाये जाते हैं। डॉ० के०सी० दुबे के अनुसार ९१ गोत्र पाये जाते हैं। अबूझमाड़ के गोत्रों को दो भागों में बांटा गया है।

(१) दादाभाई (२) अकोमामा

दादाभाई गोत्रों के बीच लड़के लड़कियों का आपस में विवाह करना निषेध है। मुख्य रूप से गोत्र का कार्य विवाह के सम्बन्धों में नियंत्रण बनाये रखने का है। जिस ग्राम के बीच कई गोत्र के लोग रहते हैं उन ग्राम में निवास करने वाले व्यक्तियों के बीच अच्छे सम्बन्ध नहीं रहते। जिस ग्राम में सिर्फ एक ही गोत्र के लोग रहते हैं उस ग्राम के लोगों के बीच आपस में मधुर सम्बन्ध रहते हैं।

घोटुल

मुड़िया घोटुल में लड़के लड़कियों का एक ही घोटुल रहता है। एक ही गोत्र के लड़के लड़कियां आपस में भाई बहन माने जाते हैं। घोटुल गांव के समस्त लड़के लड़कियों की शिक्षा का स्थान माना जाता है। शाम होते ही ज्यों ही अंधेरा होता है समस्त ग्राम के लड़के लड़कियां घोटुल में आ जाते हैं। प्रत्येक ग्रामवासी का कर्त्तव्य हो जाता है घोटुल के बाहर आग लगाने हेतु लकड़ी लायें। जब ये लोग जंगल से लौटते हैं साथ में लकड़ी लाते हैं। एवं घोटुल के बाहर रख देते हैं। जब किसी लड़के या लड़की का विवाह हो जाता है तो उसकी घोटुल से सदस्यता समाप्त हो जाती है। गांव के समस्त लड़ाई, झगड़ों का निपटारा घोटुल में बैठकर किया जाता है। बाहर के व्यक्तियों को भी घोटुल में ठहराया जाता है। घोटुल में कहानी किस्से के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। गांव में यदि आग लग जाये तो कैसे बुझाई जाये इस बात की भी शिक्षा दी जाती है। जवान लड़के लड़कियां रात्रि में यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते परन्तु कभी कभी ऐसा हो जाता है। घोटुल के नियमानुसार विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करना नियम के विरुद्ध है। घोटुल की उत्पत्ति के बारे में कुछ मानवशास्त्रियों का मत है कि आदिवासियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकान बहुत छोटे-छोटे होते हैं इसलिये घोटुल की उत्पत्ति हुई। इसके अलावा शिक्षा देने का घोटुल एक माध्यम है घोटुल का संचालन वह व्यक्ति करता है जो विधुर हो एवं समझदार हो उसे घोटुल के संचालन का कार्य सोंपा जाता है। इस व्यक्ति की सभी सदस्य काफी इज्जत करते हैं। घोटुल में रोगों के निदान एवँ यौन शिक्षा भी दी जाती है। यहां समस्त परंपराओं एवं रीति रिवाजों के बारे में अवगत कराया जाता है।

महिलाओं की स्थिति

इस जनजाति के लोग महिलाओं की बहुत इज्जत करते हैं। परन्तु प्रत्येक पुरुष एवं महिला अपने परम्परागत नियमों का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता है। महिलायें एवं जवान लड़कियाँ कभी भी पलंग पर नहीं सो सकतीं। वह पुरुषों के समक्ष अपने आपको हीन समझती हैं। पंचायत में महिलायें भाग नहीं ले सकतीं, पंचायत की सदस्यता सिर्फ पुरुषों को हा मिलती है। सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से महिलाओं का स्थान बहुत नीचा है। यह जन-जाति पुरुष प्रधान है। वंश परम्परा पुरुष के नाम से चलती है। माता पिता की सम्पत्ति पर लड़कियों का अधिकार नहीं होता। मासिक धर्म के समय महिलायें अपने आपको अपवित्र समझती हैं। इस समय वह कोई भी धार्मिक क्रियाकलापों में भाग नहीं ले सकतीं। कुछ ग्रामों में यह भी देखा गया है मासिक धर्म के समय समस्त ग्राम की महिलाओं के बैठने के लिए अलग झोपड़ा रहता है उसी में आकर वह बैठी रहती हैं। मासिक धर्म के समय कोई भी महिला पुरुष को नहीं देख सकती। विवाहित महिला को अपने पति की हर बात मानने को बाध्य होना पड़ता है। बगैर पति के अनमति के वह शराब नही पी सकती।

विवाह

आमतौर पर यहां एक विवाही परिवार पाया जाता है परन्तु एक से अधिक औरतें रखने का भी रिवाज पाया गया है। यदि पति की मृत्यु हो जाती है तो वह अपने पति के छोटे भाई के साथ पुनः विवाह कर लेती है। तलाक बहुत ही कम पाये जाते हैं। आमतौर पर लड़कियों का विबाह १५-१६ वर्ष के बाद एवं लड़कों का १७-१८ वर्ष के बाद किया जाता है। एक ही गोत्र में विवाह वर्जित है। बच्चे पैंदा करने की क्षमता बहुत कम पाई जाती है। विवाह के ४-५ वर्ष बाद बच्चे पैदा होते हैं। ३५ वर्ष की उम्र के बाद महिलाओं के बच्चे नहीं होते यह आमतौर पर देखा गया है।

कानून एवं न्याय व्यवस्था

अबूझमाड़ में परम्परागत कानूनों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्त्तव्य समझता है। प्रत्येक ग्राम में एक ग्राम मुखिया होता है, यह परम्परागत रहता है, इसकी बात मानना प्रत्येक व्यक्ति अपना फर्ज समझता है। १५-२० ग्रामों के बीच एक परगना मांझी होता है वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन सभी ग्रामों की समस्याओं को सुलझाता है। जब कोई गम्भीर समस्या आ जाती है तो परगना मांझी के समक्ष रखी जाती है। परगना मांझी उस समस्या को सुलझाने का प्रयास करता है। उसे किसी ग्राम का नाम बदलने का भी अधिकार है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र में एकता एवं सद्भाव बनाये रखता है। प्रत्येक ग्राम में पंचायत के सदस्य रहते हैं इन सदस्यों के माध्यम से गांव का पटेल अपना निर्णय देता है। मुख्य रूप से आपस के लड़ाई झगड़े ग्राम के लोग पटेल के माध्यम से आपस में ही सुलझा लेते हैं।

निषेध

(१) मासिक धर्म के समय कोई भी महिला धार्मिक कार्यकलापों में भाग नहीं ले सकती।

(२) मासिक धर्म के समय कोई महिला किसी पुरुष की तरफ देख नहीं सकती एवं वह अपने पति के साथ नहीं सो सकती। इस समय उसे अलग जमीन पर सोना पड़ता है।

(३) जब कोई फसल आती है कोई भी व्यक्ति बगैर पूजा किये हुए उसे नहीं खा सकता या बेच नहीं सकता।

(४) गर्भावस्था में कोई पुरुष अपनी पत्नी से संभोग नहीं कर सकता।

(५) जब कोई फसल आती है उस समय पति अपनी पत्नी के साथ संभोग नहीं कर सकता।

(६) जिस कमरे में नई फसल के बीज रखे हों उस कमरे में महिलायें नहीं जा सकतीं।

(७) कोई भी पत्नी या जवान लड़की पलंग पर नहीं सो सकती।

(८) कोई भी पुरुष सिर पर बोझ नहीं रख सकता।

(९) नृत्य सिर्फ रात्रि में ही किया जायेगा सिर्फ त्यौहारों के समय दिन में नृत्य किया जा सकता है।

(१०) जब कोई स्त्री बच्चे को जन्म देती है उस समय उसका पति खेत में कार्य करने नहीं जायेगा।

स्वास्थ्य

पुरुषों एवं महिलाओं की औसत उम्र ४८ एवं ४६ वर्ष पाई गई है। यह आंकड़े स्वास्थ्य विभाग से प्राप्त हुए हैं। प्रारम्भ की उम्र में अर्थात् बाल्यावस्था में मृत्यु दर बहुत अधिक पाई जाती है। लगभग ९८ प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार पाये जाते हैं। महिलाओं की औसत उम्र पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा है। त्वचा की बीमारी, लीवर की बीमारी, पेट की बीमारी, छोटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता, फेफड़े की बीमारी, खांसी, मलेरिया, आंखों की बीमारी अक्सर पाई जाती है । पानी गंदा पीते हैं । ९० % बीमारियां गंदे पानी पीने से होती हैं । ये लोग काफी गन्दगी से रहते हैं । शासकीय अस्पतालों में इलाज हेतु नहीं जाते, जड़ी बूटियों पर आश्रित रहते हैं । जब कोई बीमारी हो जाती है तो "बड्डे" इलाज करता है । इलाज का तरीका परम्परागत है । वगैर बड्डे की अनुमति के ये लोग अस्पताल नहीं जाते । "बड्डे" अस्पताल जाने की अनुमति इसलिये नहीं देता क्योंकि उसकी आमदनी मारी जाती है ।

अर्थ व्यवस्था

प्राप्त आंकड़ों के अनुसार ६८०१ एकड़ भूमि में कृषि की जाती है । प्रत्येक ग्राम में औसतन २८.८२ एकड़ भूमि में कृषि की जाती है । जंगल में कन्दमूल फल, जामुन, चिरौंजी, मांस, आंवला, अचार, हल्दी, आम, सल्फी, तेन्दु आदि इकट्ठा करने जाते हैं एवं वेचते भी हैं।

ये लोग बांस की टोकनी और रस्सी आदि बनाते हैं । गोंद आदि भी वेचते हैं एवं मजदूरी भी करते हैं । नमक का इस क्षेत्र में काफी महत्व है । कुछ व्यापारी नमक के बदले इनसे चिरौंजी ले जाते हैं इस प्रकार शोषण भी बहुत अधिक पाया जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी स्तम्भ

भारत में संयुक्त परिवार का भविष्य

सुन्दर लाल

परिवार समाज की अति प्राचीन संस्था है। वर्तमान में जिसे हम संयुक्त परिवार कहते हैं, जिसका आशय प्राचीन समाज में परिवार से ही लगाया जाता था—जैसे कि आदिम मानव जगत की स्थितियों में हम कितनी भी प्राचीनता तक जाकर देखें, कोई ऐसा समूह नहीं मिलता है जिसमें परिवार का कोई न कोई रूप न मिलता हो तथा सहचारिता एवं लैंगिक सम्बन्धों का नियमन न पाया जाता रहा हो।

इस संदर्भ में कुछ समाजविचारकों ने अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया है कि "मानव जाति की आदिम व्यवस्था लैंगिक संकरता की थी।" परन्त नृतत्वशास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह सिद्धान्त दुर्बल पड़ गया है—वास्तव में नर वानरों तथा मानवेतर जातियों में परिवार का जीवन बहुधा विकसित हुआ है। इन जातियों में त्योहारों के अवसरों पर लैंगिक स्वच्छन्दता, पत्नियों का विनिमय तथा अतिथि सत्कार के रूप में पत्नियों को प्रदान करना आदि संकर आचार मौजूद थे और समाज में वर्गों के आधार पर प्रभावित भी थे, जिसके अनुसार एक समूह के सभी व्यक्ति बिना भेद भाव के माता-पिता कहलाते थे और दूसरे के भाई बहन तथा शिशु आयु सीमा समूह के पुत्र एवं पुत्री कहलाते थे—यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि इन समाजों में जैविक पैत्रिकता की भ्रांति थी, जो मध्य आस्ट्रेलिया व ट्रोवियाण्ड द्वीपों के समूहों में विद्यमान थी। अतः स्पष्ट है कि परिवार अत्यधिक प्राचीन व्यवस्था है। इस व्यवस्था में एक परिवार के सभी सदस्य चाहे नौजवान हों अथवा वृद्ध, पुरुष अथवा स्त्री, कमाने वाले अथवा बिना कमाने वाले एक ही घर में एक साथ मिल जुलकर रहते हैं और संयुक्त धन का बटवारा सबके बीच किया जाता है तथा उनका रसोई घर एक ही होता है। परन्तु प्राथमिक एवं व्यक्तिगत सम्बन्धों पर आधारित यह संस्था सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के साथ-साथ स्वयं परिवर्तित होती आयी है। ऐसे समाज के परिवारों में एकमतता

सुन्दर लाल, प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, गाँधी महाविद्यालय, सिधौली, सीतापुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा वफादारी का कम होना तथा पुराने पारिवारिक सम्बन्धों का टूटना, पारिवारिक चेतना समाप्त होना ही अलगाव की प्रवृत्ति को जन्म देता है। इस प्रकार बड़े परिवार छोटे परिवारों में बदलने लगते हैं।

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश होने के कारण यहाँ आदि काल से ही संयुक्त परिवार परम्परायें पायी जाती रही हैं परन्तु वर्तमान में पारिवारिक विघटन एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में देखा जा रहा है–भारतीय परिवारों की व्यवस्था और संरचना में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। औद्योगिक विकास, नगरीकरण, प्रोद्योगिकी में महत्वपूर्ण उपलब्धियों का परिवार पर काफी प्रभाव पड़ रहा है। भारतीय परिवारों में स्वामिभक्ति, सहानुभूति, परोपकार, सहयोग तथा सद्भाव की मूल विशेषतायें प्रायः समाप्त हो रही हैं—इनका समाप्त होना ही सामाजिक परिवर्तन को जन्म देता है–यह सामाजिक परिवर्तन ही सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था और संगठन को प्रायः नष्ट किये दे रहा है।

भारतीय परिवारों की सम्पत्ति प्रायः संयुक्त होती थी जिस पर परिवार के सभी सदस्यों का अधिकार होता था। परिवार का सबसे बड़ा व्यक्ति परिवार का मुखिया होता था परन्तु इन बड़े परिवारों की प्राचीन मान्यतायें समाप्त हो रही हैं तथा नवीन मान्यतायें उनका स्थान ग्रहण कर रही हैं। इस सन्दर्भ में जनपद सीतापुर के एक सौ (१००) परिवारों का अध्ययन किया गया जो सभी संयुक्त परिवार के कहे जाते थे, वे परिवार जो १९७० के बाद विघटित हुए, उनकी संख्या ८० (अस्सी) थी। बीस परिवार अध्ययन के समय से पूर्व विघटित हो चुके थे, संयुक्त परिवार स्वामियों तथा अन्य सदस्यों से कुछ प्रश्नों के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि इन परिवारों में लगभग ६० पुरुष और स्त्रियां सामूहिक रूप से रहते थे–स्त्रियां प्रायः घर का कार्य करती थीं, पुरुष कृषि कार्य, व्यापार तथा अन्य बाहरी कार्य करते थे–परिवार की सम्पूर्ण स्थायी तथा अस्थायी सम्पत्ति पर मालिक का नियन्त्रण रहता था, परन्तु सम्पत्ति में सभी का सामूहिक हिस्सा रहता था, स्त्रियां अपने कर्तव्यों का पालन न करके पुरुषों में आपस में भ्रांतियां पैदा कर घर में कलहपूर्ण वातावरण तैयार करने का कार्य करने लगीं और पुरुषों को सदैव उस सामूहिक परिवार से पृथक करने हेतु प्रोत्साहित करती रहीं–उनका मुख्य कार्य घर में रहकर जनसंख्या बृद्धि करना ही मात्र रह गया तथा परिवार के मुखिया पर सदैव सम्पत्ति को हड़पने का आरोप तथा अपने बच्चों को अच्छा वस्त्र, अच्छी शिक्षा, भोजन आदि न देने का आरोप तथा अपने लिए उत्पादन का विशेष लाभ न मिलने की भावनाओं के व्याप्त हो जाने से परिणाम यह होता था कि परिवार का कोई भी सदस्य उत्पादन के साधनों का सही उपयोग तथा परिश्रम नहीं करता था। स्त्रियां अकर्मण्यता का प्रतीक बनती थीं, परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी होना स्वभाविक था। आर्थिक साधनों में कमी आती थी। प्रत्येक व्यक्तिगत परिवार येन केन प्रकारेण अपनी सम्पत्ति एकत्र करने में व्यस्त रहता था। परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार टूटकर अनेक व्यक्तिगत परिवारों में बंट जाया करते थे। इस प्रकार यह रोग शनैः-शनैः अन्य संयुक्त परिवारों में व्याप्त होता गया। १९५० के बाद यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग अधिक जोर पकड़ता गया तथा सन् १९७०-१९८० के मध्य लगभग ५ प्रतिशत ही ऐसे परिवार शेष रहे, जो संयुक्त परिवार परम्परा के अन्तर्गत देखे गये, शेष सभी संयुक्त परिवार व्यक्तिगत परिवारों में बदल गये।

वर्तमान समय में भारतवर्ष में ५ प्रतिशत ऐसे परिवार हैं, जो संयुक्त परिवार कहे जा सकते हैं, उनमें से कुछ परिवारों का अध्ययन किया गया, उनके परिवार के मुखिया तथा अन्य सदस्यों से व्यक्तिगत आधार पर सम्पर्क कर जानकारी की गई। उनके विचार हैं—'मेरे परिवार में सदस्यों की संख्या ५० है जिसमें पुरुषों की संख्या २५, स्त्रियां १५ तथा १० बच्चे जो अविवाहित हैं। पुरुष तथा स्त्रियां अधिकाँश शिक्षित हैं, लगभग सभी पुरुष सरकारी व अर्ध सरकारी संस्थाओं में कार्य करते हैं—सम्पूर्ण परिवार की सम्पत्ति सामूहिक है। क्या परिवार में विघटन की स्थिति है अथवा नहीं? नहीं। क्योंकि परिवार के सभी सदस्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद सरकारी सेवाओं में व्यस्त रहते हैं, उनकी पत्नियां तथा उनके बच्चे साथ रहते हैं। त्योहार तथा अन्य सामाजिक अवसरों पर ही सभी परिवार के लोग एकत्र होते हैं। स्त्रियों को एक साथ अधिक रहने का अवसर नहीं मिल पाता है। सम्पत्ति का लेखा जोखा वर्ष के अन्त में सामूहिक रूप से एक होकर किया जाता है। रख-रखाव की सम्पूर्ण जिम्मेदारी परिवार के मुखिया की ही रहती है। इस तरह परिवार के न टूटने का मुख्य कारण परिवार के सभी सदस्यों का शिक्षित होना तथा उन्हें पृथक-पृथक व्यवसायों में लगा देना तथा स्त्रियों को एक सामान्य स्थान पर अधिक समय तक न रहने देना था।

उपरोक्त परिवारों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विघटन में परिवार के सदस्यों की शिक्षा का अभाव जिससे स्त्रियों एवं पुरुषों के कार्य का उत्तरदायित्व पूर्ण न होना, लालच, व्यक्तिगत परिवार की इच्छा, परिवार स्वामी का पद तथा कर्तव्यों के अनुसार कार्य न करना था। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य कारण थे जो अध्ययन से ज्ञात हुए जोकि निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

वर्ष	कारण	प्रतिशत
वर्ष १९५० से १९८० तक	संयुक्त परिवारों में महिलाओं की निष्क्रियता, सामूहिक सम्पत्ति के प्रति लगाव न रहना, स्त्रियों का परिवार में निम्न स्थान, कलहपूर्ण परिवार का वातावरण	२५ प्रतिशत
	आर्थिक स्वतंत्रता, पुरुषों के साथ स्त्रियों का नौकरी करना, औद्योगीकरण, प्रौद्योगिकी, व्यवसायों में साथ-साथ भागीदारी, विभिन्न संस्कृतियों तथा पाश्चिकी सभ्यता का प्रभाव	२४ प्रतिशत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	मूल परिवार के साथ न रहकर पृथक परिवार और रहन-सहन का स्तर निर्माण करने की तीव्र इच्छा	१४.४ प्रतिशत
	परिवार के स्वामी का अनुत्तरदायित्व पूर्ण होना तथा परिवार के अन्य सदस्यों का स्वामी के प्रति अविश्वास की भावना	२० प्रतिशत
	नवयुवकों का बड़ों का नियंत्रण स्वीकार करने की अनिच्छा पूर्ण भावना	९.५ प्रतिशत
	दहेज प्रथा (व्यक्तिगत सम्पत्ति) कुरीतियां तथा मृत प्रथायें	५ प्रतिशत
	शासन की दोषपूर्ण नीतियां (तलाक)	१.६ प्रतिशत

इस प्रकार भारतीय समाज की परिवार व्यवस्था पर पिछले ४० वर्षों से काफी प्रभाव पड़ा है। देश में जिस समय आवादी कम थी और कृषि पर निर्भरता अधिक थी उस समय हर परिवार को श्रम की आवश्यकता अधिक पड़ती थी, जो परिवार जितना बड़ा था, कृषि कार्य करने वालों की उतनी ही अधिक आवश्यकता होती थी परन्तु जब से देश का आर्थिक ढांचा बदला, जनसंख्या का दबाव बढ़ता गया। कृषि पर अधिकांश लोग निर्भर नहीं रह सकते, साथ-साथ सम्प्रेषण के माध्यमों, यातायात, व्यापार और उद्योगों के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति ने एक नयी सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया जिसमें प्रतियोगिता को काफी महत्व मिला, कृषि के तरीकों में परिवर्तन हुआ, शिक्षा के प्रसार से गांवों में एक नया विचार सामने आया। पारिवारिक बंधनों, उत्तरदायित्वों से स्वार्थ भावना ने व्यक्तिगत परिवार भावना को जन्म दे दिया।

भारत में संयुक्त परिवार का विघटन अनेक कारणों का परिणाम है—जैसा कि पूर्व सारणी से स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक एवं आर्थिक कारण अत्यधिक महत्व-पूर्ण कारण हैं। आर्थिक कारणों में परिवार की उत्पादकता का कम होना तथा उपभोग का बढ़ जाना अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। सामाजिक कारणों में सामाजिक गतिशीलता ,बढ़ जाना, कृषि व्यवसाय पर निर्भर न रहने के कारण व्यक्ति विभिन्न कार्यों एवं व्यवसायों में लग जाने के कारण नगरों में बस गये हैं। अब संयुक्त परिवार की व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। सामूहिक हित, चेतना, परिवार का त्याग, आत्म संयम की भावना की समाप्ति, स्कूलों, विश्वविद्यालयों में महिलाओं की उच्च शिक्षा, स्त्रियों के आधुनिक विवाह (प्रेम विवाह), पुरुष और स्त्रियों में समानता, निर्धनता के कारण व्यक्ति का सामूहिक अर्थ सोचने की प्रवृत्ति में परिवर्तन, आपसी द्वेष, पद तथा कार्य में अन्तर, पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, आधु-निकिकरण आदि पारिवारिक विघटन के कारण सिद्ध हो रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ वैधानिक करण भी पारिवारिक विघटन के लिए उत्तरदायी हैं। सरकारी तौर पर विवाह के महत्व को कम करना, तलाक को कानूनी तौर पर वैधानिक मानना, मुस्लिम विवाह परम्परायें, हिन्दू विधवा पुर्नविवाह एक्ट १९५६, विशेष विवाह एक्ट १९५४ आदि ने व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा विवाह की परम्परागत मान्यताओं को समाप्त कर दिया है। कानूनों के माध्यम से परिवार की पूरी सम्पत्ति में पृथक रहकर भी हिस्सा लेने का अधिकार हो गया है। संयुक्त परिवार में महिलाओं का नीचा स्तर और कम महत्व होना भी विघटन का कारण है।

उपरोक्त कारणों से पारिवारिक विघटन अत्यधिक तीव्र गति से होता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप परिवारों के आकार तथा स्वरूप में परिवर्तन हुआ और इन परिवर्तनों ने समाज में असामंजस्य की समस्या उत्पन्न कर दी है तथा इस बात की आवश्यकता महसूस होने लगी है कि इस समस्या को समाज से निकाला जाय अथवा रोका जाय।

संयुक्त परिवार का विघटन प्रायः आर्थिक असमानता तथा वैवाहिक जीवन के सम्बन्धों से उत्पन्न होता है। आज जिन परिस्थितियों में भारतीय नवयुवक वैवाहिक जीवन व्यतीत करके नये परिवार की रचना करना चाहता है उसमें सहिष्णुता, सहयोग, प्रेम तथा देश प्रेम और अनुशासन के स्थान पर पश्चिमी ललक, नवीन बनने की कल्पना और परम्पराओं का विघटन ही दृष्टिगोचर हुआ है। इसी कारण बहुमुखी झूठे विकास में किसी भी परिवार को अनुशासित एवं नैतिक स्तरों पर सफल हो पाना असम्भव सा प्रतीत हो रहा है जो पश्चिमी सभ्यता को स्वीकार है। पति-पत्नी के भूतकाल का अध्ययन करके भी पारिवारिक तनाओं को समाप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त परिवार को टूटने से बचाने के लिए सरकारी और गैर सरकारी प्रचार साधनों के प्रयोग के संयुक्त परिवार प्रणाली के लाभों पर अधिक प्रकाश डालते हुए बचाया जा सकता है।

परिवार की रचना इन्हीं उच्च मूल्यों के लिए होती है। परिवार का रूप कोई भी हो। यहाँ पर हमारा आशय सामूहिक परिवारों को टूटने के साथ-साथ नवीन व्यक्तिगत परिवारों से कुछ भी समाज को न मिलने से है। यहां तक कि तलाक भी परिवार के महत्व की या उसकी सत्ता को समाप्त करने में सक्षम नहीं होगा। क्योंकि तलाकशुदा लोगों द्वारा पुनः शादी कर लेना इस बात का द्योतक है कि वे परिवार की श्रेष्ठता तथा उसके महत्व को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार परिवार कभी भी समाज से लुप्त नहीं हो सकता। अन्तर केवल यह हो सकता है कि आगे आने वाले समय में संयुक्त परिवारों का पूर्णतया लोप हो जाय और उसके स्थान पर नवीन परिवार (व्यक्तिगत परिवारों-एकाकी परिवारों) का जन्म हो।

वास्तव में भारतीय परम्परा और संस्कृति से हटकर एवं उसके मूल स्वरूप को भूलकर जिसमें अनुशासन एवं सिद्धान्तों पर विशेष जोर दिया जाता था। किसी भी भारतीय पारिवारिक स्वरूप में मानव कल्याण सम्भव नहीं है। पारिवारिक रचना चाहे सामूहिक हो या व्यक्तिगत उसकी आधारशिला उक्त गुणों के आधार पर होनी चाहिए। आज के व्यक्तिगत परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रचना संकीर्ण भावनाओं, व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रति लगाव, स्वच्छंदता तथा सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए हुई है। यदि पूर्व अध्ययन किये हुए दुर्गुणों, संकीर्णताओं और दुर्बलाओं को दूर करने के लिए समाज सुधारक अर्थशास्त्री तथा विद्वान और सरकार अपने कानूनों के आधार पर कटिबद्ध होकर विचार करें और सहयोग करें तो संयुक्त परिवार प्रणाली अपने उस स्वरूप को पा सकती हैं जहां से इतिहास के निर्माता, विद्वान, देश सेवी, अर्थशास्त्री एक साथ मिलते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमंत्रित प्रबंध

प्रागैतिहासिक मानव के कार्यकलाप शैलचित्रों के दर्पण में

यशोधर मठपाल

प्रागैतिहासिक मानव

इतिहास का शब्दार्थ है "जो इस प्रकार घटित हुआ" (इति+ह+आस)। विगत युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक गतिविधियों का समग्र लेखाजोखा इतिहास कहलाता है। यह इतिहास पुरानी लिखित सामग्री (व्यक्तिगत जीवनी, पुस्तकों, राजकीय अथवा अदालती प्रपत्रों, सिक्कों, अभिलेखों आदि), कलात्मक वस्तुओं तथा अन्य साधनों के आधार पर तैयार किया जाता है। इस प्रकार मुख्यतः लिखित सामग्री के आधार पर अधिक अधिकार के साथ लिखा गया किसी देश या जाति का पूर्ण विवरण इतिहास कहलाता है जब कि प्रागैतिहास का अर्थ है इतिहास से पूर्व का इतिहास, उस काल का इतिहास जब लिपि और सभ्यता ने जन्म लिया था[१]। यह प्राक्+इतिहास रचा जाता है पुराविदों द्वारा, पुराने मानव के अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र आभूषण, कलाशिल्प, आवासगृह, भोजनावशेष और शवाधानों तथा मानव एवं पशु अस्थि अवशेषों के टूटे फूटे स्मृतिचिन्हों के गहन अध्ययन के आधार पर, जो मुख्यतः विधिवत् उत्खननों से प्राप्त होते हैं। इस प्रागैतिहास और इतिहास के बीच एक ऐसा काल भी होता है जब हम सभ्यता, लिपि और अन्य उन्नत उपलब्धियों का अस्तित्व तो पाते हैं किन्तु लिपि की जानकारी के अभाव में उसे उस अधिकार के साथ लिख नहीं सकते हैं जैसे कि इतिहास को लिखा जाता है, वह काल आद्यैतिहासिक काल कहलाता है।

संसार भर में हर देश तथा जाति के इतिहास, आद्यैतिहास और प्रागैतिहास का अनुपात समान नहीं है। भारत का इतिहास ५०० ई० पू० तक जाता है, आद्यैतिहास ५०० से

यशोधर मठपाल, निदेशक, लोक संस्कृति संग्रहालय, महरागाँव, भीमताल, नैनीताल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३००० ई० पू० तक और प्रागैतिहास ३००० ई० पू० या आज से ५००० वर्ष पूर्व के परे जाता है जबकि इंग्लैंड में १०वीं सदी तक, अमेरिका में १७वीं सदी तक तथा आस्ट्रेलिया में १८वीं सदी तक का काल प्रागैतिहासिक माना जाता है। संसार के कुछेक दुर्गम भागों में अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भी प्रागैतिहासिक काल व्याप्त था। प्रागैतिहासिक काल का अंत भिन्न-भिन्न भले ही हो किन्तु समग्र मानवों के प्रागैतिहास का आरम्भ एक साथ हुआ है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि हमारे ब्रह्माण्ड का निर्माण लगभग २० अरब वर्ष पूर्व हुआ था, और हमारी पृथ्वी लगभग चार अरब ६० करोड़ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आयी। इसको जीवन के अनुकूल बनने में पुनः एक अरब १० करोड़ वर्ष लगे। इस प्रकार पृथ्वी के जल मंडल में लगभग ३ अरब ५० करोड़ वर्ष पूर्व जीवन कुलबुलाया। स्थलमंडल पर जीवन का आविर्भाव मात्र ४० करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। मनुष्य नामक पशु जो आज सारी धरा पर छाया हुआ है, इस ग्रह पर बहुत देर में आया। इतनी देर में कि पृथ्वी की आयु को यदि २४ घंटे का मान लें तो मानव २३ १/२ घन्टे बीत जाने पर प्रकट हुआ। इसके आगमन से करोड़ों वर्ष पूर्व १००-१०० फीट बड़े दानव पृथ्वी को रौंदा करते थे, ५०-५० फीट विशालकाय भयावह जलचारी सागरों को मथा करते थे और विचित्र आकाशचारी, जिनका पंख विस्तार २५ फिट तक चौड़ा होता था नभमण्डल पर अपना आधिपत्य जमा चुके थे। आज के हाथी, घोड़ा, गैंडे और बन्दरों के पूर्वज विगत सात करोड़ वर्षों में नाना रूपों में वर्धित, परिवर्तित होकर अस्तित्वहीन हो गये। लगभग छः करोड़ वर्ष पूर्व उच्चस्तनी वानरों की ऐसी प्रजातियाँ हुईं जिन्होंने आज के चार वानरों–गोरिल्ला, चिंपांजी, ओरांगुटान और गिब्बन के पूर्वजों को तथा मानव के पूर्वपुरुषों को जन्म दिया। मानवीय गुणों युक्त जो वानर प्रथम बार डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व से ८० लाख वर्ष पूर्व तक दक्षिणी चीन से लेकर हिमालय होते हुए दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अफ़्रीका के सवाना के छितरे वनों में रहता था उसको संसार 'रामापिथेकस' के नाम से जानता है। रामापिथेकस यानी 'श्री राम का वानर'। रामापिथेकस ने ही संभवतः उस श्रृंखला का सूत्रपात किया जिसमें दक्षिणी वानर (Australopithecus), दक्ष मानव (Homo habilis), पादचारी मानव (Homo erectus), मेधावी मानव (Homo sapiens) तथा महामेधावी मानव (Homo sapiens sapiens) को क्रमशः ५० लाख, ३९ लाख, १५ लाख, सवा लाख और ४० हजार वर्ष पूर्व जन्म दिया।[2] महामेधावी बन जाने के बाद भी लगभग ३० हजार वर्षों तक मानव का जीवन मुख्यतः आखेटक, भोजन संग्रहक, घुमन्तू और पाषाण आयुध प्रयोजी ही रहा। उसने एक स्थान पर बस कर रहना, पशु और अनाज को पालतू बनाना तो मात्र आठ-नौ हजार वर्ष पूर्व ही सीखा। जिस सभ्यता का उसे इतना नाज है वह नागर सभ्यता सात हजार वर्षों से प्राचीन नहीं है और जिन आधुनिक धर्मों पर उसे इतना गर्व है वे तो अधिकतम पाँच हजार वर्ष प्राचीन हैं। हमने आग की शक्ति को पांच लाख वर्ष पूर्व जाना, परलोक की कल्पना (धर्म) ६०[3] हजार वर्ष पूर्व आयी और कलात्मकता (कला) ३०[4] हजार पूर्व वर्ष अपनायी। इस प्रकार सारे मानवों का अतीत विगत १ १/२ करोड़ वर्षों में एक ही रहा है। इस अतीत में लगभग ३० लाख (बाद के) सालों को ही मानव का सही प्रागैतिहासिक काल मान सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रागैतिहासिक काल को मानव संस्कृति का पाषाण युग भी कहा जाता है क्योंकि इस काल के अवशेषों में मुख्यतः पाषाण के ही उपकरण हमें मिलते हैं।[4] यद्यपि मानव ने पत्थर जैसी कठोर सामग्री से उपकरण बनाने से पूर्व हड्डी, लकड़ी[5] तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं को उपकरणों के रूप में अपनाया होगा किन्तु शीघ्र गलने वाली सामग्री से बने उपकरण काल प्रवाह में अस्तित्वहीन हो गये। जहां प्रकृति ने साथ दिया पाषाण काल के दौरान निर्मित-प्रयोजित ऐसे उपकरण हम तक अपना साक्ष्य छोड़ने को सुरक्षित रह सके हैं। इस पाषाण काल को तीन प्रमुख तथा कई उपभागों में बांटा गया है। प्रमुख भाग हैं–पुरा पाषण काल, मध्य पाषाण काल और नव पाषाण काल, तथा उपभाग विभिन्न देश तथा क्षेत्रों में उपकरण निर्माण की तकनीक के अनुसार अलग-अलग हैं। "फिर भी पुरा पाषण काल के ये उपभेद सर्वव्यापी हैं—पूर्व पुरा पाषाणकाल, मध्य पुरा पाषाणकाल और उत्तर पुरा पाषाण काल।"

पुरापाषाणकाल की अवधि सबसे लम्बी रही है। हमारे समग्र अतीत के अंतिम दस हजार वर्षों को छोड़ कर बाकी सारा प्रागैतिहासिक काल पुरापाषाण काल की सीमा में आता है। लगभग १० हजार से ५ हजार वर्ष पूर्व तक मध्य पाषाण काल माना जाता है जो भारत के किन्हीं किन्हीं क्षेत्रों में बाद तक भी जीवित रहा, और नव पाषाणकाल तो ईसवी सन् से कुछ ही शताब्दी पूर्व तक व्याप्त था। इसकी व्याप्ति देशकाल के हिसाब से सीमित रही है। स्पष्टतः यह आद्यैतिहासिक काल में आता है जब तांबा, कांसा और लोहा खोजा जा चुका था और भारत की सिन्धु घाटी में महानगरीय सभ्यता पुष्पित हो रही थी। ऐसे विकसित क्षेत्रों में इसी काल को ताम्रपाषाण काल के नाम से पुकारा जाता है।

यद्यपि संसार में प्राचीनतम चित्रकला के नमूने हमें लगभग ३० हजार वर्ष पूर्व के मिलते हैं "किन्तु जिन भारतीय शैलचित्रों के दर्पण मे हम प्रागैतिहासिक मानव की गतिविधियाँ निहारेंगे वे वर्तमान जानकारी के अनुसार लगभग १० हजार वर्षों से अधिक प्राचीनता वाले नहीं हैं"।[7] इस प्रकार वर्तमान संदर्भ में प्रागैतिहासिक मानव से तात्पर्य मध्य पाषाणकालीन संस्कृति के उस संवाहक से है जो भारत में १० हजार से ५ हजार वर्ष पूर्व आखेटक और भोजन संग्राहक की वृत्ति से आजीविका चलाता था।

शैलचित्र

मानव द्वारा शिलाओं के रीते पट पर, खनिज रंगों से आलेखित अथवा अन्य साधनों से अंकित चित्रों को शैलचित्र कहा जाता है। ये चित्र मुख्य रूप से विंध्य पद्धति की बलुआ चट्टानों के क्षेत्र में प्रकृति निर्मित शिलाश्रयों की छत और दीवालों पर बने मिलते हैं, या फिर ग्रेनाइट के मुक्त शिला खण्डों के खुरदरे धरातल पर। हिमालय क्षेत्र में चूने पत्थर और सलेटी चट्टानों पर भी आलेखित और अंकित आकृतियां पायी गई हैं।[8] आलेखन स्थानीय खनिज रंगों (मुख्यतः गेरू के विभिन्न वर्ण) को पानी के साथ घिस कर किया गया है। यह भी अनुमान है कि वनस्पति गोंद या पशु चर्बी को रंगों के स्थायित्व के लिये मिलाया गया है। शिलाखण्डों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कील जैसे नुकीले उपकरणों से भी रेखाचित्र रचे गये हैं। कहीं इच्छित आकार अंकित कर भीतरी शिलापट को खुरदरी वस्तु से घिस कर बदरंग कर दिया गया है, ऐसे चित्रों को घर्षण चित्र कहा जा सकता है। इनके अलावा कहीं कहीं आकृतियों को उकेर कर भी निकाला गया है। शिलाश्रयों में आलेखित चित्र प्रायः एक दूसरे के ऊपर आक्षेपित मिलते हैं। किसी विशेष भाग में अंकित चित्रों के ऊपर ही परवर्ती कलाकार चित्रण करते रहे हैं, बिना पुराने चित्रों को साफ किये। इस प्रकार अधिकतम १६ परतों तक का आक्षेपण मुझे मिला है। कभी कभी एक ही रंग द्वारा बार-बार लिखे जाने के कारण उलझन भरी रेखाओं का इन्द्रजाल सा बन जाता है जिसमें से आकृतियों को समझना कठिन हो जाता है। एक ही रंग में अंकित शैलचित्र अधिक मात्रा में मिलते हैं कभी-कभी दो रंगों को एक साथ प्रयुक्त किया गया है जो लाल और सफेद हैं। पशुचित्र पार्श्ववर्ती आँके गये हैं, जबकि मानव का अंकन सन्मुख या अर्ध पार्श्वी है। रेखाचित्र और छायाचित्र दोनों शैलियों का प्रयोग हुआ है। पशुओं के रेखाचित्रों में सींग, सिर, गर्दन, पाँवों का आंशिक या पूर्ण आपूरण मिलता है। मध्यवर्ती शरीर को विभिन्न ज्यामितीय आलेखनों से भरा पाया गया है। चित्रों में परिप्रेक्ष्य तथा पार्श्व या अग्रभूमि का कोई अंकन नहीं है न छाया का कहीं प्रदर्शन है। कुछ चित्र बहुत छोटे आकार के (कुछेक सेन्टीमीटर मात्र) तथा अन्य कई फीट लम्बे भी मिलते हैं।

प्रागैतिहासिक चित्रों का मुख्य विषय वन्य प्राणी और उनके आखेट दृश्य है, आद्यैतिहासिक चित्रों का विषय पालतू पशु, बैलगाड़ी, मधु संचय तथा आरम्भिक सभ्यता के दैनिक जीवन के दृश्य तथा ऐतिहासिक चित्रों का विषय प्रयाण और लड़ते सैनिक तथा उनके गजासीन और अश्वारोही सरदार है। शैलचित्रों के निर्माण में शिलाश्रय की भव्यता, पट की समतलता अथवा स्थान की सर्वसुलभता का ध्यान नहीं रखा जाता था क्योंकि आवासयोग्य दीर्घायतनी गुफाओं के समतल पट कभी कभी रीते मिलते हैं जब कि पास की छोटी संकरी कन्दरा, दुरूह ऊँचे स्थान और सीधे असुरक्षित शिलापट चित्रांकित दृष्टिगोचर होते हैं। संभवतः चित्रांकन का कोई निश्चित धार्मिक उद्देश्य था जो स्थान के चयन को प्रभावित करता था। शैलचित्रों के क्षेत्रों में जाकर एक अन्य तथ्य जो स्पष्ट हुआ वह यह कि सबसे सुन्दर, चित्रित शिलाश्रयों के धरातल जमीन से काफी ऊँचे हैं और उनके भीतर सूर्योदय या सूर्यास्त की किरणें पहुंचती हैं। इस सन्दर्भ में भारतीय शैलचित्र युरोपीय हिमयुगीन गुफाचित्रों से अलग हैं, "जहाँ प्रकाश से कभी-कभी सैकड़ों मीटर भीतर गहन अंधकार में चित्र अंकित किये गये हैं।"[९]

मस्की, टैक्कलकोटा, बेलारी आदि के मुक्त शिलाखण्डों में चित्र का मुख्य ध्येय दूर से दृष्टिगत होना था। हजारों शिलाखण्डों के ढेर में प्रायः उन्हीं पर चित्र अंकित हैं जो काफी दूरी से दिखायी देते हैं[१०] इसका कारण यह था कि शिलापट पर घर्षणविधि के निर्मित चित्र दूर से अधिक स्पष्ट समझ में आते हैं। ये आकृतियां एकाध अपवाद को छोड़ अलग-अलग बनाई गयी हैं एक दूसरे पर आक्षेपित नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैलचित्र अपनी लम्बी आयु तथा दीर्घकाल तक पानी, हवा व सूर्य प्रकाश के थपेड़े खाने से प्रायः धूमिल और क्षतविक्षत हो गये हैं। अति प्राचीन चित्र इतने धुंधले हो चुके हैं कि शिलापट में बिल्कुल डूब से गये हैं। इन्हें उड़ती नजर से देखा भी नहीं जा सकता। जब धरातल गीला हो तभी इनका अस्तित्व दृष्टिगत होता है। इसके अलावा चट्टान की ऊपरी परत के टुकड़ों टुकड़ों में छिल कर गिर जाने से भी चित्रों का अंगभंग हो गया है। मधुमक्खियों, कीड़ों, चिड़ियों तथा अन्य जानवरों ने भी चित्रों को अपरूप करने में अपना योगदान दिया है। जहाँ सीधी बौछार तथा सूर्यप्रकाश पड़ता है वहां चित्र धूमिल या रंग बदल चुके हैं। शिलागत रसायन के रिसरिस कर ऊपर जमने से चित्रों के ऊपर चूने का एक हल्का दूधिया अवगुंठन भी आ गया है। इनके अलावा कई और वनस्पति की बाढ़ ने भी इन चित्रों को नुकसान पहुँचाया है पर सबसे अधिक हानि तो मनुष्य स्वयं पहुँचा रहा है। मनमौजी भ्रमणार्थी अपने आगमन का सतिथि अवशेष-चिन्ह ही चित्रों के ऊपर नहीं छोड़ जाते हैं वरन अपनी रुचि–कुरुचि और पसन्द–नापसन्द को भी चित्रों को विरूप बनाकर जाहिर कर जाते हैं। विशुद्ध व्यापारिक दृष्टि वाले उद्योगी पुरुषसिंह शिलाखण्डों को रेलपथ, मोटरमार्ग तथा भवन निर्माण में आवश्यक रोड़ी के लिये हथौड़ों तथा डाईनामाईट से उड़ा देने में भी संकोच नहीं करते हैं। मध्यप्रदेश, राजस्थान की सीमा पर बना गाँधी सागर बाँध चंबल घाटी के लगभग पांच दर्जन चित्रित शिलाश्रयों को जल समाधि दे चुका है। शैलचित्रों की निर्मम हत्या के ऐसे दृश्य किसी भी कला केन्द्र पर जाकर सत्यापित किये जा सकते हैं।

कार्यकलाप

लेखन कला के आरम्भ से कई सहस्र वर्ष पूर्व मानव द्वारा सर्वसुगम एवं सर्वव्यापी भाषा में आलेखित शैलचित्र जहाँ अपनी उष्मता, जीवन्तमता एवं कला परिपक्वता के मुखर प्रमाण हैं वहीं गुहावासी मानव के अनगिनत कार्य-कलापों के असंदिग्ध साक्ष्यपत्र भी हैं। ये शैलचित्र दीर्घ आयु से जर्जर एवं सर्वभक्षी काल के थपेड़ों से क्षतविक्षत एवं विकलांग होकर भी ऐसे दर्पण हैं जिनमें अतीत के गहन तिमिर में विलुप्त मानव की न केवल बाह्य प्रवृतियां ही प्रतिबिंबित हुई हैं अपितु उसके अंतरमन, उसके चिंतन और उसकी आस्था भी अश्मीभूत होकर अचल हो चुकी है। इन अमूल्य दर्पणों में जहाँ एक ओर प्रागैतिहासिक वनस्पति जगत और विगत स्वत्व प्राणिजगत के प्रमाण सुरक्षित हैं वहीं वनौकस पूर्व पुरुष के शस्त्रास्त्रों का, अलंकरणों का, उपाधानों का और विकसित कला शिल्पों का अस्तित्व भी संरक्षित है। भारत में कुछ तो जलवायु के कारण और कुछ भूमिगत विभिन्न लवणयुक्त रसायनों की उपलब्धि के कारण प्रागैतिहासिक मानव के कंकाल विगत कुछैक सहस्राब्दियों के ही हैं उससे पूर्व के नहीं। उसी प्रकार, प्रागैतिहासिक प्राणिजगत के अवशेष भी प्रचुर मात्रा में नहीं मिले हैं। प्राचीन मानव के आवास-स्थलों से उपलब्ध, चाहे वे आवास-स्थल मुक्त आकाश के नीचे हों या गुफाओं में, मृत्युञ्जयी पाषाण उपकरणों की अपार राशि, निःसंदेह मानव के सहस्रों पीढ़ियों के दीर्घ जीवन का साक्ष्य प्रस्तुत करती है, पर शैलचित्रों की भाँति उसके गतिमय जीवन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिग्दर्शन एवं उसके अंतरमन का उद्घाटन हमें नहीं करा सकती । पाषाण उपकरण उस पुरोगामी मानव के सांस्कृतिक कंकाल हैं तो शैलचित्र उस पुरोधा पुरुष की संस्कृति के हिमीकृत जैतिक अवशेष, जो आज भी उतने ही मुखर और सप्राण हैं जितने अपने आविर्भाव के समय, सहस्रों वर्ष पूर्व थे। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है कि विगत द्वादश दशकों में सांस्कृतिक कंकालों ने पुराविदों को जितना आकर्षित किया है उतना इन हिमीकृत जैतिक अवशेषों ने नहीं। यदि प्रागैतिहासिक पुरातत्व का दृष्टिबिन्दु प्रागैतिहासिक मानव समाज का जीवन पुर्ननिर्माण है तो शैलचित्रों का सम्यक अध्ययन एक आवश्यकता है। शैलचित्र मध्यपाषाण काल, लगभग १०,००० वर्ष पूर्व तक के मानव समाज के विभिन्न क्रियाकलापों का हमें ज्ञान कराते हैं। दस सहस्त्र वर्षों की यह लक्ष्मण-रेखा अभी तक प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर ही खींची गयी है। बहुत संभव है कि भावी शोध कार्य मध्यपाषाणकाल से भी प्राचीन कला के अस्तित्व को उजागर कर सकेगा। शैलचित्रों में अंकित समग्र क्रिया कलापों को तीन मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत संकलित किया जा सकता है (अ) सांस्कृतिक कार्यकलाप (ब) सामाजिक कार्यकलाप और (स) आर्थिक कार्यकलाप ।

(अ) सांस्कृतिक कार्यकलाप

शैलचित्रों में पाषाण कालीन मानव के सांस्कृतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने वाले मुख्य कार्य कलाप हैं–१-नृत्य, २-वाद्ययंत्र–वादन, ३-गायन, ४-धार्मिक कृत्य और ५-ईहामृगों का अनुगमन ।

१–नृत्य

समूह नृत्य, जिसमें प्रायः युवा स्त्री-पुरुष बाँह में बाँह सटाए पदचापों को एक निश्चित लय और गति के साथ आगे पीछे बढ़ाते नाचते हैं, आज भी आदिम समाज का एक प्रचलित एवं लोकप्रिय नृत्य प्रकार है। शैलचित्रों में इस उल्लासपूर्ण सांस्कृतिक क्रिया का विविध प्रकार से अंकन किया गया है। मिर्जापुर (लिखनियां १ और २ शिलाश्रय), पंचमढ़ी (महडारिया, बनियावेरी और जम्बूद्वीप), रायगढ़ भीमबेटका (III ई–१९ तथा III एफ–३६), लाखाजुआर, लाखुउड्यार (अल्मोड़ा), चंबलघाटी, कठोडिया नागौरी और खरवई क्षेत्रों में समूह नृत्य के मनोहारी दृश्य हैं। चंबल घाटी के मोड़ी शिलाश्रय में ३४ व्यक्तियों को एक साथ नृत्यरत दिखाया गया है, तो लाखाजुआर (भीमबेटका क्षेत्र) के कई मीटर लम्बे नृत्य दृश्य में २६ मुखौटाधारी व्यक्ति पूरी मस्ती और गति के साथ नाचने में मगन हैं। इस अद्भुत दृश्य में ९ लोग तो स्वतन्त्र रूप से नृत्य कर रहे हैं, १४ अपने दोनों हाथों को दूसरे के कंधों तथा पीठ पर रख कर। दो लोग सचेत से होकर नृत्य की लयबद्धता का संचालन कर रहे हैं तो बाँयीं ओर का अन्तिम व्यक्ति मानो नाचते-नाचते धराशायी हो गया है। कठोडिया और खरवई में स्त्री पुरुष युगल रूप में नाचते दर्शाये गये हैं। कठोडिया के एक शैलचिव में १९ मानव भारी अलंकृत मुखौटे और कटिवस्त्र धारण कर नाचने की तैयारी में हैं। इस चित्र में ११ मानव तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पंक्ति में हाथ से हाथ थामे खड़े हैं पांच अन्य दांयी ओर को मुँह फेरे एक ही दिशा को हाथ फैलाये नाच रहे हैं तथा तीन मानव बांयी ओर झालरदार मुखौटों में हाथ फैलाये खड़े हैं। भीमबेटका में १६ शिलाश्रयों में १६१ नर्तक प्रदर्शित हैं जिनमें से ५४ नर्तक अकेले शिलाश्रय III ई–१९ में हैं। ये गोलाकार होकर हाथ से हाथ थामे नाच रहे हैं। मिर्जापुर के लिखनिया–१ में तीन नर्तक अलग-अलग भावभंगिमायें प्रस्तुत कर रहे हैं तो पंचमढ़ी के जम्बूद्वीप शिलाश्रय में एक युवक वर्तुलाकार वाद्ययंत्र पर खेलता एक तरुणी नर्तकी को साज दे रहा है। तरुणी की हवा में बलखाती चोटी, जमीन को मुड़ी गोलाकार भुजाएं और उछलते से मुड़े पैर जहाँ चित्र को चलचित्र का भ्रम देते हैं वहीं बजनिया के अप्राकृतिक रूप से मुड़े पैर थिरकते से लगते हैं।

अभी कुछ माह पूर्व भीमबेटका क्षेत्र की भौंरावाली पहाड़ी में, मुझे ७९ मानव आकृतियाँ नृत्यकला में निमग्न दृष्टिगत हुई हैं। इनमें से २७ मानव गुफा II ई-२५ में एक समूह नृत्य करते दर्शाए गये हैं। यह हाथ फैलाए नर्तक अपने कंधों में खड़े दूसरे नाचने वालों को सहारा दिए हैं जब कि कन्धे वाले अपने कन्धों पर पुनः अन्य बाल नर्तकों को साधे हुए हैं। शिलाश्रय II डी-१० में दस नर्तक गोला बनाकर नाच रहे हैं जब कि ग्यारहवाँ मध्य में खड़ा है। गुफा II एफ-४ में २० पंक्तिबद्ध नर्तक आगे वाले के कंधे में हाथ रख कर नाच रहे हैं। शिलाश्रय II बी-१३ के खड़े शिलापट पर भूरे रंग में एक मुखौटाधारी वृद्ध नर्तक को दोनों हाथ तथा दाँये पांव को उठाकर कमर को बल देते हुए पूरी मस्ती में नाचते अंकित किया गया है। भौंरावाली पहाड़ी पर नृत्य का सर्वोत्तम दृष्य शिलाश्रय II ई-१३ में अंकित है। यहां एक छद्मवेषी पुरुष अपनी सहधर्मिणी को पूरी लय में नचा रहा है। बाँके बिहारी को भी पछाड़ने वाली यह अष्टवक्रा नारी मस्ती में झूमती, मन्त्रमुग्धा नागकन्या सी लगती है अपनी इकहरी, बलखाती, मसृण काया में। इस प्रकार नृत्यकला की कई विधाएँ गुफाचित्रों में उपलब्ध हुई हैं।

२–वाद्ययंत्र वादन

शैलचित्रों में विविध प्रकार के ढोल, बीन के आकार के झुनझुने, तार के वाद्य, सींग के बाजे और वर्तुलाकार अपरिचित वाद्ययंत्र प्राप्त हुए हैं। ढोल और तार के वाद्यों की अपेक्षा बीननुमा झुनझुने और सर्पाकार अज्ञात यंत्र अधिक प्राचीन हैं। समूह नृत्यों में ढोलक बजाते बजनियां मुख्यतः चित्रित हैं तो एकाकी या सीमित नर्तकों के साथ तार या वर्तुलाकार अज्ञातयंत्र पर खेलते बाजक। लाखाजुआर के एक शिकार दृश्य में हाका देकर वन्य प्राणियों को भ्रमित करने के लिए मुखौटाधारी लोग बीन के आकार के झुनझुने बजाते हुए देखे गये हैं और आरम्भिक ऐतिहासिक शैलचित्रों में प्रयाण करते सैनिकों के साथ यदाकदा ढोलकवादक अंकित पाये गये हैं। ढोल पर हाथों से ही थाप दी जाती थी लकड़ी की तीलियों से नहीं। जम्बूद्वीप (पंचमढ़ी), लिखनियाँ–२ और कंडाकोट (मिर्जापुर) के वादक वर्तुलाकार वाद्य यंत्रों को बजाते दिखाये गये हैं और इमलीखोह, वी डैम कैव तथा माड़ादेव (सभी पंचमढ़ी) में ढोल बजाते वादक चित्रित हैं। निम्बूभोज शिलाश्रय (पंचमढ़ी) में, अपने परिवार के बीच बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ एक छद्मवेषी मानव एक धनुषाकार तंतु वाद्य पर खेलता अंकित किया गया है। लाखाजुआर के ही एक अन्य नृत्यदृश्य में चार नर्तकों के साथ एक वादक बड़ी ही भावभंगिमा के साथ एक ऐसे वाद्य को बजा रहा है जिसके आयताकार आधार से पांच खपच्चियां निकली हुई हैं। वादक बांये हाथ से इस यंत्र के आधार के एक कोने को पकड़े है और दांये हाथ से यंत्र को बजा रहा है। हरे रंग में चित्रित यह दृश्य शैलचित्रों के अति प्राचीन स्तर पर उपलब्ध हुआ है और असंदिग्ध रूप से मध्यपाषाण काल का है।

३–गायन

पाषाणकालीन कुशल चितेरों ने केवल गति को ही हिमीकृत नहीं किया है अपितु अरूपावाणी का भी अचल अंकन कर दिखाया है। निम्बूभोज शिलाश्रय में परिवार के बीच धनुषाकार वाद्ययंत्र पर खेलते छद्मवेषी वादक के सम्मुख बैठी नारी, अपनी एक भुजा और ग्रीवा को ऊपर उठाये हुये एवं अपने आधे खुले मुंह से स्पष्टत: गायन का बोध करा रही है। लाखाजुआर के नृत्य दृश्यों में नर्तकों के मुँह के सामने निश्चित क्रम से एक-एक गोले को चित्रित कर लय के साथ गीत के स्फुटन को ही साकार किया गया है। लिखनियाँ–१ के तीन नर्तकों में प्रथम नर्तक, जो दांये हाथ को काफी ऊँचा उठाये हुए है, नृत्य के साथ गायन का भी हमें बोध करा रहा है। शैलचित्रों में वार्तालाप और ध्वनि क्रिया का आभास तो अनेक आकृतियों से होता है।

४–धार्मिक कृत्य

अज्ञात प्रतीक, मानव पशु पक्षी मिश्रित ईहामृग आकृतियाँ एवं अस्पष्ट क्रियायें जो धार्मिक कृत्य सी लगती हैं, इन सबके अध्ययन से पाषाणकालिक मानव के धार्मिक विश्वासों का कुछ बोध होता है। भीमबेटका के दो शिलाश्रयों में जमीन पर चित्त लेटे एक मानव के ऊपर झुका दूसरा मानव एक हाथ में छड़ी या वृक्ष शाखा और दूसरे हाथ में त्रिभुजाकार वस्तु थामे कुछ धार्मिक क्रिया करते दिखाया गया है। यह दृश्य संभवत: ओझा द्वारा अस्वस्थ व्यक्ति के रोग निवारण का है। कठोडिया के एक चित्र में आकृतियों के विचित्र संयोजन से भी किसी प्रागैतिहासिक धार्मिक क्रिया का अनुमान लगाया जा सकता है, इस चित्र में एक छद्मवेषी मनुष्य भारी पूंछनुमा कटिबंध पहिने, जमीन में लेटे दूसरे मनुष्य के ऊपर झुककर अपने दोनों हाथों से कुछ क्रिया कर रहा है। जमीन में लेटे मनुष्य के मात्र मुड़े पैर ही अब दृष्टिगत होते हैं। एक तीसरा मुखौटाधारी मानव कंघे के आकार की एक बाड़ की ओट से सात उछलते बन्दरों पर शर संधान कर रहा है। इन बन्दरों में से पाँच के संभवत: हृदयों को भी अंकित किया गया है। बन्दरों के बांयी ओर लंगड़ाता सा एक नर हरिण भी दर्शाया गया है। हरिण के बांयी ओर ऊपर को एक अन्य छद्मवेषी अपने कटि भाग को काफी आगे झुकाकर हाथ की अज्ञात वस्तु से एक अन्य हरिण के मुख को मानो ढांकने का प्रयत्न कर रहा है। भौंरावाली पहाड़ी (भीमबेटका क्षेत्र) के एक शिलाश्रय में एक लहरदार आकृति भारी झालर युक्त मुखौटा, ढेर सारे बाजूबन्द, कंगन, कुहनी और कंधों से लटकते तारनुमा आभूषणों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभूषित हो, हाथ में एक उल्टा त्रिशूल थामे चित्रित की गई है। रायसेन के रामछज्जा शिलाश्रय में ताम्रपाषाणकालिक एक चित्र में दो जुते बैलों को ले जाते मनुष्य के आगे-आगे दूसरा मनुष्य अपने दोनों हाथों में कई खूंटे वाली लकड़ी को उठाये है। इस लकड़ी के ऊपर पंख फैलाये एक पक्षी का अंकन किया गया है। पंचमढ़ी क्षेत्र के छोटा महादेव गुफा में दो गर्भवती महिलायें सिरों में खाद्य सामग्री से भरी टोकरियाँ रखे घोड़े की पूंछ को थामे भागती चित्रित की गई हैं। इसी क्षेत्र के जम्बूद्वीप शिलाश्रय में एक अतिबली दो शार्दूलों को पूंछ से पकड़े हुये अंकित हैं, और मॉंटेरोझा में एक महापराक्रमी सिंह और वृषभनुमा पशुओं को उनके सिर से थामे, सामने गुजरते पशुओं को अभयदान दे रहा है। दौरोथी दीप और दौरी के शिलाश्रयों में इसी प्रकार के अति बली पुरुष, सिंह या इसी श्रेणी के अन्य किसी वन्य पशु को खींचकर ले जाते अंकित किये गये हैं। पंचमढ़ी क्षेत्र के अतिबली वीरों की आकृतियाँ एवं अश्व का पीछा करती गर्भवती महिलायें कुछ परवर्ती काल की रचनायें हो सकती हैं जबकि मानव आखेटक और खाद्यसंग्रही वृत्ति से आगे बढ़ चुका था, किन्तु इन चित्रों से प्राचीन धार्मिक मान्यताओं का ज्ञान अवश्य होता है। इसी प्रकार लिखनियाँ–२ में खड़े मेढ़क के आकार का एक देव और ढौकंवा रानी में झाड़ू सी पूंछ और उल्टे पाँवों वाला देव अभयदान की मुद्रा में चित्रित है और किसी अज्ञात धर्म का हमें बोध कराते हैं।

५–ईहामृगों का अनुगमन

मानव और पशु पक्षी के मिश्रित रूप वाली आकृतियाँ जिनको ईहामृगों की संज्ञा दी जा सकती है, शैलचित्रों में पायी जाती हैं। ये ईहामृग परवर्ती काल के चित्र एवं मूर्तिकला में भी पाये जाते हैं और भगवान विष्णु के नृसिंह, कच्छप, वाराह, मत्स्य आदि अवतारों की कल्पना के पीछे भी इन्ही प्रागैतिहासिक ईहामृगों को बीज रूप में लिया जा सकता है। भीमबेटका, भौरावाली, पाटनी की पहाड़ी में एक महावाराह बहुधा बड़े-बड़े सींगों के साथ चित्रित किया गया है। भीमबेटका में तीन शिलाश्रयों में यह पशु एक भागते केकड़े का पीछा कर रहा है। मानव आकार से कई गुने विशाल इस पशु के आगे पीछे प्रायः कई मनुष्य दौड़ते और इसकी रक्षा करते से चित्रित किये गये हैं। यहीं शिलाश्रय III–सी–९ में अंकित महावाराह की अधोमुख आकृति के समीप एक गर्भवती नारी भी खड़ी है। जावरा के मकर मुखाकृति वाले देव के कुछ दूरी पर एक छोटा सा छद्मवेषी मानव भयभीत हो भागता प्रदर्शित किया गया है। पचमढ़ी क्षेत्र में प्राप्त अश्वमुखी, मूषकमुखी एवं अन्य विचित्र आकृतियों को डी० एच० गार्डन ने राक्षसों की संज्ञा दी है तो जगदीश गुप्त ने पशुमुखी देवों की। वस्तुतः ये आकृतियाँ आदिम समाज में प्रचलित "टोटम सत्वों" की हैं।

(ब) सामाजिक कार्यकलाप

अपनी जैविक परिसीमितता के कारण मानव सदा से ही समूहप्रिय या सामाजिक प्राणी रहा है। मानव शिशु के दीर्घ शैशवकाल और लम्बे समय तक उसकी बड़े सदस्यों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराश्रयता ने भी मानव परिवार और सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण के लिये मनुष्य को बाध्य किया होगा। भारतीय शैलचित्रों में सामाजिक जीवन से सम्बन्धित निम्नलिखित कार्यकलाप अंकित पाये गये हैं, इनमें हम एक और जन्म से मृत्यु तक मानव जीवन के विभिन्न दृश्य देखते हैं तो दूसरी ओर उसकी नित्य प्रति की क्रियाओं का अवलोकन भी करते हैं'—

६-प्रेमक्रीड़ा, ७-रतिकर्म, ८-प्रजनन, ९-पयधारा विसर्जन, १०-पयपान, ११-शिशु पालन, १२-शिशु भ्रमण, १३-छेड़ना, १४-सामूहिक प्रयाण, १५-खेलतमाशे, १६-झूलाझूलन, १७-भोजन, १८-तरल पदार्थ पीना, १९-आग सेंकना, २०-मुखौटा पहिनना, २१-विश्राम करना, २२-भार वहन, २३-कलह, २४-खम्बे गाड़ना, २५-नाला पार करना, २६-सीढ़ी चढ़ना, २७-अंत्येष्टिक्रिया और शोक करना।

६–प्रेमक्रीड़ा

वर्षों पूर्व लिखित गार्डन की उक्ति 'भारतीय शैलचित्रों में एक भी दृश्य कामभावना प्रदर्शित करने वाला नहीं है'[११] वस्तुतः आज सत्य नहीं रही है। शैलचित्रकारों ने मानव की कामभावना को निरपेक्ष और सहज रूप में अंकित किया है। खरवई, भीमबेटका, जावरा, चंबलघाटी, कठोडिया और पंचमढ़ी के शैलचित्रों में, तथा कुप्पगलु मस्की और वेशकल के उत्कीर्ण चित्रों में कामोत्तेजना के कई रूप प्रदर्शित हैं। खरवई क्षेत्र में स्त्री-पुरुषों के युगल नृत्य दृश्य में एक नर्तक सहनर्तकियों के स्तन को स्पर्श करता दिखलाया गया है तो वहीं एक अन्य चित्र में छः पशुओं के साथ, कंधे पर लाठी रखे एक मनुष्य को उत्तेजना की अवस्था में गर्भवती नारी का पीछा करते देखा जा सकता है। वहीं के एक तीसरे चित्र में, दीर्घवृत्ताकार संयोजन के भीतर रतिक्रियारत युगल के समीपवर्ती पुरुष को कामोत्तेजना में दाँयी नारी की ओर हाथ बढ़ाते बनाया गया है। जावरा के एक चित्र में १५ पुरुषों में से नौ जननेन्द्रिय थामे अंकित हैं, और कठोडिया के एक दीर्घ आयताकार संयोजन में ३३ मानव और दो पशुओं को चित्रित किया गया है। चित्र का सामान्य भाव एक खेल का लगता है जिसमें बालक कंधों पर हाथ रखे तीन पंक्तियों में खड़े हैं दो मनुष्य अपने कंधों पर एक-एक बालक को बिठाए हैं और दो अन्य दो-दो बालकों को, एक प्रौढ़ खेल का संचालन सा कर रहा है। इन खेल में डूबे प्राणियों में से २१ नग्न तथा उत्तेजित हैं। कामुकता का भाव और भी बढ़ जाता है दाँयी ओर के पुरुष की उपस्थिति से जो अभद्र मुद्रा में लेटा है। भीमबेटका में एक कामान्ध एक नारी के केश पकड़े चित्रित है। कुप्पगुल के उत्कीर्ण चित्र का भाव भी भीमबेटका सदृश ही है। कामोत्तेजना का सबसे सौम्य प्रदर्शन संभवतः पंचमढ़ी के निम्बूभोज शिलाश्रय में अंकित अपेक्षाकृत कुछ परवर्तीकाल के एक चित्र में हुआ है। इस चित्र में झोपड़ी के अन्दर एक निर्वसन युगल समीप बैठा है। पुरुष का हाथ स्त्री के स्कन्ध पर और स्त्री का पुरुष के कटि पर अवस्थित है। कठोडिया के धार्मिक क्रिया वाले चित्र में बाँयें ऊपर की ओर काम भावना से संबंधित दो विचित्र एवं जुगुप्सित रेखांकन है। यह स्पष्ट नहीं है कि ये दोनो रेखांकन धार्मिक क्रिया से ही संबंधित हैं या स्वतन्त्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७–रतिकर्म

जावरा, भीमबेटका, कठोडिया, खरवई, चतुर्भुजनाथ नाला आदि के शैलचित्रों में रतिक्रीड़ा के विविध रूप उपलब्ध हुए हैं। भारत ही में नहीं, आस्ट्रेलिया आदि अन्यत्र में भी शैल-चित्रकारों को जोड़ा खाते स्त्री पुरुषों की आकृतियों को अंकित करने में शैलीगत कुछ कठिनाई रही है। परिप्रेक्ष्य रहित, सरल आदिम चित्रशैली में जहां हर आकृति प्रायः स्वतन्त्र, पूर्ण और दूसरे से अधिकतम अछूती रहती है, रतिक्रीड़ा का प्रदर्शन कठिन है। इसीलिए कभी तो यौन-क्रिया का प्रदर्शन स्त्री-पुरुषों की अलग-अलग खड़ी आकृतियों में गुप्तांगों को बिन्दुमय रेखाओं द्वारा जोड़ कर किया गया है(ये वर्तुल रेखायें सिर के ऊपर से होती हुई या फिर पैरों के नीचे से गुजरती हुई दिखाई जाती हैं) और कई बार पुरुष-स्त्री की आकृतियों को गुड्डे-गुड़िया की भाँति, विपरीत दिशा को सिर किये और पैरों के तलवों को मिलाकर प्रदर्शित किया जाता है। जावरा के गुफाचित्र में इसी शैली को अपनाया गया है। दैमावाद के ताम्रपाषाणकालिक मृदभाण्ड चितेरों ने भी इसी ढंग से रतिक्रिया को अंकित करना उचित समझा।

देह संबंध को चित्रित करने की तीसरी अप्राकृतिक विधि है स्त्री-पुरुष की समकोण दिशा में, या फिर धन अथवा गुणाचिन्ह आकृति में संयोजित करा कर। भीमबेटका के शिला-श्रय III बी-२० की छत में इसी प्रकार से यौन संबंध प्रदर्शित किया गया है। कठोडिया, खर-वई, संखोद और भीमबेटका में, चित्रों में नारियाँ सामने मुंह किये पुरुषों की गोद में चित्रित हैं। कठोडिया में ही दो अन्य अनार्यजुष्ट विधियाँ अंकित हैं। मस्की के नवपाषाणकालिक उत्कीर्ण चित्रकार की विचित्र कल्पना का कोई जोड़ नहीं। यहाँ काकुदयुक्त एक दीर्घश्रृंगी वृषभ की पीठ पर खड़ा एक युगल रतिक्रीड़ारत है। किं आश्चर्यं ततः परम्। रतिकर्म का सहज एवं प्राकृतिक रूप भौंरावाली पहाड़ी में शिलाश्रय II एफ ५ में लेखक को अभी हाल में, अंकित मिला है, इस छोटे से शिलाश्रय में रतिकर्म के साथ ही गर्भावस्था, पुत्र-जन्म एवं खेलते बालक के चित्र भी चित्रकार की तूलिका से उसी दक्षता से निसृत हुए हैं।

इर्विन नौमेयर को चतुर्भुजनाथनाला (राजस्थान) तथा जावरा(म० प्र०) के शैलचित्रों में सामूहिक और समलैंगिक कामाचार के दृष्य मिले हैं। चतुर्भुजनाथ में एक स्त्री से ६ मनुष्य बलात्कार करते दिखाए गये हैं जब कि जावरा में १५ मानवों में से नौ उत्तेजना की अवस्था में हैं। इनमें से दो तो समलैंगिक कामाचार में व्यस्त हैं।

८–प्रजनन

भारतीय शैलचित्रों में सगर्भानारियों को अपेक्षाकृत अधिक प्राकृतिक रूप में तथा छाया-शैली में दर्शाया गया है। माँ बनने वाली नारियों की इन माँसल ललिताकृतियों का सम्भवतः शेष संसार की शैलकला से कोई जोड़ नहीं है। भीमबेटका, भौंरावाली, जौंद्रा, लाखाजुआर एवं संखोद मे गर्भवती नारियों के कुछ बहुत ही कलात्मक चित्र उपलब्ध हुये हैं, किन्तु प्रजनन क्रिया का प्रदर्शन दो एक चित्रों में ही अभी तक दृष्टिगत हुआ है। भीमबेटका के एक चित्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकड़ी के आकार की एक नारी आकृति (जो संभवत:मातृदेवी है) प्रजनन अंग के ठीक नीचे एक शिशु के साथ चित्रित की गई है। नारी के दोनों हाथ उठे हुये एवं दोनों पाँव मुड़े हुये हैं और उसके दोनों ओर स्त्री-पुरुष भी खड़े हैं।

प्रजनन का दूसरा चित्र ऊपर वर्णित भौंरावाली की गुफा II एफ ५ में मिला है जहाँ एक शिशु को मां के पाँवों के मध्य में दिखाकर प्रजनन का संकेत दिया गया है।

९–पयधारा विसर्जन

लाखाजुआर के एक शैलचित्र में प्रतीकात्मक ढंग से चित्रित एक नारी अपनी बाँयी भुजा उठाये समीपस्थ बालक को बुला रही है उसके दोनों स्तनों से पयधारा विसर्जित हो रही है।

१०–पयपान

कठोडिया के एक गुफाचित्र में जिसमें युगल नर्तक और रतिक्रिया का प्रदर्शन है। एक नारी पाँव फैलाए अपने शिशु को पयपान कराती हुई भी अंकित की गई है।

११–शिशु पालन

खरवई के दीर्घवृत्ताकार संयोजन में जिसमें क्रीड़ारत युगल और कामोत्तेजित नर-नारी हैं, दाँयी ओर एक माता अपने दोनों हाथ फैलाये गोद के लिये मचलते शिशु को मानो उठाने का प्रयत्न कर रही है। लिखनियाँ-२ (मिर्जापुर) के शिलाश्रय में दोनों हाथों में बालक को झुलाती एक नारी का चित्रण है। पुत्र को गोद में बिठाऐ हुये एक स्त्री का चित्र बुधनी से भी प्राप्त हुआ है। कठोडिया के एक विशाल संयोजन में गुफा के भीतर एक मनुष्य बालक को बाँहो में थामे दुलार रहा है। बालक के हाथ पिता की गर्दन में पड़े हैं। भीमबेटका, भौंरावाली और पंचमढ़ी से भी शिशु पालन के दृश्य उपलब्ध हुए हैं।

१२–शिशु भ्रमण

मध्यपाषाण काल के प्राचीनतम स्तरों से शिशु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये बाल्टीनुमा टोकरी के अस्तित्व का पता चलता है। चाय बागान में प्रयुक्त टोकरियों की भाँति ये टोकरियाँ स्त्रियाँ पीठ पर लटका कर ले जाती थीं। इनको सहारा देने के लिये सिर के चारों ओर घुमाई गई रस्सी का प्रयोग किया जाता था। लाखाजुआर और नागौरी के शैलचित्रों में दो दो छोटे बच्चों को टोकरी में ले जाती स्त्रियाँ उपलब्ध हुई हैं। लाखाजुआर वाले चित्र में एक तीसरा बच्चा स्त्री के कंधे पर उसके सिर को पकड़ कर बैठा हुआ है।

१३–खेल तमाशे

भीमबेटका के शिलाश्रय III एफ-२ में उछलते, कूदते और खेलते बालकों की छोटी-छोटी गतिमय आकृतियाँ अंकित की गयी हैं। एक स्थान पर दो बालक आमने सामने हाथों को मिलाकर मानो नाच रहे हैं, कठोडिया के पूर्व वर्णित दीर्घ आयताकार संयोजन में, जिसमें ३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव और दो पशु चित्रित हैं, क्रीड़ारत बालकों का प्रदर्शन है। इस चित्र में बाँये से दो बालक अपने कंधों पर दो छोटे बच्चों को बिठाए पंक्ति में खड़े हैं। उनके आगे पाँच बालक उसी क्रम से खड़े विविध क्रियाऐं कर रहे हैं। इनके आगे दाँयी ओर को मुंह किये छः बालक एक दूसरे के पीछे खड़े होकर अगले वाले के कंधे में दोनों हाथ रखे, झुके से हैं। पाँचवे और छठे के बीच कुछ दूरी पर एक तगड़ा सा तरुण अपने कंधे पर एक लम्बे से लड़के को बिठाए है जो उसी क्रम से तीसरे छोटे बच्चे को पुनः अपने कंधे पर बिठाए हुए है। छोटा बच्चा दोनो हाथों से लम्बे लड़के के सिर को थामें है, और उस लम्बे लड़के ने भी नीचे के तरुण के सिर को पकड़ रखा है। इसके पैर नीचे वाला तरुण दोनों हाथों से साधे है। कुछ दूरी पर दाँयी ओर दो और बालक इसी प्रकार एक तरुण के कंधे पर बैठे हैं; छः पक्तिबद्ध बालकों के सामने एक अधेड़ आयु का पुरुष हाथ में छड़ी लिये इस खेल का संचालन सा कर रहा है। उसके दाँयी ओर सात बालक बाँहो में बाँह सटाये नाचने की सी मुद्रा में बाँयी ओर को बढ़ रहे हैं। भीमवेटका के शिलाश्रय III सी-१९ में एक नट दूसरे नट को अपने हाथों में उठाए हुये है। सागर क्षेत्र के नरयावली शिलाश्रय में एक ऊर्ध्वकेशी मानव हाथों में एक आयताकार वस्तु को लिये हुये आगे बढ़ रहा है जबकि उसके सामने ऊंची छलांग लगाकर जमीन को सिर के बल आता हुआ दूसरा मनुष्य दिखाया गया है जिसके हाथों में एक छल्ला और छड़ी है, इसी प्रकार का अंकन चंबलघाटी के चतुर्भुजनाथ नाले के एक शिलाश्रय में हुआ है। वहाँ भी एक स्त्री हाथ में लम्बा कांटेदार भाला थामे, झुमके वाले बाजूबंद और झाड़ू सी छितरी कटिबंध पहिने, एक उल्टे खड़े बालक को सम्हालती सी अंकित की गई है।

१४–छेड़ना

भीमबेटका के एक छोटे से शिलाश्रय III ए-१५ में चार बालकों के पीछे भागती एक वृद्धा को चित्रित किया गया है। वृद्धा की पीठ झुकी, पैर मुड़े और शुष्क स्तन लटके हुये बनाये गये हैं। उसका एक हाथ बच्चों की ओर उठा है और दूसरा पीठ के ऊपर, बाँयी ओर को भागते बच्चे मुड़कर बुढ़िया को देख रहे हैं, वृद्धा के पीछे दूसरी दिशा को मुँह किये एक अन्य स्त्री बैठी है। चित्र को देखकर लगता है चार बच्चे एक वृद्धा, जो कि अन्य स्त्री के साथ बैठी थी, कुपित कर उसकी असमर्थता का उपहास कर रहे हैं।

१५–सामूहिक प्रयाण

शिकार के अतिरिक्त भी सामूहिक प्रयाण के दृश्य शैलचित्रों में उपलब्ध हुए हैं। भीमवेटका के शिलाश्रय III ई-१४ में अंलकृत मुखौटों, भुजावंधों, कंगनों, कटिबंधों एवं जानुबंधों से सुशोभित मनुष्यों को बड़ी तेजी से दौड़ते चित्रित किया गया है। वहीं दूसरे शिलाश्रय III एफ-१४ में दस छद्मवेषी मानवों को एक के पीछे एक, त्वरा में पलायन करते आंका गया है। यह स्पष्ट नहीं है कि इस प्रकार की भागदौड़ किसी सामूहिक धार्मिक कार्य में सम्मिलित होने के लिये हो रही है या कहीं दूर-दराज के स्थान से बहुमूल्य वस्तु को लाने के लिये चल पड़े काफिले में सम्मिलित होने के लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६–झूला झूलन

जावरा क्षेत्र के एक शिलाश्रय में श्वेतवर्णी रेखाओं में झूला झूलते एक बालक को चित्रित किया गया है। यह बालक एक मुखौटा और कटिबंध पहिने है, दोनों हाथों से जिस झूले को वह थामें है वह सजाया हुआ सा लगता है। झूले की रस्सियाँ दो खम्बों या सीधे वृक्ष के तनों से बंधी हुई हैं।

१७–मुखौटा पहिनना

पाषाणकाल में पहिने जाने वाले मुखौटों की विविधता का अनुमान तो इसी एक तथ्य से लगाया जा सकता है कि भीमबेटका की एक पहाड़ी में ही १२ प्रकार के मुखौटे चित्रों के उपलब्ध हुए हैं। इतनी विविधता के बाद भी कोई ऐसा चित्र देखने में वहाँ नहीं आया है जिसमें मनुष्य को मुखौटे पहिनते अथवा उतारते हुये दिखाया गया हो। हाँ, पश्चिमी लाखा-जुआर के एक गैरिक वर्णी चित्र में एक मनुष्य, दोनों हाथों से अपने सिर पर, दो बड़े सींगों वाले मुखौटे को रखता हुआ अंकित किया गया है।

१८–भोजन करना

शैलचित्रों में भोजन ग्रहण करते हुये मनुष्य पाटनी की पहाड़ी, कठोडिया, भीमबेटका और लाखाजुआर के क्षेत्रों से उपलब्ध हुए हैं। पाटनी की पहाड़ी में एक सश्रृंग मुखच्छद्मधारी भागता हुआ मानव मछली के आकार की किसी वस्तु को खाते हुये चित्रित किया गया है, तो कठोडिया के एक वृहद संयोजन में गुफा के भीतर बैठी एक स्त्री गोलाकार खाद्य पदार्थ ग्रहण करती हुई अंकित की गयी है। इस द्वितीय संयोजन में अन्य बहुत सी आकृतियाँ तो हैं ही, पास ही तिकोनी टोकरी में तथा फर्श पर भी संभवतः फल बिखरे पड़े हैं और यह स्त्री फल ही खा रही है ऐसा अनुमान किया जा सकता है, चित्र की सजीवता और भी बढ़ गयी है इस स्त्री के पीठ पीछे बैठी अन्य आकृति की उपस्थिति से जिसका आधा भाग मिट चुका है और वह फल खाती स्त्री का एक हाथ पकड़े हुये है। भीमबेटका के शिलाश्रय III सी-१९ के दक्षिणमुखी एक छोटी खोह में फल एकत्रित करने का एक दृश्य अंकित है, इस दृश्य में एक मनुष्य फलदार वृक्ष पर चढ़ते हुये प्रदर्शित है, दूसरा हाथ में फल थामें खड़ा है और एक तीसरा पास ही जमीन में बैठा है जो अपने बाँये हाथ में फलों का गुच्छा पकड़े है और दाँये हाथ से फल तोड़ कर खा रहा है।

लाखाजुआर के दो भोजन दृश्यों में से एक में त्रिभुजाकर गुफा के नीचे एक स्त्री शायद भोजन करती दिखाई गई है। उसके बाँये हाथ में 'यू' आकार का बर्तन है जिसमें कुछ खाद्य है (संभवतः माँस का लोथड़ा) और दाँया हाथ खुले मुंह के समीप है। गुफा में तीन अन्य लोग भी हैं एक अधेड़ लेटा हुआ, दूसरा बालक भागता हुआ और तीसरा पुरुष (या स्त्री) बालक के पीछे भागता हुआ। दूसरे भोजन दृश्य में एक झोपड़ी के नीचे तीन लोग भोजन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं–दो प्रौढ़ और एक बालक। आमने सामने बैठे लोगों में एक निश्चित रूप से स्त्री है जो एक मछली को आत्मसात कर चुकी है (उसके गोलाकार उदर में एक खड़ी मछली प्रदर्शित है) और दो अन्य को भी खाने वाली है जो उसके समीप ही अंकित हैं। दो मछलियों के पास ही तीन छोटे-बड़े ठोस पिंड भी जमीन पर पड़े हैं संभवतः वे भी खाद्य पदार्थ ही हैं। सामने वाला दूसरा प्रौढ़ एक संकरे मुँह और चौड़े पेंदे वाले बर्तन को बाँये हाथ में थामें, दाँये हाथ से भोजन कर रहा है। दोनों के बीच, कुछ दूरी पर एक बालक दोनों हाथों से भोजन करता हुआ देखा जा सकता है। उसके सामने भी दो छोटे ठोस पिंड रखे हुये हैं एक बर्तन ताक में भी टंगा है। दो तूम्बी के आकार के बर्तन जिनको टांगने की रस्सी एक ही है, दोनों प्रौढ़ों के पास पड़े हैं।

१९–तरल पदार्थ पीना

भीमबेटका के शिलाश्रय III एफ-१४ की छत में एक मुखौटाधारी वृद्ध को जल या मधु-पान करते हुये दिखाया गया है। जमीन में बैठा यह वृद्ध अपनी पीठ को बाँये हाथ से सहारा दिये हुये है और दाँये हाथ से एक तंग मुँह वाले बर्तन, जिसका आकार फुटबाल के ब्लेडर सरीखा है, को अपने मुँह में लगाये है उसके पैर सामान्यतः बैठने की मुद्रा में मुड़े हैं। मुखौटा चोंच और कलंगी/शृंग युक्त है।

२०–आग सेंकना

भीमबेटका की पार्श्ववर्ती पहाड़ी भौंरावाली के शिलाश्रय III एफ-६ के सीधे शिलापट पर गहरे लाल रंग में एक अति प्राचीन धुंधला रेखाचित्र दृष्टिगत हुआ है जिसके द्वारा संभवतः एक मनुष्य को आग सेंकते दर्शाया गया है। मनुष्य आराम की मुद्रा में एक पाँव पसार कर और दूसरे को मोड़ कर दोनों हाथों से समीपवर्ती लपटदार आग की उष्मता का आनन्द ले रहा है।

२१–विश्राम करना

लाखाजुआर और भीमबेटका के दो शिलाश्रयों में विश्राम करते मनुष्यों का चित्रण हुआ है। यहाँ एक त्रिभुजाकर गुफा के भीतर एक अधेड़ अपने बाँये हाथ को तकिया बनाकर जमीन पर लेटा है उसका दाँया हाथ कमर पर टिका है, बाँया पाँव पसारा और दाँया मुड़ा हुआ है। भीमबेटका में शिलाश्रय III ई-१५ के बाँयी ओर की निचली छत पर एक रेखाकृति में गुफा के भीतर एक किशोर को पैर फैलाये आराम की मुद्रा में बैठे अंकित किया गया है। उसकी मुद्रा दीवाल के सहारे पीठ टिका कर आराम करते मनुष्य की मुद्रा के समान है। बाँयी ओर गुफाद्वार से एक प्रौढ़ हाथ में दन्ड लिये हुये प्रवेश करते हुये भी दिखाया गया है। इन दो दृश्यों के अलावा पंचमढ़ी क्षेत्र में महादेव शिलाश्रय में भरी-पूरी एक झोपड़ी के भीतर पाँव फैला कर विश्राम करती दो महिलाओं का चित्रांकन हुआ है, इस चित्र में बाँयी ओर की बड़ी स्त्री के समीप गोद में, एक शिशु बैठा है। यह स्त्री अपने सामने बैठी दूसरी स्त्री के जूड़े को बाँये हाथ से स्पर्श करती हुई दिखाई दे रही है। जगदीश गुप्त ने इसे केश-विन्यास का दृश्य कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२–भार वाहन

पंचमढ़ी[१२], पुतलीकराड़, शहदकराड़, भीमबेटका और लाखाजुआर के कई चित्रों में मनुष्यों को कांवर में, लाठी के एक छोर पर पोटली बाँध कर, सिर तथा पीठ पर टोकरी में रखकर सामान ले जाते दर्शाया गया है। भीमबेटका के शिलाश्रय III ए-२१ में मनुष्य कंधों पर सुसज्जित लाठियों के सहारे चमड़े के थैलों को दोनों ओर लटकाकर प्रयाण करते चित्रित किये गये हैं सिर में भरी टोकरी रख कर आदिम सीढ़ियों के सहारे ऊपर चढ़ते मानवों का अंकन लाखाजुआर के एक चित्र में अत्यन्त स्वाभाविकता से हुआ है। बच्चों और फलों को पीठ की लम्बी टोकरियों में रखकर ले चलने के कई चित्र उपलब्ध हुये हैं।

२३–सीढ़ी चढ़ना

लाखाजुआर के ऊपर वर्णित दृश्य में ऊंचे मकान में दोनों ओर से खूँटेदार खम्बों के सहारे सिर में बोझा लेकर चढ़ते दो मनुष्यों को अंकित किया गया है। ऊपर चढ़ते इन मनुष्यों की मुद्राएँ अत्यन्त स्वाभाविक हैं। कुहनी तथा घुटनों के पास आभूषण पहिने और लंगोटा लगाये दोनों मनुष्य एक-एक हाथ से खम्बों को पकड़ते हुये तथा दूसरे हाथ से सिर के बोझे का ध्यान रखते हुए सावधानी से लगभग ६ मीटर ऊँचे मचान पर चढ़ रहे हैं। चित्र की स्वाभाविकता मचान के ऊपर बैठे दो मनुष्यों की तत्पर आकृतियों से, जो ऊपर चढ़ते मनुष्यों को सहारा देने को तैयार बैठे हैं और भी बढ़ गयी है। खूँटेदार खम्बों से निर्मित ये सीढ़ियां अत्यन्त आदिम हैं जो शाखाबहुल वृक्षों के तनों को काट-छांट कर बनाई गयी हैं।

२४–खम्बे गाड़ना

भीमबेटका क्षेत्र की भौंरावाली पहाड़ी के शैलाश्रय II बी-३० में एक विचित्र दृश्य है जिसे अंत्येष्टि क्रिया के रूप में अभिहित किया गया है। इस दृश्य में वृत्त के भीतर तीन बच्चे तथा परिधि पर क्रमशः कई खम्बे गाड़ता एक मनुष्य दिखाया गया है। जावरा के चूहों का शिकार करती महिलाओं वाले दृश्य में भी चूहों के बिलों को खूंटे गाड़कर तोड़ती महिलाओं को देखा जा सकता है।

२५–नाला पार करना

भीमबेटका के शिलाश्रय III सी-६ में पूर्वी प्रवेश द्वार के समीप एक रक्तवर्णी रेखांकन द्वारा दो मनुष्यों को संभवतः नाला पार करते हुये दिखाया गया है। चित्र में आड़े पड़े एक लकड़ी के कुंदे के ऊपर हाथों से आपस में सहारा देते हुये एक के पीछे दूसरा ऐसे दो मनुष्यों को सावधानी से चलते हुये अंकित किया गया है।

२६–कलह

शैलचित्रों के अति प्राचीन स्तरों से यद्यपि कलह के कोई दृश्य देखने में नहीं आये हैं किन्तु किंचित परवर्ती काल के चित्र पंचमढ़ी तथा रायसेन क्षेत्र से उपलब्ध हुये हैं जिनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यों के आपसी झगड़ों का अंकन किया गया है। जगदीश गुप्त[13] ने पंचमढ़ी के जम्बूद्वीप शिलाश्रय से गैरिक वर्ग में अंकित शिलायुद्ध करते मनुष्यों का अन्वेषण किया है तो जैकोवसन[14] ने पुतली कराड़ से रक्तवर्ण में निर्मित मुष्टियुद्ध को सन्नद्ध वीर बाँकुरों को खोज निकाला है।

२७–अन्त्येष्टि क्रिया

भौंरावली, शिलाश्रय II बी-३० में अंकित दृश्य में जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, दो प्रौढ़ मानवाकृतियाँ दोनों हाथों से अपना सिर थामे बैठी हैं उनके सामने ही एक वृत्ताकार क्षेत्र के भीतर ६ बच्चे समानान्तर पड़े हुये से दिखाये गये हैं। इस वृत्त की परिधि पर एक मनुष्य खम्बे गाड़ता हुआ बताया गया है। सारे दृश्य से लगता है कि सिर पीटती आकृतियाँ नारियों की हैं जो तीन बच्चों के असामायिक निधन पर शोक विह्वल हैं। गोलाकार शवाधान के चारों ओर खंबे गाड़ता मनुष्य अन्त्येष्टि क्रिया कर रहा है।

(स) आर्थिक कार्यकलाप

आर्थिक कार्यकलापों को दो वर्गों में रखा जा सकता है (i) आखेट सम्बन्धी कार्य कलाप और (ii) खाद्य संग्रहण संबंधी कार्यकलाप।

(i) आखेट सम्बन्धी कार्यकलाप

भारत में ही नहीं संसार में अन्यत्र भी शैलचित्रों का प्रधान विषय वन्य प्राणी और उनका आखेट है। आखेट संबंधी विविध क्रियाओं के मनोहारी दृश्य शैलचित्र में उपलब्ध हुये हैं, नाना प्रकार के मुखच्छद्म लगाये, शिकारियों के दल के दल बड़े-छोटे पशुओं के पीछे भागते, उनको घेरते और प्रहार करते चित्रित किये गये हैं। मध्य पाषाण कालीन काल में सामूहिक आखेट के दृश्य अधिक मिलते हैं। लाखाजुआर[15] के एक चित्र मे ८० मानव शिकार में लगे हुये दर्शाये गये हैं। स्त्रियाँ भी यदाकदा बड़े जानवरों के घेराव में मदद देती थीं। शिकारी लोग सामान्यतः डण्डे, धनुष, बाण, भाले और गोफन का प्रयोग करते थे। मिर्जापुर क्षेत्र के ढोंकवा और लाहौरी शिलाश्रयों में आखेटक सम्भवतः जलती लकड़ियों से शाही और बाघ का सामना कर रहे हैं तो बादामी क्षेत्र के एक शिकार दृश्य में हरिण-श्रृंग निर्मित अस्त्र से शिकारी जंगली भैंस का पीछा कर रहा है। जानवरों को वाद्ययंत्रों की ध्वनि और चिल्लपों मचाकर भ्रमित किया जाता था। बाँस, ताँत और रस्सी से बने विविध प्रकार के फंदों तथा बाड़ों द्वारा भी जानवरों को फंसाने का प्रमाण शैलचित्रों से उपलब्ध हुआ है। आखेट सम्बन्धी कार्यों को निम्न उपशीर्षकों में रखकर वर्णित किया गया है—

२८-लक्ष्य निर्देश, २९-प्रयाण, ३०-अनुगमन, ३१-पशु-घेराव, ३२-निशाना, ३३-घायल पशु से त्राण, ३४-दुर्घटना, ३५-जीवित पशु को पकड़ना, ३६-बध, ३७-बांधना, ३८-वापसी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३९-चर्मकार्य, ४०-मछली पकड़ने जाना, ४१-मछली पकड़ना, ४२-कछुआ पकड़ना, ४३-पक्षी बींधना और ४४-छोटे प्राणियों की हत्या।

२८–लक्ष्य निर्देश

भीमबेटका के शिलाश्रय III एफ-३५ बी में हरिणश्रृंगमय मुखौटा पहिने तथा पर्णकटि-बन्ध बांधे एक शिकारी समीपवर्ती पांच उत्सुक आखेटकों के मध्य, आधी खड़ी मुद्रा में दाँयी ओर को हाथ उठाये लगता है अचानक आए किसी पशु की ओर अंगुलिनिर्देश कर रहा है यद्यपि चित्र में इंगित पशु का अंकन नही हुआ है किन्तु आकृतियों के संयोजन से निश्चय ही लक्ष्य निर्देश का बोध होता है। इसी प्रकार का एक अन्य चित्र गुहा III ए-२२ में भी पाया गया है जहाँ आठ शिकारी अप्रत्याशित शिकार के कारण अधीर हो उठे हैं।

२६–प्रयाण

भीमबेटका, लाखाजुआर और सिंगनपुर में ऐसे कई चित्र हैं जिनमें सज्जित शिकारी प्रयाण की तैयारी में हैं। सबसे आकर्षक चित्र संभवत: भीमबेटका के शिलाश्रय III सी-२१ में है जहाँ नौ धनुर्धर और दो गदाधर पंक्तिबद्ध हो सामने से आते सात पशुओं की ओर गमन कर रहे हैं। पूर्वी लाखाजुआर की गुफा IV ए-९ में भी इस प्रकार प्रयाण करते नौ शिकारी प्रदर्शित हैं। सिंगनपुर के एक शैलचित्र में सात लाठीधारी प्रयाण की मुद्रा में अंकित हैं।

३०–अनुगमन

भीमबेटका में ही एक छोटी सी गुफा III ई-३ में तीन शिकारी लम्बे विचित्र भाले लेकर सात जंगली भैंसों का पीछा करते हुये दर्शाये गये हैं वहीं गुफा III सी-१० और III सी-१८।ऐ में वनमहिष आखेटकों द्वारा खेते जा रहे हैं। लघुपाषाणास्त्रों से निर्मित कांटेदार शूल से सज्जित एक शिकारी गुफा III ऐ-२४ में दीर्घदेही सांभर का पीछा कर रहा है- तो गुफा III सी-२१ और III सी-४८ में नीलगाय और गौबंश के पीछे भागते आखेटक उपलब्ध हुए हैं। जावरा में छद्मवेषी धनुर्धर हाथियों[१६] का तथा कठोडिया में आखेटधर्मी मानव हिंस्र पशुओं का पीछा करते पाये गये हैं।

३१–पशु घेराव

पीछा करते करते उचित अवसर पाकर समूहबद्ध शिकारी पशुओं को घेरते हैं, बाजे की आवाज और मुंह ध्वनि द्वारा वन्य प्राणियों को भयाक्रान्त और दिग्भ्रमित कर ऐसी परिस्थिति में ले आते हैं जहाँ उन पर आसानी से वार हो सकता है। अभी भी यदा-कदा जंगलों में इस प्रकार का शिकार होता है। कुछ दशक पूर्व शक्तिसम्पन्न शौकिया शिकारी मनोरंजनार्थ भी ऐसे शिकारों का आयोजन करते थे। लाखाजुआर का एक मध्यपाषाणकालिक चित्र पशुघेराव का जीवन्त दृश्य उपस्थित करता है। चित्र में, जो कि एक उथले शिलाश्रय के खड़े पट पर अंकित है, ८० शिकारी चार पंक्तियों में दौड़ते हुये सुअर, जंगली भैंस, मृग और अन्य अपरिचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुओं को घेरते दिखाये गये हैं। प्रथम पंक्ति में नौ मुखौटाधारी बीन के आकार के बाजे बजाते दायीं ओर से बढ़ रहे हैं तो ११ मनुष्य बाँयी ओर से अपने हाथों को खुले मुंह के समीप वाली मुद्रा में भाग रहे हैं (वे संभवतः कुछ ध्वनि निकाल रहे हैं), पचास शिकारी एक तीसरी दिशा से हाथ उठाये दौड़ रहे हैं। चौथी पंक्ति में, जो जानवरों के भागने की दिशा में है दो तो पेड़ पर चढ़ चुके हैं तथा एक ने भागते सुअर को उसके पिछले दाँये पैर से पकड़ने में सफलता प्राप्त कर ली है। लाखाजुआर के एक अन्य चित्र में दो मुखौटा और भालाधारी मानव एक विशाल सुअर को घेर रहे हैं।

भीमबेटका में भी पशु घेराव के कई आकर्षक चित्र हैं। शिलाश्रय III एफ-३५/बी में एक गाय नौ लोगों द्वारा घेरी गयी है इनमें से दो तो अपने भाले पशु देह में घुसा भी चुके हैं। इसी शिलाश्रय के उत्तरी निचले भाग में अंकित एक चित्र में छः लोग लाठियों की मदद से दो चीतल और एक भैंस के घेराव में लगे हैं। शिकारियों में चार औरतें लगती हैं। गुफा III एफ-१ में २३ शिकारी एक नीलगाय को घेरे बैठे हैं तो III ए-२१ में ११ लोग महाकाय महिष को चारों ओर से लपेट चुके हैं। कलात्मकता की दृष्टि से शिलाश्रय III सी-३८ का चित्र अद्वितीय है जहाँ झाड़ूनुमा विशाल फंदों की सहायता से शिकारी १६ चीतलों को घेर रहे हैं। भोपाल के समीपवर्ती धरमपुरी में आठ पशु, सात शिकारियों द्वारा घेरे जा चुके हैं। मध्यवर्ती प्रमुख लक्ष्य है एक वन महिष इसी से मिलता जुलता चित्र नरसिंहगढ़ (राजगढ़ जनपद) के एक शिलाश्रय में उपलब्ध हुआ है। यहाँ एक दीर्घश्रृंगी ककुदमय वृषभ आठ धनुर्धरों के मध्य में चित्रित किया गया है। सिंगनपुर में २२ शिकारी एक बैल और सुअर को घेरते शिलांकित है। घोरमंगर में छः शिकारियों द्वारा एक गैंडा और कठोडिया में पाँच धनुर्धरों द्वारा १५ बन्दरों को घेरने के दृश्य दृष्टिगत हुये हैं। पुतलीकराड़ का वह दृश्य भी कम रोचक नहीं है जिसमें एक बारहसिंगा सामने से तो तीन मनुष्यों द्वारा रोका गया है और पीछे तथा बगल से पाँच कुत्तों द्वारा, वह मुड़ी गरदन से पीछे देख रहा है तथा भय के कारण अपनी पूंछ उठाये हुये है।

३२–निशाना

समूहबद्ध शिकारी बड़े जानवरों को घेरकर उन पर चारों ओर से निशाना साधते थे जैसा कि इमली खोह (पंचमढ़ी) के एक चित्र में प्रदर्शित किया गया है। यहाँ पाँच धनुर्धर एक बैल को चार तीरों से घायल करने के बाद भी उस पर निशाना साधे हुये हैं। जबकि छोटे जानवर एकाकी शिकारियों द्वारा प्रायः किसी वस्तु की ओट से बींधे जाते थे जैसा भीमबेटका तथा अन्य कई क्षेत्रों के शैलचित्रों में अंकित किये गये हैं। भीमबेटका के शिलाश्रय III एफ-३५/ बी में दो चरते हरिणों को ऊँची घास के पीछे से एक छद्मवेषी अपने तीर का निशाना बना रहा है। शिलाश्रय III एफ-१४ में एक आखेटक सामने आते भेड़िये पर धनुष ताने खड़ा चित्रित किया गया है। लाखाजुआर के गुहाचितेरे ने आसन्नमृत्यु नरहरिण के अंतिम क्षणों को बड़ी दक्षता से अमर्त्य बना दिया है। चित्र में मौत से अनजाने एक भोले हरिण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेखटक चरते हुये दिखाया गया है । उसके पीछे भारी मुखौटा पहिने तथा बड़े से कांटेदार भाले को सीधा ताने एक चतुर शिकारी चुपचाप आ चुका है ।[१७]

३३–घायल पशु से त्राण

शिकारी जीवन का वह रोमाचंक क्षण जब शिकार के लोभ में जीवन से ही हाथ धोने की नौबत आ जाती है, आदिम चितेरों की विषय वस्तु से छूटने नहीं पाया है । घायल क्रोधातुर पशु द्वारा शिकारियों को खदेड़ने के तीन चित्र अभी तक उपलब्ध हो चुके हैं—भीमबेटका, जावरा और गाँधी सागर में । भीमबेटका (शिलाश्रय III-१८ ऐ) के शिकार दृश्य में तीन धनुर्धर जहाँ एक भैंस को फंदे में लेने की सोच रहे हैं वहीं चौथा निहत्था शिकारी एक जंगली सुअर द्वारा भगाया जा रहा है । गाँधी सागर के चित्र में भी जंगली सुअर शिकारी को भगाते हुये अंकित है किन्तु यहाँ इतनी कुशल है कि शिकारी निहत्था न होकर धनुतीर सज्जित है। जावरा का दृश्य इन दोनों से कहीं अधिक कलात्मक और मोदक है । एक दुस्साहसी भालेधारी ने भीमकाय श्रृंगधारी गैंडे को निशाना बनाने की भूल की और नतीजा वही हुआ जो चित्र में दर्शित है । सर पर पाँव रख कर भागना पड़ा आगे-आगे मानव पीछे-पीछे दानव । चित्र अपनी गतिमत्ता, स्वाभाविकता और कलात्मकता में अप्रतिम है ।

३४–दुर्घटना

भीमबेटका (III एफ-३५/बी शिलाश्रय) तथा मिर्जापुर (घोरमंगर शिलाश्रय) में दो चित्र ऐसे मिले हैं जिनमें गैंडे से जूझते छः शिकारियों में से एक को क्रुद्ध पशु ने आसमान में उछाल फेंका है । दोनों ही चित्रों में जहाँ छः मुखौटाधारी आखेटक हैं वहीं वे एक समान कांटेदार शूल लिये हुये हैं । मिर्जापुर वाले दृश्य में गैंडे द्वारा उछाला गया शिकारी जानवर के ठीक सर के ऊपर औंधा गिरा, जबकि भीमबेटका के दृश्य में जानवर ने भाले समेत शिकारी को इतनी जोर से उछाला कि वह गैंडे की पूछ के पास गिरा पीठ के बल । विषयवस्तु की दृष्टि से शत प्रतिशत साम्यता रखने वाले ये दोनों चित्र यद्यपि एक दूसरे से काफी दूरी पर अंकित हैं तथापि वे विगत घटी किसी दुर्घटना के स्मृतिचिन्ह माने जा सकते हैं ।

३५–जीवित पशु को पकड़ना

लाखाजुआर के पशुघेराव वाले दृश्य में, जैसा कि देख चुके हैं, एक शिकारी भागते सुअर को उसकी पिछली टांग से पकड़ने में सफल हो गया है । सप्राण पशु को पकड़ने का एक उदाहरण अरेगुड्डा से भी उपलब्ध हुआ है । यहां एक शैलचित्र में छरहरे बदन का छद्मवेषी नर चीतल की पिछली टांग को रोके खड़ा है । यद्यपि चित्र में हस्तगत टांग वाला भाग अब मिट चुका है किन्तु भाव अभी भी स्पष्ट है ।

३६–पशु वध

आखेट की वह विधि जिसमें निश्चित दिशा में हांके गये पशु ऊँची चट्टानों से गिर कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक मौत को प्राप्त होते थे, उत्तर पूर्व पुरापाषाणकालीन यूरोप के अवशेषों से प्रमाणित हुई है। इस प्रकार के आखेट का प्रदर्शन भीमबेटका के शिलाश्रय III सी-२१ के एक चित्र में भी देखा जा सकता है। चित्र में चार गिरते हुये तथा तीन गिर कर भागने का असफल प्रयास करते हुये चीतलों की ओर दो आखेटकों को अंकित किया गया है। इनके अलावा तीन बड़े जानवर विपरीत दिशा को भागते बनाये गये हैं। लाखाजुआर के चित्रों में वर्गाकार फंदों में उलझी गर्दन वाले हरिणों को तीरों से मारते हुये दिखाया गया है। समीपवर्ती भौंरावली पहाड़ी पर दो आखेटक कुत्तों की सहायता से कई बारहसिंगों का वध करते हुये चित्रित हैं। बादामी क्षेत्र में महिषवध का एक मुखर चित्र देखने में आया है। पीठ में घुसे भाले की पीड़ा से पशु का मुख खुला है और पैर लड़खड़ा रहे हैं।

३७–बाँधना

शिकार में मारे गये पशु को ले जाने से पूर्व रस्सियों से बाँधने का प्रमाण भी सातकुण्ड के एक चित्र में उपलब्ध हुआ है। चित्र में एक धनुर्धर अपने सर चाप को खड़ी अवस्था में जमीन में टिका कर मृत पशु को बाँधने में लगा हुआ है। उसके बाँयी ओर एक अन्य मनुष्य खड़ा यह सब देख रहा है।

३८–वापसी

जावराक्षेत्र के दो मिलते जुलते चित्रों में दो आखेटक पीठ की टोकरी / पोटली में बहुत सारे मारे गये पशुओं को ले जाते अंकित किये गये हैं। इनमें से एक मुखौटा कटिवस्त्रधारी धनुर्धर अपनी टोकरी में हरिण, बन्दर, मछली, चूहे और अन्य जानवरों को लादे लम्बे डग भरता चल रहा है जबकि दूसरा मुखछद्म और लंगोटाधारी शिकारी चूहे जैसे छोटे प्राणियों से भरी बाल्टीनुमा टोकरी को सिर के बल टिकाये तीव्रगति से चल रहा है। भोपाल क्षेत्र के शिव-मन्दिर शिलाश्रय में दो मनुष्य कन्धे के आरपार रखी लाठी से लटकाकर एक तेंदुये को ले जा रहे हैं और भीमबेटका के शिलाश्रय III सी-२१ में दो लोग एक सुअर को उसी प्रकार लटका कर ले जाते देखे गये हैं। सातकुण्ड में एक ऐसा चित्र भी मिला है जिसमें शिकारी कन्धे पर रखे धनुष के एक छोर पर छोटे आकार के प्राणी को लटकाकर ले जा रहा है। लाखाजुआर के चित्र में जहाँ वर्गाकार फंदों में हरिणों को फंसाकर मारने का दृश्य है वहीं एक स्त्री घायल हरिण को सींग पकड़कर घसीटती ले जाती भी अंकित है।

३९–चर्म-कार्य

यद्यपि ऐसा कोई चित्र नहीं मिला है जिसमें जानवरों की खाल निकालने का कर्म अंकित हो तथापि, पश्चिमी लाखाजुआर, शहदकराड़ और पुतलीकराड़[२०] में धूप में सूखने रखी गई खालों से मिलती जुलती वस्तुयें देखने में आयी हैं, पुतलीकराड़ में तो इस प्रकार की वस्तुओं को आड़े खम्बों पर मानो सुखाया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०–मछली पकड़ने जाना

लाखाजुआर की परबर्ती पहाड़ी जौन्द्रा के एक शैलचित्र में, जो नीलाभ हरे रंग, और आरम्भिक मध्यपाषाणकालीन शैली में निर्मित है, कन्धे पर लम्बे ढोल के आकार की वस्तु ले जाता एक मनुष्य दृष्टिगत हुआ है। लगता है यह वस्तु मछली पकड़ने का फंदा है जो बाँस की खपच्चियों किंवा पतली शाखों से बना है। इस प्रकार के फंदे अभी भी आदिम समाजों द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं। यह फंदा मनुष्य के अनुपात से १ मीटर लम्बा तथा लगभग २५ से०मी० चौड़ा लगता है। मध्य की अपेक्षा इसके दोनों सिरों की चौड़ाई अधिक है। खप्पचियों को आपस में बाँधने वाली रस्सियाँ भी इन छोरों के पास दर्शाई गई हैं। छोरों के आर पार निकली लकड़ियों के सहारे इस फंदे को मछुआरा अपने बाँये कन्धे पर ले जा रहा है।

४१–मछली पकड़ना

यद्यपि शैलचित्रों में लगभग ३६ प्रकार की मछलियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनमें कुछ तो बहुत छोटी आकार की हैं, और कुछ १ मीटर से भी लम्बी। लाखाजुआर के शिलाश्रय IV ए-२१ में एक सर्पाकर मछली १.२२ मीटर लम्बी है तो बया के प्रमुख शिलापाट पर अंकित मछली की लम्बाई १.१६ मीटर है। जावरा में भी इसी प्रकार की बड़ी मछलियों का अंकन किया गया है। मछलियों की अन्य आकृतियाँ भीमबेटका, जौन्द्रा, कठोडिया और सागर क्षेत्र के कई शिलाश्रयों में देखने में आयी हैं किन्तु मछली पकड़ने के दृश्य लाखाजुआर और कठोडिया में ही अभी तक प्राप्त हुये हैं। लाखाजुआर में मिले दो चित्रों में से एक में ८ मनुष्यों को एक गोल तालाब के चारों ओर खड़े-खड़े बैठकर, घुटने टेक कर और लेटकर भी मछली पकड़ने की क्रिया में लगे दर्शाया गया है। तीन मनुष्य बैडमिन्टन रैकेट से मिलते जाल थामें हैं जो संभवतः कच्ची डाल या बाँस की खपच्चियों को मोड़कर और उसमें ताँत या डोरी का जाल बुनकर बनाये गये हैं। एक धनुष बाण लेकर शिकार पर उतरा है औंगी लोगों की भाँति, तो दूसरा रीते हाथों से ही पकड़ना चाहता हैं कुमैंया लोगों की भाँति 'हत्यू' लगाकर। खड़े और घुटने टेके मछुआरों ने क्रमशः तीन और एक मछली पकड़ ली हैं। एक मनुष्य मछलियाँ जमा कर रहा है तो एक बालक जमीन पर क्रम से रखी चार मछलियों की निगरानी में बैठा है। दो वर्गाकार टोकरियाँ भी चित्र में अंकित हैं।

लाखाजुआर के दूसरे चित्र में दो मनुष्य पत्थरों से मछलियों पर निशाना साध रहे हैं। दो अन्य मनुष्यों के सन्मुख १३ छोटी मछलियां दाँयी ओर दिखाई गई हैं। कठोडिया के शैल-चित्रों में से एक में ऊर्ध्वाकार खड़ी मछली को एक धनुर्धर लक्ष्य बनाये हुये है, दूसरे चित्र में एक टोकरीयुक्त मछुआरा बड़ी सी मछली को थूथन से थाम कर दाँये हाथ से प्रहार कर रहा है। दोनों चित्रों में मनुष्य के अनुपात में मछलियाँ कहीं बड़ी हैं।

४२–कछुआ पकड़ना

लाखाजुआर के प्रथम चित्र में, जिसमें ८ मनुष्य मछली मारते दर्शित हैं, एक अपना जाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमीन में रख कर रीते हाथों से कछुआ पकड़ता दिखाया गया है। वह घुटने टेके है और एक कच्छप की गर्दन और टांग को लगभग पकड़ चुका है।

४३–पक्षी बींधना

चारों प्रकार के अन्नजीवी, मांसाहारी, जलप्रेमी और न उड़ने वाले पक्षियों की एक सौ से भी अधिक आकृतियाँ शैलचित्रों में मिल चुकी हैं किन्तु पक्षी मारने का एक ही दृश्य अभी तक देखने में आया है वह है लाखाजुआर के शिलाश्रय IV सी-१० में। यहाँ एक धनुर्धर पेड़ पर बैठे मयूर को बींधता आंका गया है। मोर पंख फैलाये भोले भाव से बैठा है, बहेलिये से अनजान और बधिक मुखौटा डाले, कटिवस्त्र पहिने तथा एक पाँव उठाये पूरे जोर से सरसंधान कर रहा है।

४४–छोटे प्राणियों की हत्या

लाखाजुआर के चित्र में बिल खोद कर चूहे इकट्ठे करते लोगों को अंकित किया गया है। दो नारियाँ एक चूहे के बिल को लकड़ी ठूंस कर तोड़ने में व्यस्त हैं तो कुछ दूरी पर तीसरी एक तूम्बीनुमा बिल को छड़ी से खोद रही है। तीन मूषक जान गँवा चुके हैं और सात बिल के भीतर से दूसरी सुरंग द्वारा भाग जाना चाहते हैं। जो सबसे आगे भागा था उस पर एक मानव की काली छाया पड़ चुकी है, दूसरा उसका अनुगामी बिल से निकलने में सफल हो गया है जबकि पांच अभी बिल के भीतर ही हैं। कलाकार ने खोदी गई मिट्टी को भी अंकित कर दिखाया है, इसी चित्र में बाँयी ओर चौथा बोंडा-सखा, मूषक प्रेमी मानव लघु आखेट उद्योग में लगा है, सकोरे के आकार की चार टोकरियाँ जो पतली शाखों से बनी हैं, मय पट्टियों के अंकित की गई हैं।

(ii) खाद्य संग्रहण सम्बन्धी कार्यकलाप

प्रकृति ने मानव को शाकाहारी प्राणी के रूप में ही जाना। विकास क्रम में वह उच्चस्तनी (प्राइमेट) श्रेणी के जीवों के अन्तर्गत आता है जो सभी शाकपात भोजी हैं। फिर नर के निकटतम संबंधी वानर (गोरिल्ला, चिपांजी, औरंगगुटान और गिब्बन) प्रायः पूर्णरूपेण निरामिष प्रेमी हैं। यद्यपि सद्यतम खोजों से बैबून, गोरिल्ला और चिपांजी भी कभी कभार छोटे मोटे प्राणियों की हत्या कर माँस स्वाद लेते सिद्ध हुये हैं किन्तु इनका प्रधान भोजन प्रकृति प्रदत्त फल-फूल, कंदमूल और अन्य वनस्पति ही हैं। अनुमान किया जाता हैं कि मानव रूप की ओंर पहिला कदम रखने से लेकर (यह कदम रामापिथेकस के रूप में आज से लगभग १ करोड़ ५० लाख वर्ष पूर्व रखा था) १० लाख वर्ष पूर्व तक मनुष्य प्रधान रूप से खाद्यसंग्राहक ही था। उसका आखेट से बहुत अल्प संबंध था। इन विगत १० लाख वर्षों की लम्बी आखेटक परम्परा में भी, किसी भी काल में मानव पूर्णतः माँसाहार पर जीवित नहीं रहा और न आज ही कोई मनुष्य विशुद्ध माँस पर ही जीवित रह सकने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दावा कर सकता है। माँसाहार मनुष्य की प्रकृति, उसकी शरीर रचना और उसके विवेक के विपरीत पड़ता है। जबकि वनस्पति आहार (अन्न, फल, फूल आदि) पर मानव नीरोग रहता हुआ पूर्ण जीवन जी सकता है। प्रागैतिहासिक काल में जब समाज का पुरुष वर्ग आखेट की खोज में रहता था। स्त्रियाँ और बच्चे खाद्य संग्रहण करते थे। २२ शैलचित्रों में वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ने, उनको टोकरियों में भरने, ले जाने, अनाज को कूटने पीसने और मधु इकट्ठा करने के कई सारे दृश्य देखने में आये हैं। यहाँ उन सभी क्रियाओं का निम्न उपशीर्षकों में अध्ययन किया गया है—

४५-वृक्षारोहण, ४६-फलसंग्रह, ४७-अनाज कूटना, पीसना और, ४८-मधु संचय।

४५–वृक्षारोहण

फलदार वृक्ष पर टोकरी लेकर बढ़ता मनुष्य भौंरावाली पहाड़ी के शिलाश्रय II ई-२१ में अंकित मिला है। भीमबेटका शिलाश्रय III सी-१९ की छत के ऊपर बनी खोह तथा दक्षिणी पट पर बनी कंदरा में फलों से लदे वृक्षों पर चढ़ते मानव ही अंकित नहीं हैं अपितु फलमय टूटी डाल पकड़े और फल खाते मनुष्य भी आंके गये हैं। पश्चिमी लाखाजुआर में एक मनुष्य वृक्ष पर चढ़ता दिखाया गया है।

४६–फल-संग्रह

भौंरावली के ऊपर वर्णित शिलाश्रय में वृक्षारोहण के साथ ही वृक्ष के चारों ओर फल बटोरने को आतुर मनुष्य और टोकरी भर कर फल ले जाती नारी का अंकन किया गया है। समीप ही शिलाश्रय II ऐ-२ में भी दो नारियाँ फल भरी टोकरियाँ और लम्बी लाठियाँ लेकर चलती उपलब्ध हुई हैं। लाखाजुआर और जात्रा में भी टोकरियों में फल ले जाती नारियों के चित्र मिलें हैं। कठोडिया के एक चित्र में विविध प्रकार के कार्यकलापों में संलग्न नर नारियों में से एक नारी को लाठी के सहारे फलों से भरी टोकरी खाली करते दिखाया गया है। उसी के समीप दाँयी ओर एक पुरुष जंगल से लौटी एक दूसरी स्त्री की टोकरी के फलों को निकालता अंकित है। इस चित्र के एकदम बाँये छोर पर जमीन पर बिखरे फल और आधी खाली टोकरी प्रदर्शित की गई है।

४७–अनाज कूटना, पीसना

कठोडिया और खरवई के शिलाश्रयों में सिलबट्टों में जंगली धान्य को पीसते नर-नारियों के सजीव चित्र देखने में आये हैं। कठोडिया के ऊपर वर्णित संयोजन में (फलों भरी टोकरियों को खाली करने वाले दृश्य में) दो स्त्री पुरुष अलग-अलग शिलाश्रयों में कूटने पीसने में लगे हैं। बाँयी ओर एक नारी जिसका ऊपरी शरीर निरवस्त्र है और संभवत: गर्भवती भी है झुककर दोनों हाथों से ऐसे सिल पर अनाज पीस रही है जिसका पट दो स्थानों पर अवनत हो गया है। दाँयी ओर ऊँचाई में अंकित पुरुष घुटने टेक कर पीसने में लगा है। लगता है उसको कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोर दानेदार वस्तु पीसनी पड़ी है जिसमें अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। उसकी सिल नाँद के आकार की है, उसने अपना मुखौटा भी नहीं उतारा है। लांगूलयुक्त कटिवस्त्र के अलावा संभवतः ऊपरी भाग में भी वह कुछ लपेटे हुए है। पीसने की यह क्रिया शिलाश्रय के द्वार पर हो रही है बाहर को मुँह किये, जहाँ दो युगल नाचने में मस्त हैं और एक माता का शिशु दूध के लिये तहलका मचाये है। कठोडिया के ही एक अन्य चित्र में झोपड़ी के अन्दर एक मनुष्य पीसने में लगा है। तीन लोग दाँयी ओर अंकित हैं एक सुअर के साथ और छत से लटक रहा है एक भाला। खरवई के शैलचित्र में गुफा के भीतर खड़े होकर पीसती नारी का अंकन है। उसके पीठ पीछे संभवतः चूल्हा तथा अन्य गृहस्थी का सामान संजोया पड़ा है।

४८–मधु संचय

मधु मक्खियों से भरे छत्ते और उनसे मधु निकालते नर नारी पंचमढ़ी क्षेत्र के जम्बूद्वीप, इमलीखोह, सोनभद्रा और रजतप्रपात तथा भीमबेटका के शिलाश्रय III सी-३५/बी में अंकित किये गये हैं। जम्बूद्वीप शिलाश्रय में दो नर नारी सीढ़ियों के सहारे मधु संचय कर रहे हैं। आदमी मधुमक्खियों को उड़ा रहा है और उसकी स्त्री एक पात्र लेकर छत्ते से मधु जमा कर रही है। चित्र अत्यन्त स्वाभाविक है। इमलीखोह के चित्र में एक स्त्री संभवतः जलती लकड़ी से मधुमक्खियाँ भगाती दिखाई गई है। सोनभद्रा के शिलाश्रय में जो चित्र बना है उसमें दो मनुष्य सीढ़ियों पर चढ़े और मधुमक्खियों से घिरे प्रदर्शित हैं। जम्बूद्वीप के दूसरे चित्र में एक मनुष्य बाँये हाथ में लम्बा सा भाला थामें और मुंह से फंदेदार रस्सी को फेंकता हुआ अंकित है। यद्यपि यहाँ न मधुमक्खियाँ हैं न उनका छत्ता ही किन्तु आकृति की स्थिति से आभास मधुसंचय का ही मिलता है।[२३] इनके अलावा पंचमढ़ी क्षेत्र में ही बनियावेरी शिलाश्रय में एक डाल पर मधुमक्खियों से भरा छत्ता, डाल के समानान्तर मक्खियों की पंक्ति, उसी डाल में बैठा एक पक्षी और चार उछलते कूदते बन्दरों के बीच एक अधोमुखी पुरुष आकृति का प्रदर्शन एक चित्र में हुआ है। इसको सीधे मधुसंचय से संबंधित तो नहीं कहा जा सकता किन्तु मनुष्य की छत्तेदार वृक्ष पर उपस्थिति मधुलोभ की ओर इशारा अवश्य करती है।

मधुसंचय का सर्वोत्तम चित्र पंचमढ़ी के ही रजतप्रपात शिलाश्रय से अभी कुछ ही दिन पूर्व प्रकाश में आया है। लेखक को इसकी सूचना उसके मित्र श्री इर्विन से मिली। श्वेत रंग में अंकित यह चित्र मधुसंचय का जीवन्त चलचित्र है जिसमें विभिन्न शिलाश्रयों की छतों से लटके चार बड़े छत्तों से मधु इकट्ठा करने की सरगर्मी को बखूबी आंका गया है। बहुत बड़े आकार के, मधुमक्खियों भरे दो छत्ते दाँयी ओर प्रदर्शित हैं। एक आदमी लम्बी लाठी या बाँस के सहारे कमर में गोल मटकानुसार पात्र बाँधे छत्तों की तरफ बढ़ रहा है, दूसरा खड़ा कुछ और काम में व्यस्त है, उसके पैरों के पास एक धनुषाकार वस्तु और एक भारी सिर वाले भाले सी वस्तु पड़ी है। संभवतः यह धुँआ लगाने की सामग्री है। छत्ते को बढ़ते मनुष्य के ठीक ऊपर दूसरा मनुष्य उसी भाँति मधुपात्र लेकर लम्बी लाठी के सहारे ऊपर जा रहा है जहाँ बाँयी ओर तीसरा छत्ता बना है और कुछ मक्खियाँ छत्ते में तथा उसके इर्द गिर्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंडरा रही हैं। इसी छत्ते को लक्ष्य बनाकर दो आदमी बाँयी ओर की मचान से भी चढ़ रहे हैं इनमें से एक मधुपात्र लटकाये है दूसरा बिना पात्र के। उनकी ऊपर चढ़ने की मुद्रा अत्यन्त ही रोचक है। चौथा मधु संचयी बाँयी ओर कुछ हट कर आंका गया है। यह पात्र समेत छत्ते के समीप पहुंच चुका है, और एक छड़ी के सहारे लगता है छत्ता तोड़ना चाहता है, इसी चित्र में तीनपरशुधारी तथा एक कुत्ते से मिलता जुलता पशु जो शायद चीता या तेंदुआ है, भी अंकित है। एक परशुधर इस पशु का उठी कुल्हाड़ी से सामना कर रहा है, दूसरा किनारे से वार करना चाहता है और तीसरा इस घटना से अछूता दाँयी ओर चला जा रहा है, यह तीसरा परशुधर आकार तथा डीलडौल में सभी मनुष्यों से बड़ा और आकर्षक है, वह कटिवस्त्र पहिने, जूड़ा बाँधे, और कंधे पर भारी परशु लादे है। परशुधारी तथा पशु की आकृतियाँ हो सकता है कुछ परवर्तीकाल की हों जैसा कि उनकी विषयवस्तु तथा शैली से भी लगता है।

भीमबेटका के शिलाश्रय III एफ ३५/बी में गहरे लाल रंग में विविध कार्य करते नर नारियों का अंकन है। इनमें से एक संयोजन को मधु संचय से संबंधित माना जा सकता है। अत्यन्त धुंधले चित्र में रस्सी के सहारे चढ़ता एक मनुष्य, पीठ में चौकोर टोकरी बांधे एक छत्ते को छड़ियों की सहायता से छेड़ता हुआ सा लगता है। बाँयी ओर दूसरा मनुष्य एक तीसरे के कंधों पर चढ़कर हाथ में लम्बी लाठी लिये हुये दिखाया गया है। लाठी के सिरे पर कुछ बंधा है। कंधे पर चढ़े मनुष्य का बाँया पैर मचान पर है नीचे चौथा मनुष्य भी सावधानी में खड़ा है। रंग शैली तथा स्थिति की दृष्टि से भीमबेटका का यह चित्र आरम्भिक मध्यपाषाण कालीन है अर्थात मधु संचय के दृश्यों में प्राचीनतम।

लेखक को मधु संचय से सम्बन्धित पांच शैलचित्र और उपलब्ध हुए हैं इनमें से तीन तो अकेले भौंरावाली पहाड़ी में अंकित हैं, शिलाश्रय II एफ-२१ में एक पेड़ पर आठ छत्ते लटके हुए दर्शाए गये हैं। पेड़ के नीचे एक मनुष्य हाथ में जलती लकड़ी तथा लाठी लिए खड़ा है और दो मनुष्य अलग अलग डालों पर चढ़कर मधु निकालने का प्रयास कर रहे हैं। दूसरे दृष्य में, जो शिलाश्रय II बी-२ में है, एक मनुष्य को पेड़ पर चढ़ते दिखाया गया है जिसमें छै छत्ते लटक रहे हैं, दूसरा मनुष्य दोनों हाथ फैलाए नीचे खड़ा है, उसके पास ही खूंटीदार शाख से बनाई गयी एक सीढ़ी पेड़ के सहारे खड़ी अंकित की गयी है। मधुसंचय का तीसरा दृष्य शिलाश्रय II सी ११ में है, जिसमें दो मनुष्य एक वृक्ष के नीचे दिखाए गये हैं। आमने-सामने की शाखाओं से तीन छत्ते लटक रहे हैं। भीमबेटका के शिलाश्रय III ए २८ में एक वृक्ष का अंकन किया गया है। इस वृक्ष में मधु मक्खियों के १३ छत्ते हैं। मधु संचय का पाँचवा दृष्य भोपाल की समीपवर्ती गणेशघाटी से मिला है। यहां एक बड़े वृक्ष की टहनियों पर २२ छत्ते बनाये गये हैं जिनमें मधुमक्खियाँ भरी पड़ी हैं। एक महिला रस्सी और बर्तन समेत वृक्ष की ऊँची शाख पर चढ़ी है। वृक्ष के नीचे तीन जंगली जानवर तथा एक धनुर्धर भी दिखाया गया है। इस प्रकार भारतीय शैलचित्रों में मधु जैसे सर्वोत्तम एवं सुस्वादमय प्राकृतिक भोजन का अंकन पर्याप्त मात्रा में किया गया है।[२४]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाषाण उपकरणों का प्रयोग

मध्य पाषण काल से पूर्व के पाषाण उपकरणों के आकार को देखकर ही विश्वास हो जाता है कि पत्थर के ये कई इंच लम्बे-चौड़े टुकड़े हाथ में पकड़ कर किंवा लकड़ी—हड्डी की मूंठ लगाकर काटने, छीलने आदि के काम में लाये जा सकते हैं जबकि मध्य पाषाणकाल से सम्बन्धित चकमक तथा स्फटिक पत्थरों के छोटे लुभावने छिलके, जो कभी भी ३—४ से० मी० से बड़े नहीं मिले हैं तथा कभी तो एक से० मी० से भी कम के उपलब्ध होते हैं तथा इन पर की गयी नक्काशी को देखने के लिये दीर्घदर्शक-काँच का प्रयोग करना पड़ता है, औजारों की भाँति प्रयोग में लाये गये होंगे विश्वास नहीं हो पाता है। तिकोने, अर्धचन्द्री, तंग आयती और विषम भुजी ये आधे या एक से० मी० चौड़े टुकड़े वनौकस मानव के आखेट आदि क्रियाओं में प्रयोजित होते थे, सहसा सोचा भी नहीं जा सकता है। इनकी निरर्थकता और भी बढ़ जाती है जब गैंडे, वनमहिष, गौर, नीलगाय, रीछ, साँभर तथा हिंस्र जानवरों से जूझने तथा उन्हें मारने की कल्पना हम इन अशक्त टुकड़ों द्वारा करते हैं।

मध्य पाषाण कालिक स्तरों से हजारों-लाखों की मात्रा में मिले निर्मित, अर्धनिर्मित उपकरण, अपखण्ड और रम्भाकार आंतरक जिन्हें सायास तराश कर औजार योग्य फलक निकाले जाते थे, इन लघु उपकरणों की उपयोगिता सिद्ध करती है। पुराविद इस बारे में एकमत हैं कि ये छोटे छोटे टुकड़े स्वतंत्र रूप से औजार न होकर उपकरण बनाने के पुर्जे थे जिन्हें लकड़ी हड्डी किंवा कड़ी मिट्टी की सीधी तथा बर्तुलाकार मूठों में खाँचे खोदकर गोंद की सहायता से बिठाया जाता था, और इस प्रकार चाकू, हसिया, आरा, शूल, बर्छी तथा तीर जैसे उपयोगी औजारों और अस्त्रों का निर्माण किया जाता था। इन टुकड़ों का वह हिस्सा जो धार वाला होता था, बाहर को तथा कुंठित हिस्सा मूंठ में धँसा होता था। निश्चय ही इस प्रकार के संयुक्त उपकरण पुराने औजारों से अधिक तेज और दीर्घ जीवी होते थे, एक पुर्जे के टूटने पर उसे बदला जा सकता था। लम्बे समय से विद्वान इस प्रकार निर्मित औजारों को मूंठ सहित प्राप्त करने की खोज में रहे हैं। सौभाग्य से इस दिशा में कुछ सफलता मिल गयी है, ये मूठ थोड़े समय बाद नष्ट हो जाने वाली सामग्री (हड्डी, लकड़ी तथा मिट्टी) के होने के कारण बहुत ही विरल परिस्थितियों में सुरक्षित रह सके हैं। स्वीडन, डेनमार्क, पोलैण्ड, स्विटजरलैण्ड तथा साइबेरिया के ठंडे तथा दलदली क्षेत्रों से तथा कुछेक ईराक तथा मिश्र से मिले भाले, तीरों के हिस्से, चाकू और हसिये लघु पाषाण उपकरणों के उपयोग को समझने में हमारी सहायता करते हैं। इस दुर्लभ बहुप्रतीक्षित सामग्री से कहीं अधिक सुलभ ढंग से शैलचित्रों ने पाषाण उपकरणों के प्रयोग को हमें समझाया है। भारतीय शैलचित्रों में पाषाण फलकयुक्त उपकरणों के अंकन से ऐक ओर तो उपकरण प्रयोग की विधि दृष्टिगत हुई और दूसरी ओर शैलचित्रों की प्राचीनता को मध्यपाषाण काल तक खींचनें का साक्ष्य हस्तगत हो गया। लाखाजुआर गुफा IV ए-९ के एक चित्र में मुखौटाधारी आखेटक लगभग तीन मीटर लम्बा शूल लिये एक बेखटक चरते हिरन पर अति समीप से प्रहार करता अंकित है। आखेटक का कंटकमय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूल असंदिग्ध रूप से दर्शाता है कि पाषाण शकल नोक तथा धारवाली पंख पंक्ति बनाने के काम आते थे। यहीं एक अन्य गुफा में सूअर को मारते हुए दो शिकारियों का चित्रण है जो ऐसे ही कंटकमय शूल (हार्पून) लिये हैं। भीमबेटका की गुफा III एफ-३५ बी में छः शिकारी काँटेदार भालों से एक गैंडे का आखेट करते दिखाये गये हैं। इनमें से एक को भाले समेत गैंड़े ने हवा में उछाल फेंका है। इसी घटना का सुदूर मिर्जापुर के घोरमंगर शिलाश्रय में भी पूर्णसत्यता के साथ अंकन किया गया है। वहां भी कंटकमय शूल लिए छः मुखौटाधारी शिकारी एक गैंडे को मार रहे हैं। इनका भी एक साथी गैंडे द्वारा उछाला गया है। प्रो० ब्रजवासी लाल तथा प्रो० धरमपाल अग्रवाल ने भी इन भालों को परवर्ती ताम्र शूल का जनक माना है। भीमबेटका की एक अन्य गुफा III ई-३ में दो शिकारी जंगली भैंसों को भालों से घेरते अंकित हैं। शिकारी और भी हैं जो आँशिक ही दीखते हैं, दो भालाधारियों में एक का भाला कंटक रहित है तो दूसरे के भाले की नोक दो अर्धवृत्तों से बनी एक वर्तुल धार है जिसमें सम्भवतः पाषाण उपकरण पिरोए गये हैं। भोपाल की धरमपुरी (प्रेमपुरा) पहाड़ी पर ८ पशुओं को ७ शिकारियों द्वारा घेरे गये दृश्य में मध्यवर्ती आखेटक, जो एक वन-महिष पर प्रहार कर रहा है, भी फलकमय शूल ही लिये है। काकवर्न द्वारा अनुकृत मिर्जापुर क्षेत्र के शैलचित्र में सांभर को मारते भालेधारी का अंकन है जिसके भाले में दस पंक्तियों में पाषाण उपकरण लगे हैं।

पाषाण उपकरणों का भाले किंवा शूल की नोक और फलकों के रूप में प्रयोग के अलावा शैलचित्रों में त्रिभुजाकार, बालेन्दु और छेनी के आकार के विषमबाहु उपकरणों को तीरों में लगे दिखाया गया है। लाखाजुआर की हिरन आखेट वाली ऊपर वर्णित गुफा में ही वांयीं ओर आखेटक ऐसे तीर पकड़े हैं जो छेनी सदृश्य नोक वाले तथा कई पंक्ति के फलक वाले हैं। भीमबेटका की गुफा III सी-१८ में महिष-आखेटक तिकोने तथा अर्धचंद्राकार नोक वाले तीर थामे अंकित हैं। महिष का पीछा करने वाले धनुर्धारी का तीर तो त्रिभुजाकार नोक के साथ सात फलकों वाला भी है— चार एक ओर, तीन दूसरी ओर। गैंडे के शिकार दृश्य के नीचे बांयी ओर गुफा III एफ-३५ बी में जो चित्र हैं उसमें भी धनुर्धर अर्धचंद्री तथा फलकमय तीरों से आखेट करते हुए दर्शाये गये हैं। भीमबेटका में ही III ए-१८ गुफा में सांभर की लालसा में भागने वाले सायकधर का शर भी तिकोने पाषाण टुकड़ों से फलकमय बनाया गया है। भोपाल के समीपवर्ती श्यामलाहिल पर्वतमाला की एक गुफा में हरिणश्रृंग का मुखौटा लगाये तथा लटकता कटित्रंध बाँधे धनुर्धर के बाँयें हाथ में अर्धचंद्री नोक वाले दो लम्बे तीर हैं जिनमें क्रमशः १० तथा १२ पार्श्ववर्ती प्रस्तर फलक लगे हैं। लाखाजुआर के शिकारी, जो हरिणों को चौकोर फंदों में फंसा चुके हैं, भी कंटकमय तथा दो मुँहें तीर लेकर शिकार पर आये हैं।

काँटेदार सायकों का सर्वोत्तम प्रदर्शन जावरा के हस्ति-आखेटकों के दृश्य में उपलब्ध हुआ है। श्वेत रंग में महीन सधी रेखाओं से आंके गये इस चित्र में छद्मवेषी आखेटक मुट्ठी भर तीर पकड़े हैं जिनमें प्रत्येक में कम से कम दस धार वाले फलक लगे हैं। इन्हें देखकर आसानी से समझा जा सकता है कि तीरों की नोकें तो घाव करने के लिए हैं जब कि पार्श्ववर्ती आड़े धारी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रागैतिहासिक मानव द्वारा शिलाश्रयों में विभिन्न कार्यकलापों का चित्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा जा सकता है कि तीरों की नोकें तो घाव करने के लिए हैं जब कि पार्श्ववर्ती आड़े धारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दार उपकरण क्रमशः भीतर घुसकर घाव को गहरा तथा चौड़ा बनाने के लिए है; और फिर उन्हें विष बुझा बना दिया गया हो तो हाथी जैसा विशालकाय जन्तु सद्य न भी तो घुल-घुल कर अवश्य मर जायेगा। आरमण्ड डेनिस की "आन सफरी" नामक आत्मकथ्यात्मक वन्यप्राणी कृति में काँगों के बित्ते भर पिग्मी द्वारा अकेले हाथी के शिकार का वर्णन है। उसे पढ़ते समय प्रागैतिहासिक हस्ति आखेटी वीरों का रूप साकार हो जाता है, मात्र एक भाले से अफ्रीका का यह साढ़े तीन फुटी वनपुत्र शरीर पर हस्ति-लीद को पोते अपनी मानवगंध को मार वनैले हाथियों के झुंड का पीछा करता है; और कई दिन बाद अवसर पा अकेले पड़े हाथी के ठीक पेट के नीचे रेंग कर उदर पर तीक्ष्ण बर्छी खोंप देता है। पीड़ा से पाँव पटकता, दिन की उमस का उनींदा हाथी यदि आखेटक को रौंद नहीं डालता तो पुनः कुछ दिन तक मांस पर्वत-के अचल होने की प्रतीक्षा कर कई दिन का भूखा प्यासा सफल आखेटक कटी पूँछ को लेकर बस्ती को ढूंढ़ता आता है। मौत का जुझाऊ यह विजयी वीर बाद में कंधों पर सवार होकर अपने युद्ध स्थल पर पहुंचता है और कबीले भर को पक्षभर भोजन देकर उनका साधुवाद लेता है। पाषाण आयुध प्रयोजी गुफावासी मानवों का आखेट का क्रम अफ्रीका के इन वामन मानवों से अधिक भिन्न नहीं रहा होगा।

उपकरण प्रयोग के प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व एक अनुत्तरित प्रश्न—गुफावासी मानवों की इतनी ढेर सारी क्रियाओं का साक्ष्य देने वाले शैलचित्रों में पाषाण उपकरण बनाने संबंधित किसी भी क्रिया का अंकन क्यों नहीं है? पाषाण काल के इस महत्वपूर्ण उद्योग को चित्रबद्ध क्यों नहीं किया गया? उपकरण निर्माण संभवतः इतना सामान्य दैनिक कार्य था जो गुफाचितेरों को प्रेरणास्पद नहीं लगा अथवा यह कार्य इतना महत्व का था कि इसका अंकन एक 'निषेध' बन गया, कहा नहीं जा सकता है। जो भी हो गुफाचित्र उपकरण निर्माण न सही उनके प्रयोग का विविध पक्षीय साक्ष्य तो ये प्रस्तुत करते ही हैं। शैलचित्र हजारों वर्ष पूर्व के पुरोधा मानवों के आंतर एवं वाह्य जगत का अधिकतम दिग्दर्शन हमें कराते हैं—नेत्रों की सर्वव्यापक, सर्वसुलभ भाषा में—मौन भाषा में।

संदर्भ ग्रंथ

१. डैनियल, ग्लाइन १९६२ **द आइडिया आफ प्रीहिस्ट्री**, लंदन, सी० ए० वत्स एंड कं०, पृष्ठ १-२

२. कुर्तन, ब्जौर्न १९७२ **नाट फ़ाम द एप्स**, न्यूयार्क, विन्टाज बुक्स, पृ० २४-४७, ६५-७०

३. लीके, आर० ई० तथा रोजर लेवी १९७८ **आरिजिन्स**, लंदन, मैक्डोनाल्ड जेन्स, पृ० १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. पीकार्ड, जी० सी० १९६७ **लेराउस्से इन्साइक्लोपीडिया आफ आर्केओलाजी**, लंदन, हेम्लिन, पृ० १५०

५. संकालिया, हँ० धी० १९७४ **प्रीहिस्ट्री एंड प्रोटोहिस्ट्री आफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान**, पुणे, पृ० १४

६. क्लार्क, ग्रा० १९७० **आस्पेक्ट्स आफ प्रीहिस्ट्री**, यूनीवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया, पृ० ६४-६५

७. मठपाल, य० १९८४ **प्रीहिस्टारिक राकपेंटिंग्स आफ भीमबेटका**, नई दिल्ली, अभिनव प्रकाशन पृ० २१८-२२०

८. मठपाल, य० १९८० 'एक लाख गुफाओं में छिपी प्रागैतिहासिक कला,' **नवभारत टाइम्स**, नई दिल्ली, २८ जनवरी, पृ० ४

९. क्लार्क, ग्रा० १९६१ 'द फर्स्ट हाफ मिलियन इयर्स' **द डान आफ सिविलाइज़ेशन**, लंदन, टेम्स एंड हडसन, पृ० ३८

१०. मठपाल, य० १९८५ **स्टोन एज राक आर्ट आफ द भौंरावली हिल, भीमबेटका रीजन, सैंट्रल इंडिया**, अप्रकाशित मोनोग्राफ, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, पृ० ६७

११. गॉर्डन, डी० एच० १९५८ **द प्रीहिस्टारिक बैकग्राउंड आफ इंडियन कल्चर**, बंबई, एन० एम० त्रिपाठी प्रा० लि०, पृ० १०९

१२. गुप्त, जगदीश १९६७ **प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला**, देहली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ० ५०३-५०४

१३. तथैव १९६७ पृ० ३४६

१४. जैवबसन, जै० १९७० **माइक्रोलिथिक कॉन्टेक्स इन द विन्ध्या हिल्स आफ सैन्ट्रल इंडिया**, पी-एच० डी० शोधग्रंथ, कोलंबिया विश्वविद्यालय, पृ० १९४-१९६

१५. न्यूमेयर, इ० १९८३ **प्रीहिस्टारिक इंडियन राक पेंटिंग्स**, आक्सफोर्ड यूनी० प्रेस, दिल्ली, पृ० ४२-४३

१६. तथैव १९८३ पृ० ७४

१७. मठपाल, य० १९८४ **प्रीहिस्टारिक राक पेंटिंग्स आफ भीमबेटका**, नई दिल्ली, अभिनव प्रकाशन, फिगर—४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८. न्यूमेयर, इ० १९८३ **प्रीहिस्टारिक इंडियन राक पेंटिंग्स,** आक्सफोर्ड यूनी० प्रेस, दिल्ली, पृ० ७९, फिगर-३६

१९. मठपाल, य० १९८० 'अरेगुड्डा: बादामी क्षेत्र का कला केन्द्र, **दिनमान,** मई ११-१७, पृ० ४०-४१

२०. जैक्बसन, जै० १९७० **माइक्रोलिथिक कान्टेक्स इन द विन्ध्या हिल्स आफ सैंट्रल इंडिया** पी–एच० डी० शोधग्रंथ, कोलंबिया विश्वविद्यालय, पृ० २३७-२४१

२१. मठपाल, य० १९७६ 'राकपेंटिंग्स आफ इण्डिया : एन आरिन्थोग्रेफिकल इन्टर-प्रिटेशन', **बुलैटिन आफ द डेक्कन कालेज, पुणे,** वो० ३५ नं० ३-४ : ८३-९३

२२. मठपाल, य० १९८० 'प्राचीन भोजन', **दिनमान,** जुलाई २०-२६, पृ० १०-११

२३. गुप्त, जगदीश १९६७ **प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला** देहली, नेशनल पब्लि-शिंग हाउस, पृ० ४९८-४९९

२४. मठपाल, य० १९८४ 'न्युली डिस्कवर्ड राकपेंटिंग्स इन सेन्ट्रल इण्डिया शोइंग हनी कलेक्शन' **बी वर्ड,** इंटरनेशनल बी रिसर्च एसोसिएशन, यू० के०, वो० ६५, नं० ३ : १२१-१२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिब्बत–देश व देशवासी

गिरिजा सकलानी

संस्कृत साहित्य में तिब्बत का वर्णन किन्नर खण्ड, किंपुरुषा खण्ड, स्वर्ग-भूमि, स्वर्ण-भूमि आदि नामों के रूप में मिलता है।[1] इस देश को 'लामाओं का देश', 'बर्फ का घर', 'बर्फ का रेगिस्तान', एवं 'शंग्री-ला' (Shangri-la) आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है जो कि तिब्बत की विशिष्टताओं के द्योतक हैं। तिब्बत के नाम के कुछ अन्य पर्याय भी हैं जैसे कि मुसलमानों ने इस देश को 'टोबेट' कहा, अरबी में 'टूबेट', स्वयं तिब्बती अपने देश को 'बोड़' नाम से सम्बोधित करते हैं और भारतवासी इसे 'भोट' देश कहते हैं। सातवीं सदी में चीन द्वारा इस देश को 'फ़ान' कहा गया है, जिसका कि चीनी भाषा में अर्थ अशिष्ट, गंवारू व बर्बर होता है। कालान्तर में चीनियों ने तिब्बत को 'टू-फ़ॉन' (To-Fan) कहना शुरू किया। नवीं शताब्दी में मुगल लेखकों ने इस देश की चर्चा 'टुवेट' या 'तिब्बत' कहकर की और बाद में इस देश की ख्याति अन्य देशों में 'तिब्बत' के ही नाम से हुई, मध्य यूरोप के देशों तक भी यही नाम पहुँचा तथा उस समय पियानो कार्पेनी और मार्को पोलो जैसे अन्वेषणकर्त्ताओं ने भी तिब्बत को इसी प्रचलित नाम से जाना व पहिचाना।[2] थाईलैण्ड के लोग व दुनिया के सभी राष्ट्र आज इस देश को तिब्बत के नाम से ही जानते हैं।

विश्व के सबसे ऊँचे पठार पर स्थित होने के कारण इसे 'दुनिया की छत्त' भी कहा गया है। वाह्य संसार से किसी भी प्रकार के सम्बन्ध न रखने के कारण व बाहरी लोगों को अपने देश में प्रवेश न देने के कारण इसे 'निषिद्ध-प्रदेश' भी कहा गया है। यद्यपि तिब्बत की निर्धारित सीमा अंकित नहीं की गई फिर भी अनुमानतः इसका क्षेत्रफल १,२२१,६०१ वर्ग किलोमी० रहा व चीनी आधिपत्य से पूर्व लगभग साठ लाख जनसंख्या रही। निःसन्देह यह जनसंख्या अनुमानित है। तिब्बती हर पाँचवें व्यक्ति पर एक भिक्षु को देखते हैं व भिक्षुओं के आधार पर ही देश की जनसंख्या को तीस से पचास लाख के बीच भी मानते हैं।[3]

सर्वप्रथम ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में इतिहासकार हैरोडोटस् ने इस देश की जानकारी दी, किन्तु तिब्बत के क्रमबद्ध इतिहास की जानकारी सातवीं सदी से मिलनी प्रारम्भ होती है जिस समय कि साम्राज्य प्रसार की इच्छा से प्रेरित होकर इस शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र ने अपने

डा० गिरिजा सकलानी, रीडर, समाजशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ोसी देश चीन पर आक्रमण किया था। चीन को भी उसी समय अपने इस पड़ोसी के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई थी। चीन ने भी तिब्बत का वर्णन अपने साहित्य में उसी समय प्रथम बार किया था और इन्हें 'बर्बर' कहा, सम्भवतः वह चीन की स्वयं की अनुभूति थी।

तिब्बत सैकड़ों वर्षों से अपनी अद्वितीय व रहस्यमयी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाओं के लिये विख्यात रहा है। विश्व की कुछ सबसे ऊँची चोटियों से घिरे होने के कारण, इसकी भौगोलिक परिस्थितियों ने ही इसे बाह्य संसार से काट कर नहीं रक्खा अपितु स्वयं तिब्बतवासियों के कारण भी तिब्बत दुनियाँ के अन्य क्षेत्रों से अलग-थलग पड़ा रहा। उन्होंने 'द्वार-बन्द' रखने की नीति (Closed door policy) को अपनाया जिसके कारण बाहरी लोगों में सदा से इस देश के विषय में जानने की उत्सुकता बनी रही। तिब्वत की भौगोलिक परिस्थितियों एवं शासकों की अनभिज्ञता के कारण वहाँ किसी प्रकार का सर्वेक्षण भी नहीं हुआ। इस प्रकार तिब्बती दीर्घ-काल तक अपने रहस्य को बनाए रखने में सफल रहे। यद्यपि जापानी विद्वान कवागुची (Kawaguchi) का कथन है कि तिब्बती विदेशियों के आतिथ्य-सत्कार में बड़े निपुण थे किन्तु चीन के परामर्श के कारण उन्होंने विदेशियों का अपने देश में आना रोका। चीनियों ने उन्हें चेतावनी दी कि यदि वे विदेशियों की आवभगत कर उन्हें स्वतन्त्र रूप से अपने देश में आने की अनुमति देते रहे, तो सम्भव है उनके देश से बौद्ध-धर्म लुप्त हो जाये और उसका स्थान ईसाई-धर्म ले ले। तिब्बतियों को यह सुझाव युक्ति-संगत लगा। एक ओर उन्हें अपने धर्म व दूसरी ओर सोने की खानों की चोरी का भय होने लगा।[४] अन्ततोगत्वा तिब्बती विदेशियों को सशंकित दृष्टि से देखने लगे व उन्होंने उनके स्वतन्त्र प्रवेश पर रोक लगा दी।

तिब्बत के विषय में जानकारी प्राप्त करने हेतु समय-समय पर देश-विदेशों के विद्वानों द्वारा प्रयत्न किये गये जिनमें से कुछ दुर्गम मार्गों में ही समाप्त हो गये। किन्तु जो भाग्यशाली, दुःसाहसी व महत्वाकांक्षी बच निकले तथा जो वहाँ के क्रुद्ध-शासकों की नजर बचाकर तिब्बत पहुंच गये, उनमें से प्रत्येक ने तिब्बत के भूगोल, समाज व संस्कृति के विषय में कुछ नई जानकारी दी। इस प्रकार अपने यात्रा-विवरणों में उन विद्वानों के व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित समाज की व्याख्या मिलती है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार तत्कालीन तिब्बतवासी आदिम-स्थिति में जीवन-यापन कर रहे थे तथा वहाँ के शासक बड़ी ही शंकालु प्रवृत्ति के थे। साथ ही उन्होंने बाहरी दुनिया को उस देश के नदी-नालों, झरनों, बर्फ से ढके पहाड़ों, झीलों, हिम-नदियों, पशुओं, मनुष्यों, लामा व मठों आदि के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान की है।[५] इस प्रकार विदेशियों द्वारा ही उस देश के सर्वेक्षण व अध्ययन का श्रीगणेश किया गया।

तिब्बतियों की प्रजातीय विशेषतायें

सभी मानवशास्त्री एक मत से तिब्बतियों को न तो ऐतिहासिक और न ही नृशास्त्रीय आधार पर चीनी मानते हैं। शारीरिक मानवशास्त्री टर्नर, मॉर्गन, रिजले व बक्सटन सभी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिब्बतियों को चीनियों से भिन्न बताया है। तिब्बती स्वयं भी प्रजातीय व सांस्कृतिक आधार पर अपने को चीनियों से भिन्न ही मानते हैं। चीनी भी २,००० वर्षों से अधिक समय से ही अपने को तिब्बतियों से भिन्न प्रजाति का मानते आ रहे हैं।[६]

यह स्पष्ट है कि तिब्बत की 'बन्द द्वार' नीति के कारण, तिब्बतियों का वैज्ञानिक आधार पर प्रजातीय अध्ययन सम्भव न हो सका। बाद में नृशास्त्रियों द्वारा जो प्रयत्न किये गये वह पुरातत्त्व सामग्री के अभाव के कारण अधूरे ही रहे। तिब्बत में मानव के अस्थि-पिंजरों के अवशेष उनके मृतक संस्कारों के कारण न मिल सके जिसमें कि वे शव को काट-पीटकर जानवरों को खिलाते रहे हैं। दूसरी ओर बाह्य-दुनियाँ से स्वयं को अलग-थलग करने से पूर्व किसी सीमा तक तिब्बतियों का समय-समय पर अन्य प्रजातियों से मिश्रण हुआ ही है किन्तु इन सब कठिनाइयों के बावजूद तिब्बतियों की शारीरिक विशेषताओं के आधार पर मानवशास्त्री एकमत होकर उन्हें मंगोल प्रजाति का स्वीकार करते हैं।

तिब्बती विशेषज्ञों का कथन है कि अधिकांश तिब्बती मंगोल प्रजाति के होते हुए भी कुछ क्षेत्रों में 'रैड-इण्डियन' (कौङ्गपो क्षेत्र में 'होर' घुमन्तु जनजाति) एवं श्वेत प्रजाति (उत्तर पूर्वी क्षेत्र) के तत्त्व भी देखने को मिलते हैं। खाम क्षेत्र के चाला जिले में बौने लोग भी पाये जाते हैं। अतः स्पष्ट होता है कि तिब्बत में मंगोल प्रजातीय तत्त्वों का बाहुल्य होते हुए भी कुछ अन्य प्रजातियाँ भी निवास करती रही हैं। तिब्बत के इतिहास के दौरान विभिन्न प्रजातियाँ इस देश के विभिन्न भागों में बस गयीं। इसी कारण उक्त प्रजातीय भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।[७] तिब्बत के मध्यवर्ती क्षेत्र (यू-चाङ्ग) में रहने वालों में से अधिकांश का कद छोटा होता है, सिर गोल व जबड़े की हड्डी चौड़ी होती है, जबकि उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों (खाम व अन्डो) में रहने वाले लोगों का कद ऊँचा व बाहें लम्बी होती हैं। कुछ क्षेत्रों में आज भी तिब्बती आदिम अवस्था में जीवन यापन कर रहे हैं, बहुत से घुमन्तू समुदाय हैं। अतः तिब्बतियों में विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक एवं प्रजातीय स्तर देखे जा सकते हैं। इन सभी कारणों से तिब्बतियों की उत्पत्ति मानवशास्त्रियों के लिये रहस्य बनी हुई है फिर भी नृशास्त्री, भाषा-विद् व अन्य विशेषज्ञ अपने-अपने सिद्धान्तों द्वारा इस समस्या को रहस्योद्घाटन का प्रयत्न करने में लगे हैं।

प्राचीन चीनी इतिहासकारों के अनुसार 'तू-फॉन' देश के मूल निवासी चियाङ्ग प्रजाति की ही शाखा के थे जिन्होंने कि अपने इतिहास-काल के प्रारम्भ में स्वयं को संगठित किया था। चीन के साहित्य में इन लोगों की चर्चा १४०० वर्ष ईसा पूर्व से मिलती है जहाँ पर चीन के शैङ्ग एवं चोन-वंश के लोगों के पड़ोसियों के रूप में इनका उल्लेख मिलता है। तिब्बत के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में चीन-तिब्बत सीमा पर आज भी चियाङ्ग प्रजाति के लोग रहते हैं और उनकी भाषा, विश्वास व रीति-रिवाज बहुत कुछ तिब्बतियों से मिलते-जुलते हैं।[८] चियाङ्ग प्रजाति के लोग सामान्यतः घुमन्तू थे किन्तु यह शुद्ध रूप से चीनी नहीं कहे जा सकते। वास्तव में ईसा के सैकड़ों वर्ष पूर्व से यह लोग मध्य-एशिया के पूर्व से लेकर चीन की दक्षिण-पश्चिमी सीमा तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी भेड़-बकरियाँ व अन्य जानवरों को चुगवाया करते थे। वैसे कुछ अंश तक इनका सम्बन्ध चीन के पश्चिम में रहने वाली जनजातियों से दिखलाई पड़ता है। इनका क्षेत्र ईसा पूर्व से ही कोकोनोर से सेजवान (Koko Nor to Szechwan) तक रहा। चियाङ्ग लोगों का सम्बन्ध मन्चूरिया की तुर्क-मंगोल प्रजाति से भी माना जाता है। यद्यपि तिब्बत में तुर्क-मंगोलों के आने से पूर्व ही चियाङ्ग लोगों का मिश्रण भारत व यूरोप (Indo-European) के लोगों से हो चुका था तथापि तिब्बत के पश्चिमी क्षेत्रों के लोगों में भारत व सिथीयनों (Indo-Scythians) के कुछ चिन्ह दिखलाई देते हैं।

वस्तु-स्थिति जो भी रही हो किन्तु मानवशास्त्रियों ने इन विभिन्नताओं के आधार पर तिब्बत में दो प्रमुख प्रजातीय तत्वों का होना स्वीकार किया है¨ प्रथम मगोल व दूसरे इनसे भिन्न आर्य—सिथीयन (Indo-Scythians)। जहाँ तक मंगोलों की शारीरिक विशेषताएँ हैं वे मध्यम कद, भूरी आँखों, भूरी चमड़ी, खिची हुई तिरछी आँखें, चौड़े जबड़े व गोलदार सिर की आकृति के होते हैं। सामान्यतः उनका मुँह चौड़ा, आंखें छोटी व चेहरा शुष्क सा लगता है। दूसरे समूह की शारीरिक विशेषताओं में उनका ऊँचा कद, नीली आँखें व भूरे बाल हैं। निःसन्देह तिब्बतियों के विभिन्न प्रजातीय तत्वों को समझने के लिये वहाँ के इतिहास की जानकारी प्राप्त करना अत्यधिक आवश्यक है।

तिब्बतियों की स्वभावगत विशेषतायें

जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है, पूर्व व पश्चिम के अनेक विद्वान समय-समय पर तिब्बती शासकों की नजर बचाकर तिब्बत गये और वहाँ की संस्कृति व जनजीवन का अध्ययन किया। उन्हें जो अनुभूति हुई, जैसा उनके साथ व्यवहार हुआ व जिस रूप में उन्होंने तिब्बतियों को जाना व पहचाना उन्होंने उसी के आधार पर तिब्बतियों के चरित्र का विश्लेषण किया। तिब्बत जाने वाले प्रमुख लोगों में से निम्नलिखित हैं—सत्रहवीं शताब्दी में ईसाई धर्म प्रचारक पादरी फ्रान्सिसको ड' अजवेड़ो (J. Father Francisco d' Azvedo), अठारहवीं शताब्दी में पादरी डेज़ीडेरी (Father Desidery), अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेज राजदूत जॉर्ज बोगले (George Bogle) और इसी शताब्दी में भारतीय प्रशासनिक सेवा में रत सर चार्ल्स बैल (Sir Charlas Bell) तथा बीसवीं सदी में अन्वेषक व सैलानी तथा पर्वतारोही हैनरिक हैरर (Heinrich Harrar)। यद्यपि यह सूची बहुत बड़ी हो सकती है क्योंकि पद्म सम्भव से लेकर, इटली के भारत विद्याविद टूची (Prof G. Tucci), जापानी बौद्ध विद्वान कवागुची (Kawaguchi), स्वीडन के सेवन हेडिन (Seven Hedin), स्वामी प्रणवानन्द, राहुल सांकृत्यायन जैसे सैकड़ों विद्वान समय-समय पर तिब्बत गए व वहाँ के जनजीवन, संस्कृति व भूगोल का अध्ययन किया। इनमें से कुछ लोगों ने तिब्बतियों की स्वभावगत विशेषताओं की भी विवेचना की है।

सातवीं शताब्दी से कुछ पूर्व, जबसे कि तिब्बत का लिपिबद्ध इतिहास प्रारम्भ होता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी इतिहासकारों ने तिब्बतियों का वर्णन किया है। किन्तु उन्हें जंगली, खूंखार कहा जिनका पेशा आखेट करना था। बॉन-धर्म तिब्बत का आदि-धर्म रहा है जिसमें तंत्र-मंत्रादि जादू-टोना सम्मिलित है। बौद्ध-धर्म के प्रचार-प्रसार में इस धर्म के समर्थकों ने बहुत व्यवधान उत्पन्न किया अतः बौद्ध-धर्म को इस धर्म के तंत्र-मंत्रादि का अपने में समावेश करना पड़ा। तभी तिब्बत के लोगों ने बौद्ध-धर्म को स्वीकार किया। वह समय तिब्बत की अस्तव्यस्तता का समय था, न देश में कोई शासन-व्यवस्था थी, न कानून और न राजा। चीनी विद्वानों शेन व ल्यू (Shen and Liu) के अनुसार १२४५ ईसवी में पोप ने पियानो कार्पिनी (Piano Carpini) को उत्तर में खान महान के पास भेजा था वहाँ उन्हें तिब्बत में प्रचलित एक भयंकर परिपाटी की जानकारी मिली जिसके अनुसार पिता की मृत्यु के उपरान्त बच्चे व सम्बन्धी मृतक का मांस खा लेते थे। सन् १२५३-५५ में एक फ्रान्सीसी भी महान खान शासक से मिलने गए थे उन्हें भी तिब्बत में प्रचलित कुछ विचित्र रीति-रिवाजों के बारे में जानकारी मिली। विशिष्ट रूप से यह कि बच्चे अपने माता-पिता या अभिभावकों की स्मृति को बनाये रखने के लिये मृतक की खोपड़ी रख लेते थे। अतः लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह नरभक्षी लोग कैसे अध्यात्म-गुरू का पद ले सकते हैं।

लगभग इसी काल के समकक्ष १२७५-१२९५ ईसवी में मार्कोपोलो भी कुछ समय के लिये कुबली खान के दरबार में गए थे जहाँ पर उनका सम्पर्क तिब्बतियों से हुआ। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर उन्होंने तिब्बतियों का चरित्र-चित्रण किया। मार्कोपोलो ने उन्हें बड़ा ही सुस्त, आलसी, चोर व निम्न जाति का चित्रित किया साथ ही उन्हें विश्व के महान जादूगर व ज्योतिषियों की श्रेणी में भी रखा। उनका कहना था कि तिब्बती अपनी भूत-प्रेत पूजा द्वारा अनेक कलाओं को प्रदर्शित करने में दक्षता रखते हैं।[९]

ईसाई धर्म-प्रचारक डेजिडेरी ने तिब्बत के लोगों में अच्छाइयाँ देखीं; उन्होंने १७७४ में लिखा कि तिब्बती नम्र होते हैं तथा वे दूसरों के प्रति सम्मान-भाव प्रदर्शित करते हैं तथा प्रसन्नचित् रहते हैं।

अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारी रिचर्डसन (Richardson) के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी के बाद जितने भी अग्रणी पाश्चात्य पर्यटक तिब्बत गए उन सभी ने एकमत से तिब्बतियों को आराम तलब, प्रसन्नचित्, दयालु और संतोषी बताया किन्तु तत्कालीन राजनैतिक व आर्थिक व्यवस्था को देखते हुए उन्हें गरीब, शोषित, उत्पीड़ित व दलित भी कहा है।[१०]

उन्नीसवीं सदी के द्वितीय दशक में सिक्किम में कार्यरत अंग्रेज राजनयिक क्लॉड व्हाईट (Claude White) ने भी तिब्बतियों को संभ्रान्त, नम्र, दयालु, प्रसन्नचित् व धार्मिक बतलाया। यद्यपि कुछ लोग उन्हें 'असभ्य व अशिष्ट' भी बताते हैं। इस विचारधारा के लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि तिब्बतियों में धर्म के कोई भी चिन्ह नहीं दिखलायी पड़ते।

रायबहादुर शरत् चन्द राय के अनुसार तिब्बतियों में साम्प्रदायिक भेद-भाव, राज्य-कर्मचारियों में आपसी ईर्ष्या आदि दिखाई देती है।[११] स्वामी प्रणवानन्द के अनुसार (जो कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वेषक होने के साथ-साथ तीर्थ यात्री भी थे उन्होंने अनेक बार कैलाश मानसरोवर की यात्राएँ की थीं) तिब्बती स्त्री-पुरुष स्वस्थ व बलवान होते हैं। यह लोग मेहनती भी होते है। स्वामी जी के अनुसार तिब्बतियों में ठण्ड एवं विपरीत परिस्थितियों को सहने की क्षमता होती है। उन्होंने इन लोगों को प्रसन्नचित्, संतोषी, विलासी, अन्धविश्वासी, रहस्यकारी व आदिम-संस्कृति का भी कहा। प्रणवानन्द जी को तिब्बती धार्मिक व शान्ति-प्रिय प्रकृति के भी लगे तथा उन्होंने इन लोगों में प्रबल आतिथ्य-सत्कार का भाव देखा, किन्तु व्यक्तिगत आदतों से स्वामी जी को यह लोग बड़े गन्दे लगे। अपनी व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर उन्हें लामा व उच्च-स्तरीय कर्मचारी बड़े ही सुसंस्कृत व नम्र लगे।[१२]

तिब्बत के लोगों की क्षेत्रगत विशेषताओं की भी चर्चा मिलती है। वहाँ के लोगों को सामान्यतः तीन प्रमुख समूहों में बाँटा गया है :—

प्रथम बोड़पो (Bodpo) जो कि मध्य व पश्चिमी क्षेत्रों के निवासी हैं। दूसरा खम्पा (Khampa) जो कि सामान्यतः पूर्वी क्षेत्रों के निवासी हैं व तीसरा समूह अम्डो (Amdo) का है जो कि उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के निवासी हैं। यद्यपि इन तीनों में प्रजातीय अन्तर नहीं मिलते किन्तु क्षेत्रीय भिन्नताओं के कारण इनके स्वभाव, व्यवसाय व संस्कृति में स्पष्ट अन्तर देखने को मिलता है। जैसे कि प्रथम क्षेत्र में रहने वाले लोग (जिसमें ल्हासा, देश की राजधानी भी सम्मिलित है) बड़ी ही धार्मिक प्रकृति के होते हैं। दूसरे खाम क्षेत्र के लोग योद्धा के रूप में जाने जाते हैं व अन्तिम अम्डो-क्षेत्र के वणिक-बुद्धि के। यद्यपि जापानी विद्वान कवागुची (Kawaguchi) तिब्बत को 'दुकानदारों का राष्ट्र' कहते हैं, जहाँ पर कि स्त्री-पुरुष, पुरोहित व सामान्य लोगों सभी को उन्होंने व्यापार करते हुए देखा। अतः वह इसे भाग्य की विडम्बना ही मानते थे कि वे लोग जो कि जन्म-जात व्यापारी हैं उन्हें इतनी लम्बी अवधि तक एकान्त की स्थिति में रहना पड़ा।[१३] सम्भवतः कवागुची को लगा होगा कि तिब्बती वाह्य देशों के साथ लम्बी अवधि तक वाणिज्य व व्यापार न कर सके। पैटरसन, जिन्होंने तिब्बत में रहकर वहाँ के जनजीवन का निकट से अध्ययन किया, वहाँ के लोगों की क्षेत्रीय आधार पर विवेचना करते हुए खाम व अम्डो (उक्त दोनों क्षेत्र भी हैं व वहाँ के रहने वालों को इन्हीं नामों से सम्बोधित किया जाता है।) लोगों को आदिवासी बताते हैं तथा इन्हें, उन्होंने मित्रवत्, स्पष्टवादी, प्रसन्नचित् व आतिथ्य-सत्कार करने वाला पाया। साथ ही पैटरसन इन लोगों को लड़ाकू व झगड़ालू प्रकृति का बताते हैं, जो कि अपने स्वभाव के कारण छोटी से छोटी बात को लेकर लड़-मरने को तैयार रहते हैं।

ल्हासा के कुलीन वर्गों को भी वह कम शक्तिशाली नहीं बताते। उनके अनुसार वह उच्च पदों पर अपनी शक्ति व साहस के कारण ही पहुंचे थे।[१४]

मध्यवर्ती तिब्बत-वासियों को उन्होंने बड़ा ही शिष्ट व सुसंस्कृत पाया व देखा कि ये लोग खम्पाओं को बड़ी हीन-भावना से देखा करते थे क्योंकि उनकी संस्कृति मध्य-तिब्बतवासियों की अपेक्षा निम्न स्तर की थी। जहाँ तक अम्डो क्षेत्र का प्रश्न है वह चीन की सीमा से जुड़ा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पैटरसन को अम्डो चीन के प्रभाव के कारण सुसभ्य लगे व चीनी-संस्कृति के अनेक प्रभाव अम्डो लोगों पर उन्हें दिखे। उन्होंने इन लोगों को प्रायः परिश्रमी, चतुर व अपने काम को निकालने की कला में निपुण पाया। वैसे भी तिब्बती कहावत है कि 'अम्डो कभी भूखा नहीं मर सकता'। निःसन्देह विभिन्न लोगों ने तिब्बतियों के स्वभाव की विवेचना में विरोधी वक्तव्य दिये हैं। कुछ लोगों ने उन्हें दम्भी, असभ्य, रूढ़िवादी, अधर्मी व जंगली बताया। तो अन्य लोगों ने उन्हें दयालु, सौम्य, उदार प्रवृत्ति वाला, प्रसन्नचित्, शान्ति-प्रिय, धार्मिक, हँसमुख व मौजमस्ती का जीवन जीने वाला कहा। यह स्पष्ट है कि राजधानी ल्हासा में रहने वाले कुलीन, संभ्रान्त व उच्च-वर्ग के लोगों में सुसंस्कृत होने के साथ ही साथ अहंकार का भाव भी दिखलायी पड़ता था व सामान्य तिब्बती को रूढ़िवादी, अंधविश्वासी, शंकालु, उद्दण्डी, दुःसाहसी, वीर व साम्प्रदायिक भी बताया गया है।

तिब्बत के कुछ क्षेत्रों में लूट-पाट करने वाले दस्यु भी रहते थे, जो कि प्रायः घुमन्तू जनजातीय समूह होते थे व तम्बुओं या गुफाओं में रहते थे व उनकी आजीविका का साधन लूट-पाट पर निर्भर करता था। ये लोग अमीरों के काफिलों पर आक्रमण कर उन्हें लूटते थे। तिब्बतियों को व्यवसाय के आधार पर निम्नलिखित रूप से विभक्त किया गया था—

(i) भिक्षु (monks), (ii) संभ्रान्त वर्ग (Nobles), (iii) व्यापारी (Traders), (iv) चरवाहे (Herders) और (v) कृषक (Peasants)। यद्यपि रिचर्डसन के अनुसार अधिकांश तिब्बती आधार रूप से कृषक व चरवाहे ही थे किन्तु प्रत्येक तिब्बती चाहे सम्भ्रान्त वर्ग का हो, भिक्षु हो, ग्रामीण हो, घुमन्तू चरवाहा हो या घुड़सवार, हृदय से व्यापारी है। शहरी क्षेत्रों में संलग्न व्यापारियों द्वारा एक सम्पन्न मध्यवर्ग भी तिब्बत में था। कुछ लोग सरकारी कर्मचारी थे व सेना में भी भर्ती होते थे तथा कुछ लोग डाकुओं के पेशे में भी कार्यरत थे।[१५] सन् १९५१ के बाद जब चीन ने तिब्बत पर आधिपत्य जमाना प्रारम्भ किया स्थिति काफी बदलने लगी व सन् १९५९ के बाद से नयी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत नये व्यवसायिक समूह बनने लगे।

तिब्बत पर सांस्कृतिक प्रभाव

तिब्बत की संस्कृति के निर्माण में उसके दो पड़ोसी देशों भारत व चीन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भले ही प्रजातीय आधार पर तिब्बत इन देशों से भिन्न है किन्तु सांस्कृतिक आधार पर अनेक समानताएं देखने को मिलती हैं।[१६]

तिब्बती सामान्यतः अपने सन्दर्भ में चीन को कानून व भारत को धर्म का देश कहते हैं। चीन के खान-पान वेश-भूषा कानून-व्यवस्था व चिकित्सा-पद्धति आदि का प्रभाव तिब्बत पर देखा जा सकता है। इसी प्रकार बौद्ध-दर्शन व धर्म, शिक्षा-पद्धति, भाषा आदि भारत से प्रभावित हैं। इस प्रकार एशिया की दो प्रतिद्वन्द्वी संस्कृतियों भारत और चीन का मिश्रण तिब्बत में हुआ, कुछ सीमा तक मंगोल संस्कृति ने भी तिब्बती संस्कृति को प्रभावित किया है। तिब्बत,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन व भारत का अनेक रूपों में ऋणी है। यद्यपि तिब्बत की वर्त्तमान दशा व तिब्बती शरणार्थियों की दशा के लिये चीन भी जिम्मेदार है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है वह एक बार पुनः तिब्बत की खोई हुई धार्मिक एवं सांस्कृतिक कड़ी को जोड़ने का प्रयत्न कर रहा है और आज पच्चासी हजार तिब्बती शरणार्थी उनके धर्म-गुरू दलाई लामा सहित इस देश के अभिन्न-अंग बन चुके हैं। ऐसा लगता है कि भारत से लुप्त-प्राय बौद्ध-धर्म पुनः तिब्बत से भारत लौट आया है। भारत में स्वच्छन्द धार्मिक वातावरण पाने पर भी तिब्बती प्रवास में रहने की पीड़ा महसूस करते हैं व अपने देश व देशवासियों को कई रूपों में याद करते है। उनका वह देश जिसमें उनके कथनानुसार घी, दूध व शहद की नदियाँ बहती थीं, जहां सुख था, शान्ति थी व वैभव था, उनकी आँखों में अनिश्चित भविष्य की पीड़ा सहज ही दिखलाई देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Pranavanand, Swami, F. R. G. S., *Exploration in Tibet*, University of Calcutta, 1950, P. 57.
2. Stein, R. A., *Tibetan Civilization*, Faber and Faber Ltd., London, 1972, P. 19.
3. Richardson, H. E., *Tibet and its History*, Oxford University Press, London, 1962. P. 5.
4. Younghusband, Sir Francis, K. C. I. E., *India and Tibet*, Oriental Publishers, 1971, P. 318,
5. Shen Tsung–Lieu and Liu-Shen-Chi, *Tibet and Tibetans*, Stanford University Press, Stanford, California, 1953, P. 3.
6. Leifer Walter, *Himalaya Mountain Destiny*, Translated by Ursula Prideaus London, Galley Press Ltd., P. 25.
7. Stein, R. A., *Tibetan Civilization*, Faber and Faber, Ltd., London, 1972, PP. 26-27.
8. *Ibid.*, P. 20.
9. Shen–Tsung–Lieu and Liu Shen-Chi, *Tibet and Tibetans*, Stanford, California, 1953, PP. 4-5.
10. Richardson, H. E., *Tibet and its History*, Oxford University Press, London, 1962, P. 27.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. Das Sarat Rai, *Contribution on The Religion and History of Tibet*, Manjusri Publication House, New Delhi, 1970. P. 16.

12. Pranavanand Swami, *Exploration in Tibet*, University of Calcutta, 1950, PP. 77 and 35.

13. Younghusband, Sir Francis K. C. I. E., *India and Tibet*, Oriantal Publishers, 1971, P. 319.

14. Patterson George, *Tibet in Revolt*, Faber and Faber, London, 1960, P. 49.

15. Richardson, H. E., *Tibet and its History*, London, 1962, P. 5·

16. *Ibid.*, P. 7.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस्तोगी महिलाएँ—एक मानवमितीय अध्ययन

सुधा रस्तोगी, प्रभात कुमार तिवारी एवम् दीपक त्यागी

भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न नृजातीय समुदाय निवास करते हैं जिनमें समरूपता तथा विभिन्नता पाई जाती है। यह समरूपता/विभिन्नता उनके शारीरिक लक्षणों में भी पाई जाती है। भारतवर्ष में बहुत से नृजातीय समुदायों का मानवमितीय अध्ययन किया गया है—परंतु अधिकांश अध्ययन पुरुषों पर ही हुए हैं जबकि महिलाओं पर ऐसे अध्ययन बहुत कम हैं (गुप्ता एवम् दत्ता १९६६)। इससे यह स्पष्ट है कि विभिन्न नृजातीय समुदायों की महिलाओं के सम्बन्ध में मानवमितीय जानकारी का पर्याप्त अभाव है। इसी संदर्भ में रस्तोगी महिलाओं पर यह मानवमितीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन उनके कुछ शारीरिक लक्षणों पर आधारित है।

अध्ययन सामग्री एवं विधि

प्रस्तुत अध्ययन हिंदू समाज के रस्तोगी समुदाय की महिलाओं पर किया गया है। रस्तोगी नृजातीय समुदाय के सदस्य उत्तरी भारत के गंगा-यमुना नदियों के मैदानी क्षेत्र में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। यह एक अंतःविवाही समुदाय है और इसके सदस्य अपने समुदाय के बाहर विवाह नहीं करते। इनका पारम्परिक व्यवसाय साहूकारी रहा है परंतु आजकल बदलती हुई परिस्थितियों के साथ-साथ वे व्यापार, उद्योग एवं विभिन्न सेवाओं में भी कार्यरत हैं। हिंदू जाति व्यवस्था में उनके स्तर के बारे में अलग-अलग मत हैं (रस्तोगी १९७२)। वे स्वयं अपने को क्षत्रिय वृहत वर्ग का सदस्य मानते हैं।

इस अध्ययन के लिए लखनऊ नगर के रस्तोगी समुदाय की १५० महिलाओं, जिनकी आयु १९ से ५० वर्ष के मध्य थी, पर कुल सात मापों को आधार मान कर कार्य किया गया है। इन मापों में कद, शिर की लंबाई, शिर की चौड़ाई, सम्पूर्ण मुखमण्डल की ऊँचाई, द्विगंडास्थि चौड़ाई, नाक की लम्बाई तथा नाक की चौड़ाई को लिया गया है। विवेचना के लिए

डा० (श्रीमती) सुधा रस्तोगी, विभागाध्यक्ष, मानवविज्ञान विभाग, नारी शिक्षा निकेतन महाविद्यालय, लखनऊ।
प्रभात कुमार तिवारी, विभागाध्यक्ष, मानवविज्ञान विभाग, जय नारायण महाविद्यालय, लखनऊ।
दीपक त्यागी, अधीक्षण मानववैज्ञानिक, भारतीय मानववैज्ञानिक सर्वेक्षण, वी० वी० मोहल्ला, मैसूर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन देशनाओं–शिर देशना, मुखमण्डल देशना तथा नासिका देशना का गणन भी किया गया है। विभिन्न मापों को लेने तथा देशनाओं के परिणामों को वर्गीकृत करने के लिए मार्टिन एवं सेलर की विधि (सिंह एवं भसीन १९६८ में उद्धृत) को अपनाया गया है। सभी मापें सेंटी-मीटर में ली गईं हैं।

विश्लेषण तथा परिणाम

विभिन्न मापों तथा उनके आधार पर निकाली गई देशनाओं के सांख्यिकीय अवरमाध्य, मानक विचलन, मानक त्रुटि तथा विचरण गुणांक तालिका १ में दिए गए हैं।

रस्तोगियों का औसत कद १४८.९७ ± ०.५२ से० मी० है। इसका परिसर १३९.१ से० मी० और १६६.६ से० मी० के मध्य पाया गया है। कद के आधार पर इनको विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है (तालिका २)। सबसे अधिक आवृत्ति (५२.०० प्रतिशत) छोटे वर्ग में और उससे कम (३०.०० प्रतिशत) निम्न मध्यम वर्ग में पाई गई है। यदि निम्न मध्यम, मध्यम तथा उच्च मध्यम वर्गों को एक मध्यम वर्ग माना जाय तो हम देखते हैं कि ४४.६६ प्रतिशत रस्तोगी महिलायें इस वर्ग में आती हैं। इस प्रकार अधिकाँशतः रस्तोगी छोटे या मध्यम कद वाले हैं। बहुत छोटे तथा लम्बे वर्ग में इनकी आवृत्ति क्रमशः ०.६७ तथा २.६७ प्रतिशत है।

इनमें शिर की औसत लम्बाई तथा चौड़ाई क्रमशः १७.९१ से० मी० तथा १२.५७ से० मी० है। औसत शिर देशना ६९.४२ है जो अति दीर्घ शिरस्क वर्ग में आती है। देशना का परिसर ६०.०० और ८०.५७ के मध्य है। सिर देशना का वर्गीकरण तालिका ३ में दिया गया है। अति दीर्घ शिरस्क रस्तोगियों की प्रतिशत आवृत्ति (६८.६७) सबसे अधिक है जो सम्पूर्ण अध्ययन सामग्री के दो तिहाई भाग से भी अधिक है। २३.३३ प्रतिशत रस्तोगी दीर्घ-शिरस्क हैं। इससे यह स्पष्ट है कि अधिकांशतः यह लम्बे शिर वाले हैं।

इनमें सम्पूर्ण मुखमण्डल की औसत ऊँचाई १०.२४ ± ०.०९ से० मी० है तथा द्विगंडास्थि चौड़ाई (बाईज़ाइगोमैटिक चौड़ाई) ११.७५ से० मी० है। इन मापों के आधार पर मुखमण्डल देशना का औसत ८६.२२ ± ०.९४ है। जो लम्बे चेहरे का प्रतीक है। मुखमण्डल देशना वर्गीकरण (तालिका ३) यह दर्शाता है कि अधिकतर रस्तोगी लम्बे (३५.३३ प्रतिशत तथा अति लम्बे (३१.३३ प्रतिशत) चेहरे वाले होते हैं। मध्यम चेहरे वाले २१.३३ प्रतिशत हैं जबकि चौड़े तथा अति चौड़े चेहरे वाले क्रमशः ९.३३ प्रतिशत तथा २.६७ प्रतिशत हैं।

इनकी नाक की औसत लम्बाई तथा चौड़ाई क्रमशः ४.५१ ± ०.०८ तथा ३.३० ± ०.०३ से० मी० है। नासिका देशना का माध्य ७३.१६ ± ०.७९ है और इसका परिसर ५५.१० तथा ९६.९६ के मध्य है। इस प्रकार नाक न तो अधिक चौड़ी और न ही अधिक लम्बी मिलती है वरन् सर्वाधिक आवृत्ति मध्यम आकार में ६०.६७ प्रतिशत है (तालिका ३)। इससे कम आवृत्ति लम्बी नाक की पायी जाती है जो ३० प्रतिशत है जबकि अन्य वर्गों की आवृत्ति बहुत कम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांशतः रस्तोगी छोटे कद या निम्न मध्यम कद के होते हैं। सर के आकार के संदर्भ में यह दीर्घ शिरस्क और अति दीर्घ शिरस्क श्रेणी में अधिक आते हैं। मुखमण्डल देशना के आधार पर सर्वाधिक आवृत्ति लम्बे चेहरे की और फिर क्रमशः अति लम्बे तथा मध्यम चेहरे वाले आते हैं। नासिका देशना के आधार पर नाक की आकृति में सर्वाधिक आवृत्ति मध्यम (मीसोराइन) और फिर लम्बी नाक (लेप्टोराइन) की मिलती है।

उत्तर प्रदेश के निकटवर्ती तथा हिन्दू समाज के सदस्यों के नृजातीय समुदायों की महिलाओं पर बहुत कम मानवमितीय अध्ययन किए गए हैं और जो हुए भी हैं वे सब प्रकाशित नहीं हैं। राय द्वारा पासी जाति पर किए गए अध्ययन (गुप्त एवं दत्त १९६६) तथा प्रस्तुत रस्तोगियों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि रस्तोगियों का कद पासियों से लम्बा (रस्तोगी १४८.९७ से० मी० तथा पासी १४७.८१ से० मी०) होता है। दोनों की शिर देशना में भी भिन्नता मिलती है। पासियों में शिर देशना का औसत (७५.०९) रस्तोगियों की (६९.४२) अपेक्षा अधिक है। मुखमण्डल देशना तथा नासिका देशना में यह भिन्नता बहुत कम मिलती है। मुखमण्डल देशना का औसत पासियों में ८६.९८ है जो रस्तोगियों के ८६.२२ से कुछ ही अधिक है जबकि नासिका देशना का औसत पासियों में ७३.१६ है जो रस्तोगियों के ७३.१६ से थोड़ा ही अधिक है। आँकड़ों की कमी के कारण अधिक निष्कर्षपूर्ण तथा विस्तृत तुलनात्मक विश्लेषण करना इस समय सम्भव नहीं है। उपलब्ध आँकड़े भविष्य के अध्ययनों के साथ मिला कर देखने पर यह बताना सम्भव हो सकेगा कि रस्तोगी नृजातीय समुदाय के शारीरिक लक्षणों के आधार पर अन्य नृजातीय समुदायों से किस प्रकार सम्बद्ध किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका १

माप/देशना के कुछ सांख्यिकीय अवर

माप/देशना	प्रतिदर्श	माध्य	मानक विचलन	मानक त्रुटि	विचरण गुणांक
१. कद	१५०	१४८.९७	६.२३	०.५२	०.०४
२. शिर की लम्बाई	१५०	१७.९१	०.८२	०.०६	०.०४
३. शिर की चौड़ाई	१५०	१२.५७	१.३५	०.११	०.१०
४. सम्पूर्ण मुखमण्डल की उँचाई	१५०	१०.२४	१.११	०.०९	०.१०
५. द्विगण्डास्थि चौड़ाई	१५०	११.७५	०.५६	०.०५	०.०४
६. नाक की लम्बाई	१५०	४.५१	०.५७	०.०८	०.१२
७. नाक की चौड़ाई	१५०	३.३०	०.३३	०.०३	०.१०
८. शिर देशना	१५०	६९.४२	८.९८	०.७३	०.१२
९. मुखमण्डल देशना	१५०	८६.२२	११.५१	०.९४	०.१३
१०. नासिका देशना	१५०	७३.१६	९.७३	०.७९	०.१३

तालिका २

कद का वर्गीकरण

वर्ग	वर्गसीमा	आवृत्ति %
१. बहुत छोटा	१२१.०—१३९.९	०.६७
२. छोटा	१४०.०—१४८.९	५२.००
३. निम्न मध्यम	१४९.०—१५२.९	३०.००
४. मध्यम	१५३.०—१५५.९	८.६६
५. उच्च मध्यम	१५६.०—१५८.९	६.००
६. लम्बा	१५९.०—१६७.९	२.६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका ३

देशनाओं का वर्गीकरण

सिर देशना		मुखमण्डल देशना		नासिका देशना	
वर्ग	आवृत्ति %	वर्ग	आवृत्ति %	वर्ग	आवृत्ति %
अति दीर्घ शिरस्क	६८.६७	अति चौड़ा चेहरा	२.६७	अति लम्बी नाक	०.६७
दीर्घ शिरस्क	२३.३३	चौड़ा चेहरा	९.३३	लम्बी नाक	३०.००
मध्य शिरस्क	६.००	मध्यम चेहरा	२१.३३	मध्यम नाक	६०.६७
लघु शिरस्क	१.३३	लम्बा चेहरा	३५.३३	चौड़ी नाक	८.६६
अति लघु शिरस्क	०.६७	अति लम्बा चेहरा	३१.३३	अति चौड़ी नाक	०.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ -सूची

१. गुप्ता पी० एवम् पी० सी० दत्ता १९६६ एन्थ्रोपोमीट्री इन इंडिया (१८६८-१९६१)। कलकत्ता : भारतीय मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण, भारत सरकार ।

२. रस्तोगी सुधा १९७२ मार्फोजेनटिक स्टडी आफ रस्तोगीज, पी-एच०डी० थीसिस, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (अप्रकाशित)।

३. सिंह आई० पी० एवम् एम० के० भसीन १९६८ एन्थ्रोपोमीट्री। दिल्ली : भारती भवन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थारू और उनकी ऐतिहासिकता

अंगने लाल

उत्तर प्रदेश में हिमालय की तराई में नैनीताल से लेकर गोरखपुर तक थारू लोग फैले हुए हैं। यह पट्टी 'थारू बेल्ट' कहलाती है। इस समय इनकी गणना जनजातियों में की जाती है। इनकी जनसंख्या ७४११४ है।[1] थारू लोग अत्यन्त सरल स्वभाव के होते हैं। चोरी और प्राणि हिंसा से दूर रहते हैं। जात-पात, छुआ-छूत का भी उनमें भेद भाव नहीं पाया जाता है। उनकी सरलता का नाजायज लाभ उठाकर दूसरे प्रदेशों से आये हुए लोगों ने उनकी जमीन-जायदाद को हथियाने की कोशिश की है।

थारुओं की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। किसी समय उनका विस्तार दक्षिण पूर्व एशिया तक हो गया था। थाई और थाईलैण्ड आज भी थारू का स्मरण दिलाते हुए प्रतीत होते हैं। नेपाल में थारू वंश के अनेक राजाओं ने राज्य किया। यह थारू वंश उत्तरी भारत का प्राचीन वंश है।

पालि बौद्ध ग्रन्थ दीघ निकाय में थारू लोगों का उल्लेख हुआ है। यहाँ उन्हें 'थुलुसु'[2] कहा गया है। उस समय भी उनका एक अलग राज्य (जनपद) था जिसकी राजधानी उत्तरका नामक नगरी थी (उत्तरका नाम थुलून निगमो)[3] उत्तरका निगम[4] में ही "अचेल कोर खत्तिय कुक्कुर व्रतिक" रहता था जो वस्त्र न धारण करने के कारण अचेल और कुक्कुर की भाँति जीविका बिताने के कारण 'कुक्कुर व्रतिक' कहलाता था। वह दोनों घुटनों और हाथों के बल बैठता था और जमीन पर फेंके गये अन्न को मुँह से चबाता था। उसकी इस कठिन जीवनचर्या से लोग उसे बड़ा तपस्वी मान बैठे थे। उनकी इस चर्या को सुनकर महामानव बुद्ध ने थारुओं को उपदेश देते हुए बताया कि यह सभी बातें मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाने वाली नहीं हैं। ऐसी चर्या निर्वाण मार्ग के विपरीत है। बुद्ध के उपदेश से थारू लोगों का अज्ञान दूर हुआ और वे उनके अनुयायी हो गये।[5]

भगवान बुद्ध से प्रबोधन प्राप्त करके इन थारू लोगों ने नेपाल में अपना राजवंश स्थापित किया। इस थारू राजवंश में कम से कम आठ शासकों ने लगभग ३५० वर्षों तक शासन किया। इन शासकों की सूची और सिंहासनारोहण का वर्ष इस प्रकार है।[6]

डा० अगने लाल, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम	नाम	वर्ष
(१)	थुष्ख	४९० ई० पू०
(२)	थुष्ख पंचम	४१५ ई० पू०
(३)	थुन्क (थूम्म)	३४० ई० पू०
(४)	स्थुन्को	२६५ ई० पू०
(५)	थुर	२१५ ई० पू०
(६)	थम्मू	१९० ई० पू०
(७)	थोर	१६५ ई० पू०
(८)	थोको	१४० ई० पू०

दीघ निकाय में वर्णित थारू देश (थुलुसु जनपद) की राजधानी उतरका निगम की पहचान आज अक निश्चयात्मक रूप से नहीं की जा सकी है फिर भी चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से थारू जनपद और उत्तरका नगर की पहचान करने में पर्याप्त सहायता मिल जाती है।

ह्वेनसांग सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हर्षवर्धन के समय धर्म यात्रा पर भारत आया था। वह देश के लगभग सभी राज्यों (जनपदों) और उनकी राजधानियों को गया और उनका आँखों देखा विवरण अपने यात्रा वर्णन में लिखा है। यहाँ उसके द्वारा वर्णित जनपदों में से मण्डावर (मा-ती-पो-लो)[७] ब्रह्मपुर (पो-लो-हिह–मो-पु-लो)[८] तथा गोविषाण (किउ–पी–श्वांगना)[९] पर विचार करना अपेक्षित है क्योंकि यात्री द्वारा वर्णित गोविषाण नगर थुलुसु (थारुओं) की राजधानी उत्तरका निगम प्रतीत होती है। ह्वेनसांग मा–ती–पो–लो (मातीपुर या मण्डावर जिला बिजनौर) से ब्रह्मपुर (पो+लो–हिह–मो–पु–लो) गया था। ब्रह्मपुर में उसने पाँच बौद्ध बिहार तथा दस ब्राह्मण मन्दिर देखे थे।[१०]

ब्रह्मपुर के बाद चीनी यात्री किउ–पी–श्वांगना जनपद आया था।[११] यह जनपद मातीपुर से पूर्वोत्तर में लगभग ६७ मील (४०० ली०) दूर था।[१२] महोदय एम० जूलियन ने किउ–पी–श्वांगना की पहचान गोविषाण से की है।[१२] यात्री के अनुसार यह जनपद २००० ली० (लगभग ३३३ मी०) के विस्तार में स्थित था इसकी राजधानी १४-१५ ली अर्थात् लगभग २ १/२ मी० के घेरे में स्थित थी।[१३] कनिंघम महोदय का विचार है कि तत्कालीन किउ–पी–श्वांगना (गोविषाण) जनपद में वर्तमान काशीपुर, रामपुर और पीलीभीत सम्मिलित रहे होंगे।[१४] यह जनपद पश्चिम में राम गंगा से लेकर पूर्व में शारदा अथवा घाघरा नदी तक और दक्षिण में बरेली तक फैला रहा होगा।

चीनी यात्री ने गोविषाण जनपद की राजधानी को सघन और प्राकृतिक छटा से सम्पन्न बताया है। इस नगर में उसने दो बौद्ध संघाराम देखे थे जिनमें एक में हीनयानी बौद्ध भिक्षु रहते थे। अन्य धर्मावलम्बियों के भी ३० मन्दिरों का वर्णन ह्वेनसांग ने किया है। उनमें दर्शन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजन के लिये भेद-भाव नहीं किया जाता था। यात्री ने उपर्युक्त दो बौद्ध संधारामों के अलावा एक और भी संधाराम देखा था (जिसमें सम्राट अशोक द्वारा बनवाया हुआ २०० फीट ऊँचा स्तूप विद्यमान था। इसी स्थान पर भगवान गौतम बुद्ध ने धर्म के विभिन्न विषयों पर एक महीने तक उपदेश दिये थे। इसी अशोकीय स्तूप के बगल में दो अन्य स्तूप भी थे जो दस-दस फीट ऊँचे थे। ये दोनों धातु स्तूप थे जिनमें तथागत गौतम बुद्ध के केश तथा नख धातु सुरक्षित थे।[१५]

कनिंघम प्राचीन गोविषाण नगर की पहचान वर्तमान काशीपुर के समीपस्थ उज्जैन ग्राम (जिला नैनीताल) से करते हैं[१६] जिसके आस-पास का भू-भाग इस समय भी प्रसिद्ध थारू क्षेत्र है। उजैन ग्राम में प्राचीन किले के ध्वंसावशेष इस समय भी विद्यमान हैं। ये अवशेष पूर्व-पश्चिम में ३००० फीट की लम्बाई तथा १५०० फीट की चौड़ाई में फैले हुए हैं जिनका घेरा लगभग दो मील है। यह उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग ने गोविषाण नगर का घेरा २ १/२ मील (१४-१५ ली०) बतलाया है। किले में एक जलाशय है जिसे द्रोण सागर कहा जाता है। इसके तटबन्ध बनाने में जिन ईंटों का प्रयोग किया गया है वे १५ इंच लम्बी १० इंच चौड़ी और २ १/२ इंच मोटी हैं। ये ईंटें स्वयं प्राचीनता की प्रमाण हैं।[१७]

कनिंघम ने चीनी यात्री द्वारा वर्णित अशोभनीय स्तूप की पहचान जागेश्वर महादेव के दक्षिण पश्चिम खर्गपुर ग्राम के पास स्थित ऊँचे टीले से की है। यह टीला १८६२–६३ ई० में भी जब उन्होंने इसका सर्वेक्षण किया था बीस फीट ऊँचा था और ठोस ईंटों का बना हुआ था। उसका ऊर्ध्वमुखी निचला व्यास २००० फीट था और ऊपरी भाग ६० फीट मोटा था। चारों ओर से वह टूटा फूटा था।[१८]

चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा वर्णित अन्य बौद्ध स्मारकों की खोज अभी तक नहीं की गई है। उजैन के ये ऐतिहासिक खण्डहर और टीले बुद्ध युगीन थारू (थुलुसु) लोगों की राजधानी उत्तरका निगम के अवशेषों को अपने गर्भ में छिपाये हुए इतिहास-वेत्ताओं के साथ-साथ पुरातत्व-वेत्ताओं के फावड़े की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यहां के उत्खनन से निश्चय ही इतिहास के ओझल अंशों पर प्रकाश पड़ सकेगा।

सन्दर्भ

१. आयुक्त, अनुसूचित जाति एवं जनजाति उत्तर प्रदेश की वार्षिक रिपोर्ट वर्ष १९७६–७७ तथा ७७-७८ पृ० ९०। जिलेवार इनकी जनसंख्या इस प्रकार है-नैनीताल में ३८१३२; लखीमपुर खीरी में ११५७६; वहराइच में ३५७९; गोण्डा में १९६४६ तथा गोरखपुर में ११८१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. दीघ निकाय, जि० ३/६/२४

३. वही, जि० ३/६/२४-२५

४. टिप्पणी--प्राचीन काल में छोटे नगर को निगम कहा जाता था। यह इस समय के कारवा के समान होता था।

५. दीघ निकाय, जि० ३/६–९

६. डॉ० के० पी० जायसवाल, क्रोनोलाजी आफ नेपाल पृ० १०९-११०

७. बील, चा० ए० इ०, जि० २/२२०

८. वही, जि० २/२२६

९. वही, जि० २/२२७

१०. बील, चा० ए० इ०, जि० २/२२७

११. वही, जि० २/२२७

१२. ह्वेनसांग, २/२३१; दृष्टव्य ए० ज्या० इ०, पृ० ३००

१३. बील, चा० ए० इ०, जि० २/२२७

१४. ए० ज्या० इ०, पृ० ३०२

१५. बील, चा० ए० इ०, जि० २/२२७-२२८

१६. ए० ज्या० इ०, पृ० ३०१

१७. वही, पृ० ३०१-३०२

१८. आर्क० रिपो० १८६२-६३ पृ० २५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर-प्रदेश के दुहाई गाँव में अस्थायी गुट

विजय कुमार

प्रस्तुत शोध प्रपत्र का प्रधान उद्देश्य ग्रामीण समाज में अस्थायी गुटों की विशेषताओं का पुष्टिकरण तथा पंचायत चुनाव में उनके स्वरूप का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। यह अध्ययन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जनपद के रजापुर विकास खण्ड के दुहाई गाँव में विद्यमान गुटों से सम्बन्धित सामग्री पर आधारित है।

१. सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा

लासवैल[१] की गुट की परिभाषा हमारी विश्लेषणात्मक आवश्यकताओं को पूरा करती है। उनके अनुसार : "बड़ी इकाई का कोई भाग एक समूह के रूप में है जो विशेष व्यक्तियों या योजनाओं की प्रगति के लिए कार्य करता है (१९३७ : ४९)।" उनका यह भी कथन है कि गुटों में केवल राजनैतिक सत्ता के लिए ही संघर्ष नहीं होता बल्कि गैर राजनैतिक उद्देश्यों के लिए भी गुट संगठित किये जाते हैं।

फर्थ[२] के अनुसार गुट समूह या समाज के ऐसे खण्ड हैं जो एक दूसरे से विरोधी सम्बन्ध रखते हैं, पूरे समाज के मुकाबले उनकी अपने कार्यों में अधिक रुचि होती है और प्रायः उनके क्रिया कलापों में उबाल होता है (१९५७ : २९२)। निकोलास[३] गुटों को निम्न रूप में परिभाषित करते हैं : (१) गुट संघर्षरत समूह है, (२) गुट राजनैतिक समूह है, (३) गुट संगठित समूह नहीं हैं, (४) गुट के सदस्यों का चयन नेता द्वारा होता है, (५) गुट के सदस्यों को विभिन्नता के सिद्धान्तों पर लिया जाता है (१९६५ : २७-९)।

व्रास[४] के अनुसार गुट संगठन के साथ-साथ विघटन कार्य भी करता है। संगठनात्मक कार्य यद्यपि कम स्पष्ट हैं परन्तु लम्बे समय में अधिक महत्व रखते हैं। इसके विपरीत गुटबाजी का प्रभाव विघटन कार्यों में अधिक स्पष्ट है और लम्बे समय में कम महत्व का है। (१९६५ : २३६-७)।

भारतीय सन्दर्भ में गुटों का अध्ययन करने के लिये दो दृष्टिकोण हैं। पहले दृष्टिकोण में

विजय कुमार, शोधछात्र, उच्च शिक्षा संस्थान, समाजशास्त्र, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे गुट आते हैं, जिनमें स्थायीपन अधिक पाया जाता है तथा दूसरे दृष्टिकोण से वे गुट देखे जाते हैं जो स्थायी होते हैं जिनके समाप्त होने की सम्भावनाएं अधिक हैं। इन स्थायी गुटों को अर्द्ध समूह या आभासी समूह (क्वासाई समूह) भी कहा जा सकता है। मेयर[५] गुटों को ऐक्शन-सेटों की एक विशेष किस्म मानते हैं। उनका कहना है कि आभासी समूह किसी भी सामाजिक क्षेत्र में बन सकते हैं किंतु आमतौर से तभी वे गुट कहलाते हैं जब वे राजनैतिक क्षेत्र में होते हैं (१९६२ : ११६)।

लेविस[६] के अनुसार गुट वे समूह हैं जो कम साधनों पर हुये झगड़ों से उभरते हैं। विशेषतः उन्होंने पाया है कि नये गुट निम्न कारणों से विकसित हुये (१) जमीन के उत्तराधिकार पर झगड़े, (२) दत्तक पुत्रों के झगड़े, (३) घर व सिंचाई अधिकारों पर झगड़े, (४) यौन अपराधों पर झगड़े, (५) कत्ल के झगड़े, (६) जातियों के बीच झगड़े। गाँव वालों की एक प्रसिद्ध कहावत है कि गुट और झगड़े दोनों जर, जोरू और जमीन के ऊपर होते हैं (१९५४ : ५०३)।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि जहाँ जातियों के बीच झगड़े होते हैं वहाँ अन्तरजातीय, अन्तर खानदान या अन्तर खानदान के झगड़े होते हैं तो गुटों का क्या स्वरूप होगा। अतः अध्ययन के द्वारा देखा जाय कि इस तरह के बने गुट स्थायी होंगे या अस्थायी होंगे। मेहता[७] ने अपने अध्ययन में बताया कि गुट एक सम्बन्ध के प्रतिरूप को प्रदर्शित करता है तथा विरोधी समूहों की रचना के लिये आधार प्रदान करता है, जो आपस में संगठित हुये रहते हैं परन्तु एक समूह दूसरे समूह से दुश्मनी रखता है। दूसरे शब्दों में, गुट व्यक्तियों का वह संगठित समूह है जो अपने समूह के हितों के लिये लगातार एक जुट होकर कार्य करते हैं (१९७१ : ३६५)।

ग्रामीण समुदाय के सदस्य विभिन्न उम्र, जाति, पेशों और आर्थिक समूहों के सदस्य होते हैं। उनके हित भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। अतः उनमें से प्रत्येक समूह समस्याओं को अपने अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। समूह प्रक्रिया के विकास में वे आपस में झगड़ा भी कर सकते हैं तथा वृहत समूह में ही उप-समूह बनाते हैं। इस तरह ये छोटी संगठित ईकाईयां अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करने के लिये दूसरे समूहों का विरोध करती हैं। ऐसे छोटे उप-समूहों को भारतीय ग्रामों में गुटों के नाम से पुकारा जाता है (वहीं पर : ३६५)। इस प्रकार गुट, संघर्ष के द्वारा उभरते हैं या शक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं जिससे सरकारी या गैर सरकारी पदों पर अधिकार प्राप्त हो जाये। इस तरह गुटों में कम से कम तीन पहलुओं को पाया जाता है : चयन, कार्य और अवधि। संरचना की दृष्टि से गुटों को अस्थायी ही समझा जाता है क्योंकि वे अपनी परिधि के अन्दर विशेष घटनाओं और समस्याओं को लेकर ही जन्म लेते हैं। पोकोक[८] (१९५७ : २९६) के अनुसार "...... .....गुट स्थायी समूह नहीं हैं परन्तु विशेष परिस्थितियों के सापेक्ष हैं।"

यहाँ पर शोधकर्त्ता एक प्रश्न उठाता है कि अगर गाँव में दो समूह हैं तथा उनके सदस्य आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं, एक दूसरे से अच्छी तरह बोलते हैं, एक समूह के सदस्यों का दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समूह के सदस्यों के यहाँ सामाजिक कार्यों (विवाह, पूजन आदि) में सम्मिलित होते हैं, परन्तु गाँव की औपचारिक शक्ति (प्रधान पद) को पाने के लिये दोनों समूह अथक प्रयास करते हैं। अतः जब दो समूहों में इस प्रकार के सम्बन्ध हों तो उन समूहों को क्या हम गुट कहेंगे। मेरे विचार से इस तरह के गुटों को 'शक्ति स्पर्धा गुट' कहा जा सकता है, जो केवल गाँव की औपचारिक शक्ति को पाने के लिये ही संघर्ष करते हैं। हीरामनी[९] ने अपने अध्ययन में पाया कि गाँव में गुटों का नेतृत्व बड़े जमींदारों द्वारा किया जाता है तथा गुट के प्रति स्वामिभक्ति सदस्यों के समान हित पर ही नहीं निर्भर करती बल्कि गुट के नेताओं की आर्थिक शक्ति पर भी निर्भर करती है, क्योंकि वे गरीब समूहों का समर्थन व स्वामिभक्ति को अपने साथ रखते हैं तथा गरीबों के आर्थिक हितों की रक्षा करते हैं।

मेहता ने अपने अध्ययन में यह पाया कि किसी समुदाय में विकल्प का होना भी गुट के निर्माण का एक कारण है। समुदाय के कुछ लोग उस व्यक्ति की तरफ देखने लगते हैं जो उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर सके, उन्हें सलाह दे सके तथा उनकी सहायता करे। जब कुछ व्यक्ति यह महसूस करने लगते हैं कि उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिये गाँव में दूसरा व्यक्ति उपस्थित है तो वे उसकी तरफ देखने लगते हैं। वह व्यक्ति उन लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये एक नाभिक बन जाता है जिसके चारों तरफ एक समूह की रचना होती है (१९७१ : ३६५)।

योगेश अटल[१०] के अनुसार गाँव के समुदाय में घटी कोई घटना पिछली घटनाओं से जुड़ी होती है या आगे घटने वाली घटनाओं की जननी होती है या कम से कम घटनाओं की प्रारम्भिक स्थिति के लिये एक केन्द्र बिन्दु बन जाती है। यही घटनायें संघर्ष की अवस्थाओं में गुट जैसे समूहों को जन्म देती हैं।

मनुष्य अपने व्यवहार की स्थिति के अनुसार बदलता है, यह कोई जरूरी नहीं कि वह उसी रुचि से किसी दूसरी स्थिति में भाग ले जैसी रुचि वह पहले वाली स्थिति में दिखा रहा था। दूसरी स्थिति में वह विभिन्न गुटों से सहगामिता कर सकता है। (१९६८ : १७४)।

२. अध्ययन विधि

जैसा कि लिखा जा चुका है कि इस अध्ययन में अस्थायी गुटों की विशेषताओं का पुष्टिकरण करना है। शोध अभिकला के आधार पर हमारा अध्ययन वर्णनात्मक कहा जा सकता है। अध्ययन प्रविधि के रूप में हमने साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग किया है। साक्षात्कार के लिये गुटों के नेताओं को ही चुना गया है, इसके अलावा उन पुरुष उत्तरदाताओं का भी साक्षात्कार लिया है जो गाँव की राजनीति में सक्रिय भाग लेते हैं। इस तरह ३० पुरुष उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. गाँव की संरचना

ग्राम दुहाई राष्ट्रीय राज्य मार्ग दिल्ली-मेरठ पर स्थित है। इसी मार्ग पर गाँव में बालिकाओं का इण्टरमीडिएट कालेज स्थापित है, जिसमें आस-पास के गाँवों से बालिकायें शिक्षा लेने आती हैं। इसके अतिरिक्त गाँव में एक जूनियर हाई स्कूल तथा एक बेसिक शिक्षा स्कूल भी है। गाँव में बैंक व डाक सुविधा भी है। दुहाई बस स्टैन्ड पर एक छोटा सा बाजार केन्द्र है, जहाँ से ग्रामवासी अपनी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ खरीदते हैं।

गाँव की कुल मत संख्या २,५४३ है। इसमें १९ जातियाँ रहती हैं जिन्हें संस्कार श्रेणी बद्धता के आधार पर तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। कोष्ठ में जाति के कुल मतों को प्रदर्शित किया गया है।

१—	उच्च जातियाँ	:	जाट (८३५), त्यागी (१६३), ब्राह्मण (१८१), गूजर (१७२), वनिया (४८)।
२—	मध्यम जातियाँ	:	सुनार (४), खाती बढ़ई (१०), बढ़ई (६२), धुना (६०), कुम्हार (५२), धींवर (४७), नाई (३९), खटीक (३०), लोहार (१७), दर्जी (१४), जुलाह (८), फकीर (६)।
३—	निम्न जातियाँ	:	चमार (७०५), भंगी (९०)।

गाँव में दो धार्मिक समूह हिन्दू और मुसलमान रहते हैं। तीन जातियाँ बढ़ई, दर्जी, फकीर मुसलमान हैं तथा शेष हिन्दू जातियाँ हैं। उच्च जातियाँ कुल मतों का ५५.०२ प्रतिशत हैं जबकि निम्न जातियाँ ३१.२६ प्रतिशत हैं। जाटों के मत कुल मतों का ३२.८४ प्रतिशत हैं। इस तरह जाटों के व निम्न जातियों के मत करीब-करीब बराबर हैं। मध्यम जातियाँ एक दूसरे के सापेक्ष कम मत होने के कारण ज्यादा महत्व नहीं रखती हैं।

गाँव का मुख्य आर्थिक स्रोत जमीन है। जाट, त्यागी, गूजर और ब्राह्मण क्रमशः कुल जमीन का ५५.५८ प्रतिशत, २८.११ प्रतिशत, ६.४७ प्रतिशत और ४.८५ प्रतिशत भागीदार हैं। गाँव की कुल खेती की जमीन १२४५ एकड़ है। इसके अलावा मध्यम व निम्न जातियों के लोग ज्यादातर गाजियाबाद में स्थित कारखानों में मजदूरों के रूप में अपने भरण-पोषण के लिये जाते हैं। कुछ लोग दूध बेचकर भी अपना गुजारा करते हैं।

४. गाँव का राजनैतिक इतिहास

गाँव के राजनैतिक इतिहास का वर्णन करने के लिये हम प्रथम पंचायत चुनाव (१९४९) से लेकर अन्तिम चुनाव (१९८२) तक का संक्षेप में वर्णन करेंगे कि किस तरह प्रत्याशी चुनाव लड़े। प्रथम चुनाव में गाँव वालों में ज्यादा राजनैतिक जागरूकता नहीं थी तथा सभी गाँववासियों ने एक ब्राह्मण को गाँव का प्रधान मनोनीत कर दिया। दूसरे चुनाव (१९५५) में चार प्रत्याशियों ने भाग लिया जिसमें दो जाट, एक त्यागी तथा एक चमार जाति से थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह इस चुनाव में गाँव के जाट दो गुटों में विभाजित हो गये। एक गुट के नेता कनक सिंह व दूसरे गुट के नेता कूड़े सिंह थे। कूड़े सिंह का गुट प्रधान पद का चुनाव जीत गया। तीसरे चुनाव (१९६१) में पाँच प्रत्याशियों ने प्रधान पद का चुनाव लड़ा, जिनमें दो जाट तथा तीन त्यागी थे। इस चुनाव में तीन त्यागी प्रत्याशियों का होना यह संकेत देता है कि त्यागी जाति में तीन गुट बन चुके हैं। इस चुनाव में दोबारा कूड़े सिंह के गुट का वही प्रत्याशी विजयी हुआ जो १९५५ के चुनाव में जीता था। चौथे चुनाव (१९७२) में चार प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा जिनमें दो जाट, एक ब्राह्मण तथा एक चमार जाति से थे। इस चुनाव में चमार जाति का प्रत्याशी विजयी हुआ। इस तरह गाँव की औपचारिक शक्ति (प्रधान पद) उच्च जाति से निम्न जाति के पास पहुंच गयी। पाँचवें चुनाव (१९८२) में तीन प्रत्याशी खड़े हुए जिनमें एक भूत-पूर्व प्रधान (चमार), एक जाट तथा एक त्यागी था। इस चुनाव में त्यागी प्रत्याशी विजयी हुआ तथा गाँव की औपचारिक शक्ति फिर से उच्च जाति के पास पहुंच गयी।

५. गुटों का उद्भव

गुटों का उद्भव जानने के लिये यह आवश्यक है कि जाट जाति जिसके मत गाँव में सबसे अधिक हैं तथा गाँव की प्रबल जाति भी है, उसमें कितने खानदान हैं। दुहाई गाँव की जाट जाति में निम्न खानदान हैं : (१) नये वासी, (२) ढन्डवे, (३) चूड़के, (४) सराय वाले, (५) चिमन के।

दूसरे पंचायत चुनाव से चौथे चुनाव तक जाट जाति खानदान के आधार पर दो गुटों में विभाजित रहीं क्योंकि खानदान के नेता प्रधान पद को अपने पास रखना चाहते थे। ढन्डवे खानदान से बलजीत लगातार प्रत्याशी रहा तथा चूड़के के खानदान से प्रत्याशी बदलता रहा। उनके खानदान का नेता कूड़े सिंह था जबकि चूड़के के खानदान का नेता कनक सिंह था। इन दोनों नेताओं में कभी संघर्ष नहीं हुआ। दूसरे व तीसरे चुनाव में बलजीत विजयी रहे जबकि चौथे चुनाव में जयप्रकाश चमार विजयी हुआ। इसका कारण यह था कि चौथे चुनाव में त्या-गियों ने अपना प्रत्याशी खड़ा नहीं किया तथा चमार प्रत्याशी में जा मिले।

६. गुटों के उद्भव से सम्बन्धित घटनायें

घटना–१

लम्बरदार राम अवतार का परिवार गाँव में काफी प्रतिष्ठा रखता था। १९५५ के पंचा-यत चुनाव में उसने जाटों के एक प्रभावशाली व्यक्ति से कहा कि लम्बरदार के समर्थन के बिना जाट प्रधान नहीं हो सकता। इसके प्रत्युत्तर में उस व्यक्ति ने कहा कि तुम अपनी लम्बरदारी को अपने पास रखो, मुझे कोई हराने वाला नहीं है। लम्बरदार को यह बात तीर की तरह चुभी तथा अपनी बात की पानी देने के लिये अपनी जाति (त्यागी) को एकत्रित किया तथा जाट व्यक्ति को हराने के लिये स्वयं गुट तैयार करके पंचायत चुनाव लड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना–२

जमींदारी प्रथा समाप्त होने पर चमार काश्तकारों ने अपनी एक पंचायत बुलायी । उसमें यह निश्चित किया गया कि गाँव की प्रधानी हमारे कब्जे में आनी चाहिये क्योंकि अगर जाट जाति का प्रधान बन गया तो हम गरीबों का क्या होगा । सभी चमार काश्तकारों ने एक जुट होकर अपना गुट बनाया तथा १९५५ के पंचायत चुनाव में अपना प्रत्याशी खड़ा किया ।

घटना–३

१९५८ में त्यागी खानदान (मुखिया) में जमीन के बंटवारे पर झगड़ा हुआ तथा मुकदमा चला । इस तरह यह खानदान दो गुटों में विभाजित हो गया । इस कारण १९६१ में त्यागियों में दो नये प्रत्याशी खड़े हुए ।

घटना–४

१९७५ में जयप्रकाश प्रधान ने धर्मशाला की जगह में तथा गाँव समाज की भूमि पर अपने साले (पत्नी का भाई) के नाम से तथा अन्य चमारों के नाम से प्लाट (भूमि खण्ड) आवंटित कर दिये । इस पर जाट, त्यागी तथा ब्राह्मण जाति के लोगों ने विरोध किया । इस तरह प्रधान के खिलाफ विभिन्न जातियों का मिलकर एक गुट बन गया । इस गुट को दबाने के लिये प्रधान ने १९७६ में १८ आदमियों पर एक झूठा मुकदमा दायर कर दिया कि ये व्यक्ति मेरे मकान में घुस आये तथा मेरे साथ मार पीट शुरू की । मुकदमा धारा ४५२ के अनुसार अदालत में चला तथा १९८० में ये लोग बरी हो गये । इन १८ आदमियों में से ८ त्यागी, ६ जाट तथा ४ ब्राह्मण जाति से थे ।

घटना–५

तीन जातियों (जाट, त्यागी व ब्राह्मण) के लोगों ने जय प्रकाश प्रधान को कत्ल करने की योजना बनाई । इसके लिये उन्होंने एक दिन निश्चित किया । अतः २९ सितम्बर, १९७८ की रात को ११ बजे जय प्रकाश प्रधान को इन लोगों ने मिलकर उसके ही मकान पर (बल्लम, भाले व गड़ासे आदि) हथियारों से बुरी तरह मारा । वे लोग यह सोचकर चले गये कि जय प्रकाश खत्म हो चुका है, परन्तु काफी इलाज कराने के बाद वह बच गया । अगले दिन जय प्रकाश के बेटे ने पुलिस में ८ आदमियों (३ त्यागी, ४ जाट तथा एक ब्राह्मण) के नाम से रिपोर्ट दर्ज करा दी । पुलिस ने मौके पर स्थिति का जायजा लिया । इस तरह इन लोगों के खिलाफ धारा ३०७, १४७ तथा १४८ के अनुसार मुकदमा दायर किया गया । इसलिए तीनों जातियों ने मिलकर एक समूह बनाया तथा १९८२ के पंचायत चुनाव में अपना प्रत्याशी खड़ा किया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. १९८२ पंचायत चुनाव में गुटों की संरचना

इस पंचायत चुनाव में प्रधान पद के लिए ३ प्रत्याशी थे। तीनों प्रत्याशी विभिन्न जाति के थे, यानी एक जाट, एक त्यागी व एक चमार, भूतपूर्व प्रधान।

जाट गुट

यह गुट जातिवाद पर बना हुआ था तथा अधिकतर इसके सदस्य जाट जाति के थे। कृपाल सिंह को जाटों ने अपनी तरफ से प्रत्याशी खड़ा किया क्योंकि यह सराय वाले खानदान से था। इस खानदान की यह विशेषता रही है कि यह खानदान अब तक गाँव की राजनीति में शिथिल रहा है। चुनाव को जीतने के लिए जाटों ने एक परम्परागत जाति पंचायत को बुलाया तथा करीब-करीब सभी जाट कृपाल सिंह के लिए सहमत हो गये। इस प्रत्याशी का आज तक किसी से कोई झगड़ा नहीं हुआ तथा यह गाँव की राजनीति से कम मतलब रखता था। ढन्डवे खानदान ने कृपाल सिंह को समर्थन दिया जबकि चूड़के के खानदान में से करीब आधे लोगों ने समर्थन दिया।

त्यागी गुट

जाटों की एकता को देखकर त्यागी जाति के तीनों खानदान (लम्बरदार, मुखिया तथा कदम के) एक हो गये। मध्यम जातियों के नेताओं ने जो अपनी जाति के 'वोट बैंक' कहलाते थे, जय प्रकाश (भूतपूर्व प्रधान, १९७२) के खिलाफ हो गये थे क्योंकि वह उनकी आवंटित प्लाटों पर कब्जा न दिला सका तथा उनसे घूस और ले ली। त्यागी प्रत्याशी ने इन वोट बैंकों को यह आश्वासन दिलाया कि तुमको आवंटित प्लाटों पर मैं कब्जे दिलाऊँगा। अतः इन वोट बैंकों ने त्यागी प्रत्याशी को वोट दिये। जो जाट व ब्राह्मण, जय प्रकाश से सम्बन्धित मुकदमों में थे उन सब ने त्यागी प्रत्याशी को मत दिये। नये वासी खानदान के जाटों के एक गुट ने त्यागी प्रत्याशी को अपना समर्थन दिया। भंगी जाति के मत दो वोट बैंक के साथ थे जिन्होंने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये त्यागी गुट में जाना अच्छा समझा। चमारों के कुछ वोट बैंक जय प्रकाश के खिलाफ थे जिन्होंने त्यागी गुट का साथ दिया जिससे चमार प्रत्याशी (जय प्रकाश) हार गये।

चमार गुट

जय प्रकाश, भूतपूर्व प्रधान, अपनी जाति का नेता है तथा चमार जाति में अपना प्रबल गुट बनाये हुए है। एक छोटी मढ़िया जिसका नाम मिलक है, दुहाई ग्राम पंचायत में आती है। इसके निवासी गूजर जाति के हैं। इन गूजरों का नेता रामपाल है जो जयप्रकाश का दोस्त है। अतः गूजर जाति के सारे मत जयप्रकाश के पक्ष में थे।

स्थायी गुटों तथा अस्थायी गुटों के अन्तर को जानने की आवश्यकता है। अस्थायी गुटों में विभिन्न प्रकार के समूह किसी समय एक साथ हो सकते हैं तथा सदस्यता विभिन्न स्थितियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ बदल सकती है। एकता समूह में इतनी दृढ़ नहीं होती और संलयन तथा विखण्डन साथ-साथ होते रहते हैं (योगेश अटल, १९६८ : १७४)।

इस गाँव के अध्ययन से पता चला कि गाँव में गुटों की संख्या समय के साथ-साथ बदलती रही है जिनको निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका

१९४९ से १९८२ तक पंचायत चुनावों में गुटों की संख्या

गुट का नाम	१९४९	१९५५	१९६१	१९७२	१९८२
जाट[1]	—	+	+	+	—
जाट[2]	—	+	+	+	—
जाट = जाट[1] + जाट[2]	—	—	—	—	+
त्यागी[1]	—	+	+	—	—
त्यागी[2]	—	—	+	—	—
त्यागी[3]	—	—	+	—	—
त्यागी = त्यागी[1] + त्यागी[2] + त्यागी[3]	—	—	—	—	+
ब्राह्मण	—	—	—	+	—
चमार	—	+	—	+	+
योग	०	४	५	४	३

नोट—१ : गुटों के नाम का आशय यह नहीं है कि उस गुट में केवल एक ही जाति के सदस्य हों।

नोट—२ : (—) चिन्ह गुट की अनुपस्थिति तथा (+) चिन्ह गुट की उपस्थिति को प्रदर्शित करता है।

निष्कर्ष

१— इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि १९५५ में ४ गुट, १९६१ में ५ गुट, १९७२ में ४ गुट तथा १९८२ में ३ गुट का उद्भव हुआ। जो इस बात की पुष्टि करता है कि जिस गाँव का अध्ययन किया गया उसमें गुट स्थायी नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२— अटल जी का कहना है कि अस्थायी गुटों की एक विशेषता यह है कि उनमें विखण्डन तथा संलयन साथ-साथ होते रहते हैं। अतः इस विशेषता के समर्थन में यह पाया गया कि १९५५ में त्यागी[1] गुट था परन्तु १९६१ में त्यागी[1], त्यागी[2] तथा त्यागी[3] गुटों का उद्भव होना यह दर्शाता है कि गुट का विखण्डन हो रहा है। इसके साथ-साथ १९८२ में फिर एक नया त्यागी गुट का बनना यह प्रमाणित करता है कि गुट प्रक्रिया में संलयन हो रहा है। १९६१ में त्यागी[2] तथा त्यागी[3] गुटों का उद्भव होने के कारण खानदान में मुकदमे बाजी थी जो घटना—३ से विदित है।

२— १९५५ से १९७२ तक जाट[1] तथा जाट[2] गुट चले आ रहे थे, परन्तु १९८२ के पंचायत चुनाव में दोनों ने मिलकर एक नया जाट गुट बनाया। इसका कारण यह था कि १९७२ में जाट जाति गाँव की औपचारिक शक्ति (प्रधान पद) को खो चुकी थी। इसलिये पुनः प्रधान पद को पाने के लिये दोनों गुटों का संलयन हो गया। जो अटल जी की अस्थायी गुट की इस विशेषता का समर्थन करता है कि विभिन्न प्रकार के समूह किसी समय एक साथ हो सकते हैं।

४— १९५५ से १९७२ तक गाँव के जाट दो गुटों में विभाजित थे, परन्तु इनके नेताओं के तथा सदस्यों के आपस में सम्बन्ध अच्छे थे। वे एक दूसरे के सामाजिक कार्यों (विवाह, पूजन आदि) में भी भाग लेते थे। लेकिन गाँव के प्रधान पद को प्राप्त करने के लिये दोनों गुटों में १९७२ तक संघर्ष जारी रहा। अतः ये गुट 'शक्ति स्पर्धा गुटों' के रूप में कार्य कर रहे थे।

५— घटना-४ व ५ से विदित होता है कि १९७५ में गाँव समाज की भूमि के आवंटन पर उच्च जातियों (जाट+त्यागी+ब्राह्मण) ने संगठित होकर एक गुट की रचना की तथा चमारों का विरोध किया। अतः विभिन्न प्रकार के जाति समूह १९७५ में एक हो गये जिससे अटल जी की अस्थायी समूह की विशेषता की पुष्टि होती है।

६— घटना—२ से विदित है कि चमार काश्तकारों में एकता है। परन्तु १९६१ में उनका प्रत्याशी खड़ा नहीं हुआ जो यह पुष्टि करता है कि समूह किसी दूसरे समूह में सम्मिलित हो गया तथा समूह की एकता करीब-करीब समाप्त हो गयी।

सन्दर्भ

१— लासवैल, हेरोल्ड डी० १९३७ "फैक्शन्स" इन **एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज**, वैल्यूम—५, न्यूयार्क, दी मैकमिलन कम्पनी, पृ०—४९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२— फर्थ, रेमन्ड १९५७ इन्ट्रोडक्शन टू फेक्शन्स इन इण्डियन एण्ड ओवरसीज इण्डियन कम्यूनिटीज, **ब्रिटिश जरनल आफ सोशियोलाजी** ८:२९१-५ ।

३— निकोलास, राल्फ डब्लू० १९६५ 'फेक्शन्स : ए कम्पेरेटिव एनेलिसेज', इन **पोलिटिकल सिस्टम्स एण्ड दी डिस्ट्रीब्यूशन आफ पावर,** ए० एस० ए० मोनोग्राफ—२ (लन्दन : टाविस्टोक पब्लिकेशन्स) ।

४— ब्रास, पाल १९६५ **फेक्शनल पोलिटिक्स इन एन इण्डियन स्टेट,** बर्कले, यूनीवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया, पृ० २३६-३७ ।

५— मेयर, ए० सी० १९६६ 'दी सिग्निफीकेन्स आफ क्वासाई ग्रुप्स इन दी स्टडी आफ कम्पलैक्स सोसाइटीज', इन **दी सोशल एन्थ्रोपोलोजी आफ कम्प्लैक्स सोसाइटीज,** लन्दन, टाविसटोक पब्लिकेशन्स ।

६— लेविस, ओसकर १९५४ 'ग्रुप डाइनैमिक्स इन ए नार्थ इण्डियन विलेज', **दी इकोनोमिक वीकली** ६ : ४२३-५, ४४५-५१, ४७७-८२, ५०१-६ ।

७— मेहता, एस० आर० १९७१ 'ग्रुप कोहीजन एण्ड डिसरपशन : ए स्टडी आफ फेक्शन्स इन थ्री विलेज़ेज आफ पंजाब', **कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट एण्ड पंचायती राज डाइजेस्ट,** वैल्यूम-२, नं० ४, पृ० ३६५ ।

८— पोकोक, डेविड एफ० १९५७ 'दी बेसिज आफ फेक्शन इन गुजरात', **ब्रिटिश जरनल आफ सोशियोलोजी** ८ : २६९-३०६।

९— हीरामनी, ए० बी० १९७९ 'डाइनामिक्स आफ फेक्शन्स इन ए महाराष्ट्र विलेज', **दी इस्टर्न एन्थ्रोपोलोजिस्ट,** वैल्यूम ३२, नं० ३, पृ० १८३ ।

१०— अटल, योगेश १९६८ **चैन्जिग फ्रंटियर्स आफ कास्ट,** नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, न्यू दिल्ली, पृ० १७४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी स्तम्भ

मिशिंग जनजाति का लोक साहित्य

भिक्षु कौण्डिन्य

लोक साहित्य में लोक की सुदीर्घ परम्पराएँ अनिवार्य रूप से ध्वनित होती हैं। मौखिक परम्परा, रचनाकार की अवैयक्तिकता, सामूहिक भाव-भूमि, जनमानस को आन्दोलित करने की क्षमता—लोक साहित्य के अनिवार्य गुण हैं। लोक साहित्य अज्ञात काल से श्रुति परम्परा के रूप में चला आ रहा है। इसे लोक-सभ्यता का वेद (श्रुति) कहा जा सकता है, क्योंकि वेद भी तो अपने आरंभिक रूप में श्रुति कहलाते थे और सुन- सुन कर याद किये जाते थे। वेद ने तो कालान्तर में लिपि का सहारा ले लिया पर लोक साहित्य आज भी श्रुति ही है। लोक साहित्य का सहज सौन्दर्य उनके मौखिक रूप में ही है। उसका प्रभाव तभी तक अक्षुण्ण रहता है, जब तक उसे लिपि के शिकंजे से जकड़ नहीं दिया जाता।

लोक साहित्य एक कंठ से दूसरे कंठ में जाता हुआ समस्त समाज में परिव्याप्त हो जाता है। स्मरण के सहारे एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को इस लोक साहित्य सम्पत्ति को सौंपती है। स्मरण में जहाँ कोई व्यतिक्रम हुआ, गायक उसमें अपनी ओर से कुछ जोड़ देता है और इस प्रकार रचना से मूल छुटता जाता है और प्रक्षिप्त अंश बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे लोक की भाषा विकसित होती है, लोक साहित्य की भाषा भी बदलती जाती है और एक स्थिति तो ऐसी भी आ सकती है कि आदि प्रणेता यदि उसके वर्तमान स्वरूप एवं स्वर को सुने तो वह निश्चय ही स्वयं अपनी रचना को नहीं पहचान सकेगा। परिणती यह होती है कि लोक साहित्य का मूल-पाठ मिलता ही नहीं है। लोक साहित्य की इसी प्रकृति के कारण कहा जाता है कि वह अत्यधिक दूर और कोई प्राचीन वस्तु नहीं है, वह तो हमारे मध्य यथार्थ होकर जीवित है।

डा० भिक्षु कौण्डिन्य, ४६, पूर्वांचल जे०, एन० यू०, नई दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक साहित्य की अपार राशि हमारे सम्मुख है। पर उसका निर्माण किसने किया, यह बतलाना नितान्त कठिन है। यों तो सभी रचनाएँ किसी न किसी व्यक्ति की सहज प्रतिभा का प्रसाद हैं पर उस व्यक्ति का नाम उनमें कहीं नहीं मिलता है। नाम के अतिरिक्त मिशिंग गीतों में रचयिता का स्पष्ट व्यक्तित्व भी नहीं मिलता है। परिनिष्ठित साहित्य की यह सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है कि उसमें कलाकार का व्यक्तित्व झलकता हो पर लोक साहित्य में तो रचना की विशेषता रचयिता के व्यक्तित्व में नहीं वरन उसके व्यक्तित्व के नितान्त अभाव में है। लोक साहित्य की तो कसौटी ही यह है कि कृतित्व हो किन्तु वह लोक मानस के ऐसे सामान्य तत्वों से युक्त हो कि व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।

परिनिष्ठित साहित्य में अलंकारों पर बहुत बल दिया जाता है। कुछ काव्य-शास्त्री तो अलंकार के अभाव में काव्य के अस्तित्व को ही स्वीकार नही करते। पर लोक साहित्य में अलंकारों के प्रति कोई आग्रह नहीं है। यह तो उस वन्य कुसुम की भांति है, जो बिना सजाये-संवारे ही अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से दैदीप्यमान रहता है। ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्रामगीतों में रस है, महाकाव्यों में अलंकार। ग्रामगीत हृदय का धन है, और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है। लोक साहित्य में कहीं-कहीं अलंकार भी मिल जाते हैं, पर वे बड़े ही स्वाभाविक होते हैं। अलंकार के अतिरिक्त मिशिंग लोक साहित्य में छन्द पर भी कोई ध्यान नही दिया जाता है। छन्द की कमी को संगीत पूरा कर देता है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि लोक साहित्य शिष्ट काव्य कला की कसौटी पर बहुत खतरा नहीं उतरता पर उसका सौन्दर्य अपना माधुर्य और अपनी स्वाभाविकता श्रोतों तथा पाठकों को निश्चय ही आकृष्ट करती है।

मिशिंग लोक साहित्य में लोक जीवन का सांगोपांग वर्णन होता है। इसलिए स्वाभाविक रूप से लोक-जीवन के गुण-दोष उसमें रहते हैं। मिशिंग लोक साहित्य अपना आधार लोक के आदर्शों को ही बनाता है पर उसमें न तो कोरी आदर्शवादिता ही झलकती है और न कोरी उपदेशात्मकता। अधिकांश लोकोक्तियों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर उसे भी कोरी उपदेशात्मकता नहीं कहा जा सकता। लोकोक्तियों में रचयिता का चमत्कार अभिव्यंजित होता है। अतः वे अपनी अनूठी अभिव्यक्ति के आधार पर जीवित हैं, न कि उपदेश पर। उपदेशात्मकता तो उसमें गौण रूप में ही अपना स्थान रखती है।

मिशिंग लोक साहित्य की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें लोक का वास्तविक रूप प्रकट होता है। इसका कारण यह है कि इसके रचयिता किसी उद्देश्य विशेष को न लेकर अपने स्वाभाविक रूप को प्रकट करते हैं। अतः "नितम" (लोकगीतों), "लेके-दयिङ" (लोककथाओं) "आगम-लेतिक" (कहावतों) सभी में लोक का रहन सहन, खान-पान, आचार-व्यवहार, प्रेम, वात्सल्य, करुणा, घृणा, विश्वास सबका स्वाभाविक आकलन हो जाता है। लोक-साहित्य की इसी विशेषता के कारण समाजशास्त्री, नृविज्ञानवेत्ता और इतिहासकार इसको अपने अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रामाणिक स्रोत मानने लगे हैं। शिष्ट साहित्य से तो वे निराश हैं क्योंकि वहां तो वास्तविकताएँ कम मिलती हैं, आदर्शों की ही भरमार रहती है।

मिशिंग लोक साहित्य की जिन विशेषताओं का ऊपर विवेचन किया गया वे इसकी सार्वदेशिक विशेषताएँ हैं। वे सभी देशों के लोक साहित्य में उपलब्ध होती हैं। पर किसी विशिष्ट देश या जाति के लोक साहित्य की कुछ अपनी स्थानीय विशेषताएँ भी होती हैं। एक विशिष्ट जाति का लोक साहित्य अपने ही प्रचलित संस्कारों, अनुष्ठानों एवं विश्वासों को अपने में स्थान देगा और इस प्रकार से वह दूसरे देश या जाति के लोक साहित्य से भिन्न प्रतीत होगा। इसके अतिरिक्त लोक-व्यवहार, खान-पान का वर्णन भी विविध लोक साहित्यों में विभिन्नता लिए होगा। संगीत की मात्रा में भी विषमता का होना स्वाभाविक है। विविध लोक साहित्यों में विविध नदियों और स्थानों के उल्लेख और वातावरण की भी विविधता निरन्तर रूप से होगी।

लोक साहित्य का अध्ययन पश्चिम में विभिन्न जातियों के प्रति जिज्ञासा वृत्ति से प्रेरित होता हुआ धीरे-धीरे एक स्वतन्त्र विज्ञान का स्वरूप धारण करता गया, जिसने न केवल पश्चिमी देशों को ही प्रभावित किया वरन वहाँ उठी हुई लहर ने सुदूर पूर्वी देशों को भी शीघ्र ही प्लावित करना आरम्भ कर दिया। ज्यों ज्यों भाषा विज्ञान, नृविज्ञान, समाज विज्ञान, जाति-विज्ञान, पुरातत्व-विज्ञान जैसे विषयों का विकास होने लगा, लोक साहित्य की सहायता की आवश्यकता बढ़ती गई, क्योंकि इन विषयों की अधिकांश सामग्री लोक साहित्य से ही प्राप्त होती है।

लोक सहित्य में उपलब्ध जो मनोदशा प्रकट होती है, उसी के आधार पर यह निश्चय होता है कि उसमें जातीय तत्व मिलते हैं। उसी आधार पर लोक साहित्य के रचनाकारों ने उसे जाति विज्ञान का सहायक माना है। जातियों का निर्माण उनकी अपनी भौगोलिक वातावरण निर्मित परिस्थितियों में घनिष्ठतापूर्वक होता है। उनके चारों ओर विस्तृत प्रकृति की प्रतिक्रिया जिस रूप में भी उनके मस्तिष्क में होती है, उसी को वे अपने आचार विचार में ढालते हैं। आधुनिक भाषा-विज्ञान लोक साहित्य को भाषा-अध्ययन का मेरुदण्ड मानते हैं। संस्कृति, धर्म और साहित्य के अध्ययन के लिए भी लोक साहित्य का अध्ययन नितान्त उपयोगी है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि लोक साहित्य नाना रूपों में परिवेष्ठित साहित्य को प्रभावित व प्रेरित करता रहता है।

लोक साहित्य एक गतिशील विज्ञान है। इसमें व्यक्त परम्पराएं काल-प्रवाह में बह नहीं जाती हैं, वे नये-नये रूपों में प्रकट होती हैं। समय विशेष में लोक साहित्य का जन्म अवश्य होता है, पर उसके पश्चात वह सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वजनीन बन जाता है। लोक साहित्य को हम उस वन्य वृक्ष के समान मान सकते हैं, जिसकी जड़ें बहुत गहरी धंसी हुई हैं, पर वह निरन्तर रूप से नई शाखाएं, नई पत्तियां और नये फल प्रसूत किया करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व और मानव की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए तथा समाज के आन्तरिक विधान के तन्तुओं की व्याख्या करने के लिए लोक साहित्य का सांगोपांग अध्ययन परमावश्यक है।

लोक साहित्य में जहां शब्द और अर्थ के साहित्य होने का भाव रहता है, वहां भावों और विचारों का भी सामंजस्य होता है। गद्य में विचार प्रधान होते हैं, तो पद्य में भाव प्रधान। विचारात्मक साहित्य को भी हम भाव क्षेत्र से पृथक नहीं रख सकते, क्योंकि विचारों में भी थोड़ा बहुत रागात्मक अंश रहता है। लोक साहित्य चाहे वह पद्यमय गीतों के रूप में हो अथवा लोककथा में हो, लोक साहित्य में भावधारा अवश्य प्रवाहित रहती है। प्राचीन शास्त्रकारों ने "वाक्य रसात्मकः काव्य" कहकर सम्पूर्ण साहित्य को रस के अधीन रखा है। लोक साहित्य में रस की व्यंजना अधिक मिलती है।

स्त्री पुरुष आदि काल से एक दूसरे के प्रति आकर्षणशील रहे हैं। लोक साहित्य में स्त्री का रूप सौन्दर्य पुरुष के आकर्षण का आधार रहा है। हम पहले नायिका के नखशिख वर्णन को लेते हैं। "आलागै कांकाना बालाकंगे गयुमा..............." (हाथों की सुन्दरता है चूड़ियों के पहनने से)।

लोकगीतों में मानव-हृदय की भाव उर्मियाँ प्राकृतिक व्यापारों से उद्वेलित होकर उठती-बैठती रहती हैं। मनुष्य कहीं संगीत की ध्वनि से नाद–सौंदर्य की सृष्टि करता है, तो कभी वीणा करताल, तानपूरा आदि वाद्यों द्वारा और कभी नृत्य में अंग संचालन द्वारा हर्षाभिव्यक्ति करता है।

किसी भी देश के लोक साहित्य में वहां का जन जीवन प्रतिबिम्बित दिखाई देता है। मिशिंग जन जाति का किसान जहां एक ओर विभिन्न पर्वों, त्यौहारों एवं अन्य अवसरों पर अपने हृदय का पुलक निस्संकोच होकर प्रकट करता है, वहाँ अपने अभावग्रस्त जीवन और दारिद्रय-दानव का असुन्दर चित्र बेधड़क उपस्थित कर देता है। लोक साहित्य की परम्परा आदिमकाल से चली आ रही है, परन्तु युग-परिवर्तन का स्पष्ट प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़े बिना नहीं रहता। लोक-मानस परिस्थिति के अध्ययन में सचेष्ट रहा है और उसे लोकवाणी के माध्यम से व्यक्त करता रहा है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वह अपने उद्गारों की अभिव्यक्ति का आकांक्षी रहा है और इस प्रकार उसके जीवन के सुख-दुख उसके व्यक्तित्व में बड़ी आसानी से घुलमिल गये हैं।

मिशिंग लोक साहित्य में हमें ऐतिहासिक घटनाओं की बातें भी मिल जाती हैं। इनके बीच राम, कृष्ण, महात्मा गांधी, पिअली फुंकन, आदि को उपमा बनाकर "ऐनितम" (विरह गीत) गाने की परम्परा है। कई "ऐनितम" गीतों में महान पुरुषों एवं आदर्श नारियों के चरित्रों का उज्ज्वल चित्रण प्रकाशस्तंभ की भांति मार्गदर्शक बना हुआ है। मिशिंग लोक साहित्य में परम्परा निर्वाह की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। मौखिक परम्परा में पुरातन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाएँ एवं संस्कृति मुखर हो उठी है। लोक मानस नवीन रचनाओं के निर्माण में भी प्रयत्नशील है। लोक साहित्य में युग विशेष का प्रभाव अवश्मेव पड़ता है, जो विभिन्न प्रकार के लोक गीतों में स्पष्ट दिखाई देता है।

मिशिंग लोकसंस्कृति की आत्मा गांवों और जंगलों में रहने वालों के रीति रिवाजों, लोकगीतों और आचार विचार में निहित है। इस लोक संस्कृति के रक्षक हमारी आदिम जातियां और ग्रामीण कृषक, मजदूर हैं जो अपने लोकगीत, कथा-कहानियों में परम्परागत मूल संस्कृति संरक्षित किये बैठे हैं। मिशिंग जनजातियों की लोक संस्कृति शहरों की उच्च अट्टालिकाओं में निवास नहीं करती, वह प्रकृति की गोद में पनपती है। श्रद्धा भावना मानव जीवन को सरस बनाये रखती है, अन्यथा वैज्ञानिक युग का मानव बिल्कुल नीरस रहता और उसकी गहन गंभीरता उसे स्वयं काटने दौड़ती।

आधुनिक युग में यातायात के साधनों की सुगमता से सारा संसार संकुचित हो गया है। एक देश के निवासी दूसरे देशवासियों के सम्पर्क में आते हैं। उसी प्रकार देश के विभिन्न क्षेत्रों वाले लोग परस्पर मिलते जुलते हैं। तब स्वभावतः एक दूसरे के आचार विचारों, रीति रिवाजों, वेश भूषा, रहन सहन, सभ्यता तथा संस्कृति का आंशिक प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। एक स्थान की कहानी, वार्ता, गीत, कहावतें दूर स्थानों पर स्थानान्तरित होती रहती हैं। जिनका प्रभाव मिशिंग लोक साहित्य एवं संस्कृति पर पूर्ण रूप से देखा जा सकता है।

मिशिंग लोकगीतों का स्वरूप

सामान्य जनता के संवेदनशील एवं भावुक हृदय के स्वाभाविक उद्गार जो संगीत की बलवती धारा के रूप में छन्दोबद्ध होकर प्रवाहित हो उठते हैं, लोकगीत का नाम धारण कर लेते हैं। वस्तुतः ये भाव हृदय के बोझ को हल्का करने के लिए बोलने की अपेक्षा गाकर अभिव्यक्त किये जाते हैं। लय के बिना तो लोकगीत अधूरा ही है। इसमें रस, छन्द, अलंकार के नियमों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। फिर भी इनमें सामान्यतया परिनिष्ठित काव्य से भी अधिक रस छलकता है। इसे तो रस का कभी न छीजने वाला सोता कहा जा सकता है। छन्द के बंधन की ओर लोकगीत रचयिता की उपेक्षा रहती है, पर उसकी कमी की पूर्ति वह संगीत की लय से कर देता है। कहीं न कहीं कुछ अलंकार उसमें आ ही जाते हैं। लोकगीत में वैयक्तिकता का नितांत अभाव रहता है। उसकी तो विशेषता ही यह है कि वह मौलिक परम्परा की धारा में पड़कर व्यष्टि और समष्टि के भेद को नष्ट कर दे और सारा समाज ही उसे अपनी निजी कृति के समान समझने लगे। मौखिक परम्परा मिशिंग "नितम" (लोकगीत) की कसौटी है। मूल रूप में कोई भी गीत के पद को नहीं धारण कर पाता और व्यक्ति विशेष द्वारा रचित कोई गीत जब सामान्य जनमानस को आन्दोलित करके अपने मूल या परिवर्तित रूप में निरन्तर प्रयोग में आता रहता है, तभी "नितम" या लोकगीत कहा जाता है।

लोकगीत काल-प्रवाह में अपने वाह्य आवरण/भाषा को बदलता रहता है। अनुकूल-प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूल परिस्थितियों में आन्तरिक स्वरूप में भी परिवर्तन लाता रहता है, पर उसकी आत्मा के संस्कार में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हो पाता । उसमें एक ओर प्राचीनता झाँकती दिखायी पड़ती है, तो दूसरी ओर नवीनता । उसके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वह न तो पुराना होता है, न नया । वह तो जंगल के उस वन्य वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें तो गहरी धँसी हुई हैं, परन्तु जिसमें निरन्तर नयी शाखायें, नये पत्ते और नये फल निकलते रहते हैं ।

लोकगीतों में जनजीवन के हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, सुख और दुःख सभी की अभिव्यक्ति होती है । इसमें कल्पना भी अपना काम करती है, रसवृत्ति और भावना भी और नृत्य की हिलोर भी, पर ये सब खाद हैं । लोकगीत हृदय के खेत में उगते हैं । सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं और दुःख के गीत तो खौलते हुए लहू से पनपते हैं और आँसुओं के साथी बनते हैं । इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता । प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग । प्रकृति संगीतमय है । ग्रहगण एक नियति कक्ष में फिर कर उसी संगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे हैं । झरनों का अविराम नाद, पत्तों की मर्मर ध्वनि, चंचल जल का कलकल, मेघ का गर्जन, पानी का छमाछम बरसना, आँधी का हाहाकार, कलियों का चटकना, मनुष्य की भिन्न-भिन्न भाषाएँ और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट-पतंग आदि की बोलियाँ यह सब उसी संगीत के मन्द्रतार, स्वर और लय हैं । वज्रपात थाप है और नदियों का प्रवाह मूर्छना । ग्रामगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश हैं ।

लोकगीत परम्पराओं के उस महानद के समान है, जिसे अनेक छोटी-छोटी धाराओं ने मिलकर महासमुद्र बना दिया है । सदियों के घात-प्रतिघातों ने इसमें आश्रय पाया है । मन की विभिन्न स्थितियों में इसमें अपने ताने-बाने बुने हैं । स्त्री-पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है । इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन बहलाये हैं, बैरागियों ने उपदेश का पान कराया है, बिरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े-बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं ।

काव्यत्व की दृष्टि से विचार करने पर यह निश्चित धारणा बनती है कि मिशिंग 'नितम' (लोकगीतों) में पर्याप्त मात्रा में काव्य-तत्त्व उपलब्ध होता है । यदि प्रबल मनोवेगों के सहज उद्रेक को काव्य की कसौटी माना जाय तो लोकगीत ही सच्चे काव्य हैं और यदि "रसात्मक वाक्य" को काव्य कहा जाय तो भी 'नितम' (लोकगीत) को निःसंकोच काव्य कोटि में रखा जा सकता है; क्योंकि उनमें रस की अजस्र धारा प्रवाहित होती है । इतना ही नहीं यदि कला का उद्देश्य रूप-विधान द्वारा आनन्द प्रदान करना है तो 'नितम' में जन-मानस श्रेष्ठ कहे जाने वाले साहित्य की अपेक्षा अधिक आनन्द प्राप्त करता है और यदि कला का सम्बन्ध जीवन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तब तो प्रबल जीवन शक्तियों से ओत-प्रोत लोकगीत अभिजात कविता को बहुत पीछे छोड़ देती है।

मानव-हृदय का भाव-विलास अपनी उत्कट स्थिति में लयात्मक आरोहावरोहों में जब भाषा बद्ध होकर प्रवाहित होने लगा तो विद्वानों ने उसे गीत कहा और इसी गीत परम्परा की एक धारा जब अपनी देशज बोलियों (घरेलू भाषा) में लोकवाणी को प्रवाहित करने लगी तो उसे लोकगीत के नाम से ज्ञापित किया गया। लोकगीतों का सृजन सामूहिक चेतना द्वारा स्वाभाविक रीति से होता है, वह किसी निश्चित एवं नियन्त्रित संगीतात्मक अथवा साहित्यिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है। जीवन की सहज क्रियाओं और व्यापारों में लीन जन-समुदाय के निश्छल, सरल और स्वाभाविक भाव, गीतों के ओल बनकर उनके कंठ-स्वर में तैरने लगते हैं। खेत, नदी, पहाड़, मैदान, घर सभी इनके निर्माण-स्थल हैं। हल चलाते हुए, पशु चराते हुए, प्रत्येक सामान्य कार्य-व्यापार के समय इन गीतों का उदय हुआ है।

"नितम" (लोकगीत) का निर्माण अपने आप विशाल जन-समूह के द्वारा होता है, किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा नहीं। लोकगीत स्वतः सम्भूत हैं। लोकगीतों का अस्तित्व समय के आधार पर टिका रहता है। अपने जन्म के अनन्तर ये गीत कुछ समय तक मधुर कंठों पर विराजमान रहते हैं, फिर इनके मौलिक रूप में परिवर्तन आरम्भ हो जाता है और एक दिन उनका पूर्व अस्तित्व तिरोहित हो जाता है। पुराने गीत का तिरोभाव नये गीत के जन्म की भूमिका है। प्राचीनता के ध्वंस में नवीनता का उन्मेष ले कर लोकगीतों की परम्परा सतत प्रवाहमयी रहती है।

लोकगीतों का संसार सत्य का संसार है। मिशिंग लोकगायक के अन्तर्भावों का वास्तविक चित्रण वहां रहता है। जटिलता, दुरूहता और गोपनीयता का लोकगीतों में नितांत अभाव रहता है। हृदय में उत्पन्न होने वाले राग-विराग के सीधे-सच्चे भावों का सीधा और निश्चल प्रकटीकरण लोकगीतों की सबसे कड़ी विशेषता है। कृत्रिम साज-सज्जा से परे स्वाभाविक उक्तियों का सौंदर्य वहां लक्षित होता है। लोकगीत की उस विशाल और व्यापक सौंदर्य-राशि के समक्ष संसार की सम्पूर्ण कृत्रिमता तुच्छ है। नगर के आडम्बरों से दूर, वैभव की चमक-दमक से परे, गाँवों के शान्त सरल वातावरण में, हरे-हरे लहलहाते खेतों में, घनी अमराइयों की छाया में, सरिता तट की रेतीली भूमि में मेघाच्छादित नभमण्डल के नीचे इन गीतों की रचना होती है। प्राकृतिक तत्वों के सहचर्य में निर्मित होने के कारण प्रकृति की सम्पूर्ण मधुरता का समावेश इनमें होता है। झरने की स्वच्छता, फूलों का हास, वृक्षों की उदारता, नदी का प्रवाह, वर्षा की सजलता, बसन्त का सौरभ, सूर्य का प्रकाश और कोयल की मिठास में लोकगीतों का अस्तित्व डूबा रहता है। उनमें जीवन का सहज एवं नैसर्गिक आनन्द अन्तर्हित है।

मिशिंग जनजातीय "नितम" (लोकगीतों) का जीवन अमर और अनीश्वर है। समय के घात-प्रतिघातों में उनका बाह्य रूप बदलता रहता है। गीतों का अन्त होता है। कुछ समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक प्रचलित रहने के पश्चात उनका रूप परिवर्तित होने लगता है और एक दिन उसके भग्नावशेष ही रह जाते हैं, किन्तु गीतों की परम्परा सर्वथा नष्ट नहीं होती। पुराने गीतों के स्थान पर नये गीत जन्म लेते हैं और गीतों का जीवन चिरन्तन बनकर सतत रूप से प्रवाहित होता रहता है। लोकगीत न पुराना होता है, न नया।

लोकगीतों में लौकिक सभ्यता, लौकिक आचार, लौकिक व्यवहार, लौकिक रीति रिवाज एवं परम्पराओं का प्रतिबिम्ब झलकता है। इन गीतों का नाश युग संस्कृति का नाश होगा। युग-युग से चली आ रही मानवीय मूल भावनाओं का विशेष भण्डार इनमें सुरक्षित है। जीवन का एक-एक पल भाव रूप धारण कर लोकगीतों में समाया हुआ है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक स्थिति अपने उल्लास विषादात्मक अस्तित्व के साथ लोकगीतों में सन्निहित रहती है। जन-जीवन की निर्मल और सरल सौन्दर्यानुभूतियों, गीत के स्वरों में बंधकर अपनी प्रभावशीलता का युग-व्यापी प्रसार करती है।

"लोक" शब्द मानव की उस मौलिक स्थिति का परिचायक है, जिसमें उसका असली रूप सन्निहित रहता है। लोक साहित्य का रचयिता सामाजिक चेतना सम्पन्न प्राणी होता है, जो अपनी वाणी द्वारा समाज में व्याप्त समस्त रागारागमयी चेष्टाओं, क्रियाओं एवं भावनाओं को मुखरित करता है। लोक साहित्य में लोक-मानस की भावानुभूतियों की अभिव्यंजना रहती है। जब हम लोक-मानस शब्द का प्रयोग करते हैं, तब उससे हमारा आशय वैयक्तिक चेतना के स्थान पर सामूहिक चेतना का होता है। उसमें सम्पूर्ण लोक के मानव-प्राणियों के सामान्य-मानव व्यापार संयुक्त होते हैं।

लोक-साहित्य के निर्माण में समाज एक विशाल पृष्ठभूमि का कार्य करता हैं। समाज के प्रांगण में प्रफुल्लित-विकसित सम्पूर्ण मानवी भावनायें, विश्वास और मान्यतायें, परम्पराएँ और रीतियाँ लोक साहित्य की प्रेरक परिस्थितियाँ हैं। मनुष्य अपने जन्म काल से ही सामाजिकता के सूत्र में बंध जाता है। समाज के नियमानुशासन में बँधकर वह परम्परागत विश्वास एवं मान्यताओं के अनुकूल आचरण करता है। लोक साहित्यकार के रूप में भी वह अपने समाज में व्याप्त विभिन्न तत्वों से अनुप्राणित होता है। यही कारण है कि लोकगीतों में विभिन्न सामाजिक प्रथाओं, रीतियों एवं परम्पराओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

मिशिंग समाज में अनेक पर्व-त्यौहारों एवं ऋतुओं के उपलक्ष्य में आनन्द एवं हर्ष से मुक्त उत्सव मनाने का प्रचलन है। इस प्रकार के आनन्दोत्सव भी मानव हृदय की कोमल भावनाओं को उत्तेजित करके नवीन गीतों के सृजन में सहायक होते हैं। मिशिगों के "बहग-बिहू" और "आलि आइ लिगाङ्" उत्सव सर्वाधिक जनप्रिय त्यौहार होते हैं। लोक-जीवन में इन त्यौहारों का व्यापक प्रभाव है। इसीलिये इन उत्सव सम्बन्धी लोकगीतों में जो हर्षातिरेक, विह्वलता, उमंग एवं उत्साह प्राप्त होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

समाज में उत्पन्न प्रत्येक घटना की लहर लोक गायक के हृदय को आन्दोलित करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त विभिन्न रीतियों एवं प्रथाओं का वर्णन भी मिशिंग "नितम" (लोकनीती) में प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न व्यवसायों एवं उद्योगों का उल्लेख उपलब्ध होता है। जातीय गीतों में विभिन्न जातियों के क्रिया-व्यापारों का निरूपण रहता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मिशिंग समाज का सम्पूर्ण स्वरूप "नितम" में स्थान पाता है।

मिशिंग 'नितम' (लोकगीतों) में लोक जीवन में व्याप्त समस्त धार्मिक नियमाचार प्रतिबिम्बित होते हैं। लोक जीवन में धर्म का कोई निर्धारित स्वरूप नहीं होता, जो सुगम है, उसे लोक मामस ग्रहण कर लेता है—जटिलता अथवा दार्शनिकता सामान्य जनों के लिए अनुकूल नहीं पड़ती। इसीलिए ईश्वर के भाव रूप में ही लोक मानस की आस्था होती है, जिसे हम सगुणोपासना कह सकते हैं। इसमें निर्गुणोपासना के दर्शन के लिए अवकाश नहीं है। ईश्वर ही क्यों, कल्याण की योजना करने वाला प्रत्येक उपकरण लोगों के विश्वास और पूजा का आधार बन जाता है। ईश्वर के सगुण रूप की उपासना वहाँ होती है, जहां निर्गुण रूप की ज्ञानमयी साधना के लिए लोक मानस की सीधी-सादी, अबोध, भाव प्रवण वृत्ति अनुकूल सिद्ध नहीं होती। सगुण ब्रह्म के समस्त अवतार रूपों की उपासना का प्रचलन लोकजीवन में प्राप्त होता है। एक व्यक्ति किसी एक विशिष्ट देव स्वरूप का उपासक नही होता, वरन् समस्त देवी-देवताओं के प्रति उसके हृदय में समान आस्था होगी। यही धार्मिक आस्था बहुधा धार्मिक अंध विश्वास बन कर लोक समुदाय में व्याप्त हो जाती है। देवी-देवताओं की उपासना के अतिरिक्त लोक समुदाय में वृक्ष, पशु, पक्षी, पर्वत, नदी, वन, सूर्य, चन्द्र, तारे इत्यादि की पूजा के दृष्टान्त भी मिलते हैं। इस प्रकार 'नितम' (लोकगीतों) में धार्मिक भावनाओं के प्रायः सभी आलम्बन ध्वनित होते हैं।

प्रत्येक राज्य की जनता अपने यहां की राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होती है। राज्य का प्रत्येक कार्य जनता के हितों पर प्रभाव डालता है। यही कारण है कि प्रत्येक काल की जनता ने अपनी राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति भावोद्गार प्रकट किये हैं। समय-समय पर राजनीतिक परिवर्तनों के कारण सभी देशों में व्यापक आन्दोलनों की लहर उठती रही। और वहां की जनता को प्रभावित करती रही। जन जन के हृदय और मस्तिष्क पर पड़े हुए प्रभाव उसकी वाणी में मुखरित होकर आते हैं। 'नितम' (लोकगीतों) के सृजन में भी इन राजनीतिक प्रभावों का पर्याप्त सहयोग रहा। अनेक 'ऐनितमों' में उसकी समयुगीन राजनीतिक परिस्थितियों की झलक प्राप्त होती है। ऐसे 'ऐनितमों' से उनके रचनाकाल का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। भारतीय जन सामान्य में प्रचलित ऐसे अनेक गीत प्राप्त होते हैं, जिनमें उनकी रचना कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन है। इसके उदाहरण मिशिंग 'ऐनितम' (विरह गीत/प्रेम गीत) में मिलते हैं।

मिशिंग "नितम" (लोकगीतों) की रचना सामूहिक रूप से होती है, किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा नहीं। इसलिए उसमें वैयक्तिक भावना का अभाव रहता है। 'नितमों' के रचयिताओं में आत्म प्रचार की प्रवृत्ति नहीं है। वे अपने गीतों में अपने निजत्व को कहीं भी आरोपित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करते। किसी गीत के रचयिता और रचना काल को जानना नितान्त दुर्लभ है। मिशिंग 'नितम' जातीय सृष्टि है, जिसमें एक व्यक्ति का नहीं अनेक व्यक्तियों का सहयोग रहता है। असंख्य स्त्री-पुरुषों के समवेत प्रयत्नों में गीतों का जीवन प्राण पाता रहता है। जिनकी वाणी में मस्तिष्क नहीं हृदय है, जिनके विनय के परदे में छल नहीं पश्चात्ताप है, जिनकी मैत्री के फूल में स्वार्थ का कीट नहीं, प्रेम का परिमल है, जिनके मानस-जगत में आनन्द है, सुख है, शान्ति है, प्रेम है, करुणा है, त्याग है; क्षमा है, विश्वास है, उन्हीं ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री-पुरुषों के बीच में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्रामीण मिशिंग जनजातियों के गीत हैं। वेदों की तरह वे भी अपुरुषेय हैं। मिशिंग 'नितमों' का अस्तित्व असंख्य कंठों पर मौखिक परम्परा के रूप में विद्यमान है। आदि काल से वेदों के अध्ययन की परम्परा भी मौखिक ही थी। शिष्य 'श्रुति' रूप में गुरु से ज्ञान पाता था। कालान्तर में 'श्रुति' को लिपि का आधार मिल गया। मिशिंग 'नितम' (लोकगीत) शत शत कंठों में विचरण करते हुए परम्परा के अमर प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

लय मिशिंग 'नितमों' की आत्मा है। ग्रामीण जनता के हृदय से निःसृत सीधे-सादे शब्दों का संस्पर्श जब इस लय तत्व से होता है, तब वे अद्वितीय सौन्दर्य से संयुक्त होकर असीम आनन्द की सृष्टि करते हैं। शुष्क और निरर्थक शब्द भी मधुर कंठ-स्वर की लहरों पर तैरता हुआ विलक्षण सरसता को प्राप्त करता है। लय दो प्रकार की होती है—१. द्रुत एवं २. विलम्बित। शीघ्रतापूर्वक गाये जाने वाले गीत द्रुत-लय से प्रयुक्त होते हैं और मन्द गति से गाये जाने वाले गीत विलम्बित लय पर आधारित होते हैं। ग्रामीण जनजातीय स्त्रियों तथा पुरुषों में गीतों के लय की अद्भुत क्षमता होती है।

मिशिंग 'नितम' (लोकगीतों) के गायन में किसी पंक्ति विशेष की पुनरावृत्ति एक महत्वपूर्ण क्रिया है, साधारणतः गीत की प्रथम या द्वितीय पंक्ति की आवृत्ति की जाती है। प्रत्येक गीत में एक टेक पद होता है। गायक उन टेक-पदों की पुनरावृत्ति द्वारा श्रोताओं के अन्तःकरण में विशेष प्रभाव की उत्पत्ति कर देते हैं। पंक्तियों की पुनरावृत्ति से गीत में संगीत का सौन्दर्य बढ़ जाता है।

मिशिगों के 'नितमों' में लय तथा तुक की व्यथस्था के लिए लोकगायक अनेक निरर्थक शब्दों का समावेश कर देते हैं। कविता की तुकबन्दी की भांति "ऐनितम" (विरह गीतों) की रचना नहीं होती। वहां गीत की प्रत्येक पंक्ति किसी प्रकार की नियमबद्धता से स्वतन्त्र रहती है। ऐसी स्थिति में संगीत की रक्षा के लिए निरर्थक शब्दों द्वारा पंक्तियों में सामंजस्य उत्पन्न किया जाता है।

मिशिगों के 'ऐनितम' में मनोभावों की अभिव्यक्ति कथोपकथन के रूप में भी होती है। गीत की प्रथम पंक्ति प्रश्न/उपमा और द्वितीय पंक्ति में उत्तर/विषय की योजना रहती है। इसी प्रकार की प्रणाली से गीत में जिज्ञासोत्पादक उत्कंठा का आविर्भाव होता है, जो श्रोता के लिए आनन्दकारी सिद्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिशिंग 'नितमों' में वस्तुओं, सम्बन्धियों, आभूषणों आदि की दीर्घ परिगणना प्राप्त होती है। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के समावेश के कारण किसी का क्षेत्रीय परिचय प्राप्त करना सुगम हो जाता है। जिस क्षेत्र का गीत होगा, वहाँ की विख्यात वस्तुओं का अथवा बहु-प्रचलित सामग्रियों का समावेश उसमें होगा।

मिशिंग लोक साहित्य की विधाएं एवं वर्गीकरण

लोक साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हंसती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है, प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं। प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर भी मिशिंगों में गीत गाने की प्रथा प्रचलित है। विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है; उसके प्रभाव से जन साधारण के हृदय में जो उल्लास या आनन्द की अनुभूति होती है, वह मिशिंग 'नितम' (लोक गीतों) के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, कटाई आदि के समय भी गीत गाए जाते हैं। जनता अपने पूर्व पुरुषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा-गाकर आनन्द प्राप्त करती है।

गांव के बूढ़े जाड़े के दिनों में 'मेराम' के पास बैठकर 'लेके--दयिङ्' (पौराणिक कथाएँ) सुनाया करते हैं। बूढ़ी दादियां तथा माताएँ बच्चों को सुलाने के लिए लोरियां तथा छोटी-छोटी कथाओं का प्रयोग करती हैं। जन मन के अनुरंजन के लिए समय-समय पर गांवों में "समान" (नृत्य-गीत) ग्रामीणजनों के मनोविनोद के अन्यतम साधन हैं। गांव के लोग अपने दैनिक व्यवहार तथा वार्तालाप में सैकड़ों 'आगम-लेतिक' (मुहावरों और कहावतों) का प्रयोग किया करते हैं। ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, कहावतों, पहेलियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन सूक्तियों में चिरसंचित अनुभूत-ज्ञान राशि भरी पड़ी है। छोटे--छोटे बच्चे खेलते समय अनेक प्रकार के हास्यजनक गीत गाते हैं। ये सभी गीत तथा कथाएँ लोक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े सभी लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है।

सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर मिशिंग जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिये रचा गया हो।

मिशिंग 'नितम'/लोक साहित्य को जन-जीवन का दर्पण कहा जाय तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्गार है। सर्वसाधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं, उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। मिशिंग समाज विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं के उत्सवों में गीत गा-गाकर अपने मनोरंजन करता है। 'लेके-दयिङ्' (पौराणिक कथाएं) को सुनना उनके मनबहलाव का अनन्य साधन है। समय-समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों और भाव भरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण जनजाति अपने हृदयगत विचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ सूक्तियों में–जिनका निर्माण लोगों के अनुभव पर आश्रित है—ऐसी अनुभूतियां पायी जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती है। मिशिंग लोक साहित्य के अन्तर्गत "नितम" (लोक गीतों) का प्रमुख स्थान है। जन जीवन में अपनी प्रचुरता तथा व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है।

मिशिंग जनजातीय 'नितम' (लोक गीत) का रूपात्मक श्रेणी विभाजन एक कठिन समस्या है। किसी एक सामान्य दृष्टि से इस समस्या पर विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि "नितम" का जन्म किसी एक अभिप्राय की प्रेरणा से नहीं हुआ। जीवन की समस्त सूक्ष्म एवं जटिल क्रिया-प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति 'नितम' में हुई है, अतः उनको श्रेणीबद्ध करने की चेष्टा के साथ जीवन की समस्त भाव प्रेरणाओं एवं क्रिया-प्रतिक्रियाओं के साथ उनका सामंजस्य समझना आवश्यक होगा।

मिशिंगों में प्रचलित लोक साहित्य को मुख्य रूप से ग्यारह भागों में विभाजित किया जा सकता है—ऐनितम, आबाङ्, काबान, बिरिग्, लुप, मिदाङ्, भमान, लेके-दयिङ्, कीर्तन और आगम-लैतिक। मिशिंग भाषा में लोक गीत या लोक साहित्य को "नितम" कहा जाता है। आगे उक्त सभी श्रेणियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जायगा।

ऐनीतम

मिशिंग लोक-साहित्य में प्राप्त विभिन्न गीत साहित्यों में "ऐनितम" (विरह/प्रेम गीत) ही प्रमुख है। जनप्रियता की दृष्टि से अन्य सभी लोक गीतों में इसकी लोकप्रियता सर्वप्रमुख है। इन गीतों को मिशिंग समाज के बच्चे, युवक-युवतियाँ, प्रौढ़-वृद्ध सभी पसन्द करते हैं। 'ऐनितम' के सुर, भाव, सभी के अन्तर में आनन्द भर देता है। 'ऐनितम' पसन्द न करने वाले लोग मिशिंग समाज में नहीं हैं। 'ऐनितम' सुनकर सभी लोग आनन्द-विभोर हो जाते हैं।

'ऐनितम' दो पद के संयोग से बना है। मिशिंग में 'ऐ' शब्द सम्बोधन में स्नेह, प्यार, प्रेमी/प्रेमिका आदि होता है। वयो-जेष्ठ लोग कनिष्ठ को भी 'ऐ'/'ऐया' कहकर सम्बोधित करते हैं। 'ऐनितम' में साधारणतः 'ऐ' शब्द प्रेमी/प्रमिका के लिए ही व्यवहृत होता है। 'नितम्' शब्द में 'नि' धातु है। 'तम' प्रत्यय है। 'नि' लोरी, प्यार के गीत। अतः 'ऐनितम' का अर्थ है, 'प्रेमी को उद्देश्य कर गाये जाने वाले गीत; प्रेम-गीत, विरह-गीत अथवा विरह व्याकुल हृदय की पुकार (ऐ-विरह, प्रेम; नितम-गीत, पुकार)। उत्तर पूर्वी भारत की सभी जन-जातियों में इस प्रकार के प्रेम-गीत मिलते हैं। असमिया बिहुगीत/वनघोषा; नेपाली में 'झाउरे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत' आदि के भावाभिव्यक्ति के साथ मिशिंग 'ऐनितम' समतुल्य है। 'ऐनितम' को 'आवे' भी कहा जाता है। 'आ' संज्ञावाचक उपसर्ग है और 'वे' ध्वनि, शब्द, सुर। 'आवे' का अर्थ है 'सुर से गाये जाने वाले गीत'। 'आवे' 'ऐनितम' का पर्यायवाची शब्द है। पौराणिक प्रेम-गीत को 'दबङ्' या 'दब-नितम' भी कहा जाता है।

"ऐनितम" के कोई निर्दिष्ट रचनाकार नहीं होते, अथवा किसी गायक/गायिका के मुंह में ये आबद्ध नहीं रहते। जो "ऐनितम" गाता है, उसके अन्तर के भाव भाषा के रूप में स्थान प्राप्त करता है। इसीलिए "ऐनितम" के गायक और श्रोता के बीच में भावों की समरूपता स्थापित होती है। 'ऐनितम' में 'तुम', 'मैं' इत्यादि सर्वनामों का प्रयोग होने पर भी वहां किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख नहीं रहता है।

'ऐनितम' का मूल विषय है प्रेम/विरह। 'ऐनितम' प्रेम से सम्बन्धित सभी रसों से परिपूर्ण है। आशा, निराशा, हताश, मिलन, विच्छेद, सुख-दुख, हँसी, मजाक, क्रन्दन, विद्रुप, निन्दा, प्रशंसा, आदि सभी रसों से सम्बन्धित विषयों की 'ऐनितम' में अभिव्यक्ति देखी जाती है। इतना ही नहीं समसामयिक इतिहास, राजनीति, सामाजिक आचार-व्यवहार, युद्ध-विग्रह आदि विषयों की भी 'ऐनितम' में झलक मिलती है। 'ऐनितम' में प्रयुक्त—कम्पनी, जहाज, हवाई-जहाज, चीन युद्ध, भारत पाकिस्तान युद्ध; पिअली फुकन, महात्मा गान्धी, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, इन्दिरा गान्धी; पिस्तोल, गोली, राइफल, मोटर, रेल गाड़ी; एम० ए०, बी० ए०, सागर, नदी-नाले, झरने, ब्रह्मपुत्र नदी, पहाड़, वन-अरण्य, घाटी, पेड़-पौधे घास-फूस, और जाने क्या क्या शब्दों का प्रयोग, उपमान, उपमा प्रयुक्त होते हैं। नाहेन्द्र पादुन का कहना है कि 'ऐनितम' में जिस विषय वस्तु का वर्णन नहीं हुआ है, वह मिशिंग समाज में ही नहीं है।'[1]

'ऐनितम' दो पंक्ति की होती है। पहली पंक्ति में उपमा/उपमान होता है और दूसरी पंक्ति में गायक/गायिका अपनी प्रेम व्याकुलता को अभिव्यक्त करते हैं। इन गीतों में मिशिंग लोगों के जातीय जीवन का दर्पण है। इनकी लोकप्रियता मिशिंग समाज में ही नहीं, बल्कि ब्रह्मपुत्र उपत्यका की जन संस्कृति में भी है। मिशिंग युवक-युवतियाँ आनन्द उत्सव के समय इन गीतों को गा-गा कर नाचते हैं। 'ऐनितम' की भावधारा का ध्येय युवक-युवतियों को एक दूसरे के प्रति आकर्षित करना है। ये चुम्बक जैसी होती हैं और विनोदपूर्ण होती हैं। पर मौके पर युवक-युवतियाँ एकत्र होकर इन गीतों को गाते हैं। विशेषकर 'वआग-बिउ' (वैशाखी उत्सव) और "आलि आई लिगाङ्" (फाल्गुली बीजारोपण उत्सव) में इन गीतों को गा-गाकर नाचते और आनन्द मनाते हैं। इन गीतों की उपमाएं हृदय-स्पर्शी, समसामायिक होती हैं। 'ऐनितम' में सम्पूर्ण मिशिंग समाज की संस्कृति छिपी हुई है। इन गीतों की रचना युवक-युवतियां मौलिक रूप से करते हैं। प्रायः गीत तत्काल ही उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में रचना करके गाये जाते हैं। आकाशवाणी डिब्रूगढ़ से लोकगीत तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम में प्रायः मिशिंग ऐनितम प्रचारित होते रहते हैं। कुमारी तारावती मिली के कठं-स्वर की मिशिंग समाज में चर्चा रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी तारावती की मिशिंग 'ऐनितम' गायिका के रूप में लता मंगेशकर से तुलना करते हुए भी सुना जाता है।[1]

इन ऐनितमों में युवक-युवतियों के प्रेम-विरह व्याकुलता की अभिव्यक्ति होने पर इन में आशावादी जीवन-दर्शन की झलक भी दिखलाई पड़ती है। इसके मिशिंगों ने ऐनितम के माध्यम से गीतिमय तथा छन्दमय सुरतरंगों की सृष्टि की, मिशिंग लोक साहित्य के पौराणिक 'आबाङ्' और 'काबान', अमित्राक्षर छन्द में है; ताल या लय की आकर्षणीय शैली नहीं है किन्तु 'ऐनितम' मूलतः मित्राक्षर छन्द में है। ऐनितम की भाषा सरल और बोधगम्य होती है। हर गीत में सुन्दर तथा यथोचित उपमा रहती है। प्रत्येक ऐनितम में मर्मस्पर्शी विरह-व्याकुलता का भाव अभिव्यक्त होता है। ये गीत नव यौवना की पुकार हैं। प्रेम में पागल युवक युवतियों के हृदय का क्रन्दन, विलाप हैं—'ऐनितम'। प्रायः गीतों में उपमाएं समसामयिक हैं। जैसे :

"पाकिस्ताने सिमात्दुङ् कास्मिर दक लेगाङे,
ङऐया सिमात्दुङ् आमिक अमे लेगाङे !

(पाकिस्तान पागल है, भारत के सुन्दर प्रान्त काश्मीर के लिए और मैं पागल हूं, दूसरे की पुत्री के लिए) !
ऐनितम की रचना कौन करता है कहा नहीं जा सकता। ऐसे असंख्य गीत मिशिंग जन समाज में बिखरे हुए हैं। इन गीतों का मूल्यांकन नहीं हो पाया है। अगले प्रबन्ध में कुछ 'ऐनितम' का मूल सहित हिन्दी भावार्थ प्रस्तुत किया जाएगा।

इस प्रकार मिशिंग जनजातीय सोक साहित्य के अनुशीलन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसमें 'नितम' (लोकगीत) सर्वाधिक समृद्ध है। केवल 'ऐनितम' से ही सम्बन्ध रखने वाले गीतों का बहुत बड़ा भण्डार है और इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के 'नितम'/लोकगीत बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। लोक साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा 'नितम' की इस समृद्धि का सबसे बड़ा कारण व्यावहारिक जीवन में इनकी व्यापकता है। गीतों की इस व्यापकता का कारण उनकी संगीतात्मकता है।

मिशिंगों का लोक-साहित्य गहन गंभीर सागर की भाँति मौखिक रूप में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है, इसका संकलन नहीं हो पाया है। दिनों दिन यह 'ऐनितम' साहित्य बढ़ता ही जाता है। नये युग की नई परिस्थितियों और प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर नवीन विषयों और विचारों का परिवर्द्धन एवं संवर्द्धन हो रहा है। मिशिंग लोकगीत विभिन्न ऋतुओं एवं त्यौहारों आदि के अवसरों पर 'यामे-मिम्बिर' (युवक-युवतियां) सामूहिक रूप में गाते हैं। ये गीत विभिन्न अवसरों पर विभिन्न स्वर लहरियों में पाये जाते हैं। कुछ गीत व्यक्तिपरक होते हैं, जिन्हें एक व्यक्ति भी गा सकता है और कुछ गोष्ठी में सम्मिलित स्वरों में गूंज उठते हैं। कुछ

१ सम्पादकीय भूमिका 'मिशिंग अइ निःतम', शिवसागर मिशिंग बांके आगम् केबाङ्, १९८०, पृ० ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत बिना वाद्य के भी गाये जा सकते हैं और किन्हीं में ढोलक, बांसुरी, पेम्पा, झांझ आदि वाद्य प्रयुक्त होते हैं।

मिशिंग 'ऐनतम' ने कला का कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया है। लोक गायकों ने तो स्वान्तःसुखाय ही रचना की है। यदि इन गीतों में सरसता या सुन्दरता पायी जाती है तो वह अनायास ही सुलभ हुई है। इन कवियों को न तो शुद्ध साहित्यिक भाषा का ज्ञान है, और न कवि कर्म के निश्चित सिद्धान्तों का ध्यान है। इन गीतों में सहज सौन्दर्य लक्षित होता है, जो बरबस मानव मन को आकृष्ट कर लेता है।

मिशिंगों के 'ऐनितमों' में अनेक रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है, उसका स्रोत कदापि नहीं सूख सकता है। यों तो इन गीतों में सभी रसों की उपलब्धि होती है, परन्तु निम्नांवित चार रसों की ही प्रधानता पायी जाती है—शृंगार रस, करुण रस, हास्य रस और शान्त रस।

अतः, मिशिंग ऐनितम (विरह गीत) लोक साहित्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। लोक के पास जीवन को अधिकाधिक प्रेरणा प्रदान करने वाला साधन ऐनितम ही है। सभी अवसरों पर गाई जाने वाली तथा सभी भावों से युक्त पद्यमयी अभिव्यक्ति इसी के अन्तर्गत आती है। ये 'ऐनितम' यौवन की उद्दाम भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। संयोग-वियोग और सरस झाँकियां इस वर्ग के लिए अधिक प्रिय होती हैं। 'ऐनितम' युवक-युवतियों के लिए कंठहार होते हैं। नव-युवकों और युवतियों के कंठ में जवानी की उमंग बढ़ाने वाले प्रेम और शृंगार रस के गीत हैं 'ऐनितम'।

मिशिंग लोक गीतों में संगीत के पुट के साथ वाद्य एवं नृत्य का संयोग अवश्य होता है। यदि इन तीनों विधाओं का संयोग हो तो फिर आनन्द का पारावार नहीं। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग तथा अचेतन पदार्थों-पेड़-पौधों पर संगीत का प्रभाव स्पष्ट दिखाया गया है। 'यामे-मिम्बिर' (युवक-युवतियाँ) उत्सवों अथवा मेलों में गाते समय प्रेम विभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। युवक-युवतियां मिलकर त्यौहारों के अवसरों पर सामूहिक नृत्य का आयोजन करते हैं। युवक 'दुम्दुम्' (ढोल), पेम्पा, गुँगाङ्, झांझ, मुरुलि आदि वाद्य बजाते हैं और युवतियां 'ऐनितम' गा-गाकर नृत्य करती हैं। इस अवसर पर इनके बीच गाने बजाने और नाचने की प्रतियोगिता सी होती है। कोई भी पराजय स्वीकार करने को तैयार नहीं होता है। इन प्रतियोगियों की काव्य प्रतिभा देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। इन गीतों में युवक-युवतियों की हास्य व्यंग्यात्मक उक्तियां बड़ी ही मार्मिक हैं, जो कुशल कवि की कृतियों से टक्कर लेती हैं। इन गीतों में स्त्री के नख-शिख एवं सौन्दर्य का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। संयोग सुख और वियोग दुख के अनेक प्रसंग स्थान-स्थान पर देखे जाते हैं।

मिशिंगों के 'ऐनितम' या प्रेम गीतों में सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की झांकी देखने को मिलती है। कहीं नारी को आदर्श चरित्र-शीला, पतिपरायणा रूप में चित्रित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, तो कहीं वह स्वकीया नायिका बनकर प्रवासी प्रेमी को अपरिहार्य बहाने से बुलाकर ही दम लेती है। 'ऐनितम' में परकीया नायिका के उदाहरण भी मिलते हैं। वह सुन्दर युवक के स्वरूप और बाह्य चमक-दमक देखकर मुग्ध हो जाती है। जब युवक की सही स्थिति का पता लगता है, तब यह पश्चात्तापवश जीवन का अन्त करने को उद्यत होती है। इन गीतों में जहां स्त्री पुरुष के परस्पर आकर्षण की भावना का चित्र मिलता है, वहां नारी के भावावेशमयी अविवेकपूर्ण निर्णय तथा पुरुष की स्वार्थी वृत्ति का पता चलता है।

आबाङ्

मिशिगों के परम्परागत 'मिबु' (पुरोहित) द्वारा गायी जाने वाली पौराणिक गाथाओं को 'आबाङ्' कहा जाता है। 'आबाङ्' गाथा के अर्थ को सर्वसाधारण लोग नहीं समझ सकते हैं। जो व्यक्ति 'मिबु' के साथ सम्पर्क रखता है, वही 'आबाङ्' के मर्म को समझ सकता है। 'मिबु' पृथ्वी की आदि-सृष्टि से आरंभ कर पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, पहाड़-पर्वत, कीट-पतंग, मनुष्य तथा जीव-जन्तुओं की जन्म कथा 'आबाङ्' गाथा के द्वारा कहता है। सृष्टि का आरंभ, उसका विकास, विभिन्न गोत्र, वंश, कुल, जाति समुदायों के परम्परागत आख्यान कहता है। 'आबाङ्' को गीति आख्यान भी कहा जा सकता है। इन 'आबाङ्' गाथाओं पर मिशिगों का अटूट विश्वास है। 'आबाङ्' गाने वाला 'मिबु' दैविक-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति माना जाता है। 'आबाङ्' में मिशिग समाज का दार्शनिक तत्व, जन्म-जन्मान्तर के रहस्यपूर्ण और काल्पनिक विचार धाराएं, पूजा-अर्चना विधियों का वर्णन मिलता है। 'आबाङ्' को मिशिगों का स्मृतिशास्त्र भी माना जा सकता है।

काबान

'काबान' का अर्थ है विलाप। दुःख-दर्द, हर्ष-विषाद आदि हृदय से प्रस्फुटित होकर निकलते हैं। ऐसे वेदना-विलाप से भर-पूर गीतों को 'काबान' कहा जाता है। ये गीत व्यक्तिगत वेदना के उद्गार होने पर भी इसमें समाज की प्रतिछवि झलकती है। 'काबान' गीत में 'दयिङ् काबान' (कहानी गीत) भी होती है। 'दयिङ् काबान' में किसी व्यक्ति की करुण गाथाएं होती हैं। इन्हें सुनकर लोग आँसू बहाते हैं। 'काबान' गीतों की भाषा प्रांजल और सुर हृदय-विदारक होती है। इन गीतों में विनोद-पिपली, गेलाश्वर, देउबर-देन्ताली के गीत प्रमुख हैं।

बिरिग

'बिरिग' गीतों को ऋतु-उत्सव गीत माना जा सकता है। जो गीत किसी वार्षिक उत्सव अथवा पूजा के अवसर पर गाये जाते हैं, उन्हें 'बिरिग-नितम' कहते हैं। 'आलि आई लिगाङ्' कहते हैं। 'आलि आई लिगाङ्' तथा 'पराग' उत्सवों में विभिन्न प्रकार के गीत गाये जाते हैं। जनाई इलाके के मिशिग लोग 'ल-लले…' नाम के गीत 'आलि आई लिगाङ्' में गाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लिगाङ्' उत्सव के अलावा ये गीत अन्य उत्सवों में नहीं गाते हैं। 'पराग' के अवसर पर 'भिक्षु' (पुरोहित) विशेष प्रकार के गीत गाता है, ऐसे गीत अन्य अवसर पर नहीं गाये जाते हैं। 'बहाग-बिहु' के अवसर पर कुछ गीत गाये जाते हैं, वे भी इसी श्रेणी में आते हैं, इन्हें भी अन्य अवसर पर गाना निषिद्ध है। विशेष उत्सव-पर्व के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'बिरिग-नितम' (ऋतु उत्सव गीत) कहा जाता है। इन गीतों में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन, उत्सव का तात्पर्य तथा 'यामे-मिम्बिर' (युवक-युवतियों) के बीच आनन्द विनोद तथा प्रेमालाप का वर्णन रहता है।

लुप

'लुप-नितम' कथोपकथन मूलक होते हैं। एक गीत को दो व्यक्ति गाते हैं। गीत के मध्य में कथा चलती है। 'सिवे-दंकुङ्' गीत इसी श्रेणी में आते हैं। इस गीत में अगम्यपथ सम्बन्धी वर्णन है। 'लेरेलि' और 'दादाम' गीत समूह भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। 'लुप-नितम' को फिर दो भागों में बाँटा जा सकता है—युवक-युवतियों के प्रेममूलक गीत 'मिम्बिर-यामे नितम' और अन्यान्य साधारण विषयवस्तु से सम्बन्धित गीतों को 'दयिद-म' कहा जाता है। ये गीत प्रायः प्रेम मूलक होते हैं। इन्हें भी आनन्दोत्सव के अवसर पर गाते हैं।

मिदाङ्

'मिदाङ्' (विवाह) गीत, विवाह के अवसर पर नहीं गाये जाते हैं। इन्हें केवल स्त्रियाँ ही गाती हैं। अपने जन्म गृह छोड़कर ससुराल जाते हुए नव-वधू अपने स्वजन, इष्ट-मित्र, गृह-सामग्री को त्यागकर सदा के लिए दूसरे के घर जा रही है; इन्हीं का वर्णन 'मिशिंग-मिदाङ्' गीतों में स्त्रियां करती हैं। इन गीतों में स्वजन तथा गृह त्याग सम्बन्धी जीवन गाथाएं होती हैं। जिन्हें सुनकर लोग आंसू टपकाते हैं। माँ-बाप की आज्ञा मानकर पति के घर रहने जाती है, उस पर वहां क्या बीतेगी। इन्हीं सब का वर्णन 'मिदाङ्' गीत में होता है। इन गीतों को प्रायः क्रन्दन कर गाती हैं।

ममान

विभिन्न उत्सवों में गाये जाने वाले गीतों को 'ममान-नितम' कहा जाता है। 'कान्ति-कुलि', 'आबाङ्', 'दादाम' गीतों को इस श्रेणी के अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। 'ममान' गीत में मिशिंगों के पहाड़ छोड़कर ब्रह्मपुत्र उपत्यका आगमन की कहानी है। कैसे आखेट करते हैं ? मिशिंग युवतियाँ कैसे वस्त्राभूषण पहनती हैं, उसी का वर्णन इन गीतों में किया जाता है। अनावृष्टि होने पर मिशिंग लोग मेंढक की शादी करते हैं। इस प्रकार मेंढक की शादी करने पर वर्षा होती है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, इन्हें भी 'ममान-नितम' कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क–निनाम

लोरियों को 'क-निनाम' कहा जाता है । इन्हें 'बुनि-नितम' भी कहते हैं । मिशिंग स्त्रियां पुरुषों से भी अधिक परिश्रमी होती हैं । कर्म-व्यस्तता के कारण बच्चों की रखवाली के लिए 'नेविङ्'/दुम्देङ्' रखने का नियम है । 'नेविङ्' आठ या बारह साल की लड़की होती है । बच्चे को रोने पर उसे पीठ पर उठाकर थपथपाती हुई बच्चे को चुप कराने के लिए 'नेविङ' नाना प्रकार के गीत गाती हैं । इन गीतों में मां के खेत जाने और बाप के शिकार के लिए जाने सम्बन्धी विवरण रहता है । जब वे लौट आएंगे तब शिशु के लिए फल-मूल या खाद्य वस्तुएं लाएंगे । किसने उसे रुलाया है, उसकी शिकायत भी मां बाप के आने पर कर देगी और उसका प्रतिशोध लेगी । खेत के कार्य से लौटने पर शिशु को स्तन पान कराती हुई, माँ भी उसे सुलाने के लिए 'क-निनाम' गाती है । घर की बड़ी बूढ़ी, दादियां तथा बहनें भी शिशुओं को चादर से पीठ में बांधकर पीठ को हिलाते हुए उनको प्रसन्न रखने हेतु 'क-निनाम' गाती हैं । ये गीत बालक को खिलाने तथा सुलाने के समय गाये गाते हैं । बालक जब रूठ जाता है और रोने लगता है, तब उसकी 'नेविङ्' या माता गीत गाकर शिशु का ध्यान बंटाती है । बच्चे को सुलाते समय वे गाती हैं :

'कोबोवा काप्पय, पेक्काउवे देमादा;
देए मुल काव्लाङ्का ऐ ··· !

(हे बच्चे मत रोओ, अभी फाख्ते का बच्चा नहीं उड़ा है, उड़ने पर रोना ····· !) इस प्रकार सरस संगीतमय मां की ममता भरी थपकी के मंथर आलोड़न के साथ शिशु के हृदय में अनिर्बंधनीय आनन्द भर देती है ।

लेके–दयिङ्

भारतवर्ष कथाओं का देश माना गया है । इस देश में आबाल-वृद्ध, नर-नारी सभी कथाएं बड़े चाव से कहते और सुनते हैं । यह देश ही नहीं सारे संसार के देश कथा कहानियों से भरे पूरे हैं । फिर भी यह निश्चित है कि पाश्चात्य देशों में प्रचलित कहानियां पूर्वी देशों विशेषतया भारतवर्ष से यात्रा करती हुई पहुंची हैं । अधिकांश भारतीय कथा कहानियों के बीज वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि संस्कृत ग्रन्थों में मिलते हैं । गुणाढ्य कृत पैशाची भाषा में लिखित 'बड्डकहा' (वृहत्कथा), सोमदेव भट्ट का लिखा 'कथासरित्सागर', पालि में बौद्ध जातक कथाएं, लोक कथाओं की श्रेणी में आती हैं । पंचतन्त्र, और हितोपदेश की कथाएं अत्यधिक लोकप्रिय हैं । इनमें अनेक जातक कथाएं भी विद्यमान हैं । इस सम्पूर्ण कहानी साहित्य के भावनात्मक समन्वय के सम्बन्ध में यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि अधिकांश कथाएं थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में समान रूप से मिलती हैं । मिशिंग जनजाति हिन्दू परम्परा के अनुयायी होने के कारण, उक्त भारतीय प्राचीन साहित्य कहानियां/उपाख्यान इनके समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी प्रचलित हैं। रामायण और महाभारत सम्बन्धी कथाएं तो इनके बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुये हैं।

मिशिंग भाषा में कहानी या उपाख्यान को 'लेके-दयिङ्' (पौराणिक कथाएं) कहा जाता है। इन कथाओं में जीव-जन्तु कीट-पतंग, मनुष्य, भूत-प्रेत, राक्षस, देवता, आदि की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। भूत-प्रेत और मनुष्यों के बीच द्वन्द्व, उसके परिणाम में नाना पूजा विधि की उत्पत्ति का वर्णन मिशिगों के 'लेके-दयिङ्' में होता है। इस प्रकार की कथाओं की उत्पत्ति स्रोत प्रायः 'मिब्रु-आबाङ्' (पुरोहित के गीत) से है।

'लेके-दयिङ्' को शैली की दृष्टि से गेय तथा अगेय दो रूपों में ले सकते हैं। गेय कहानी गाकर कही जाती है, तो अगेय वार्ता के रूप में। विस्तार रूप में कुछ कथाएं लघु होती हैं, तो कुछ दीर्घ। लघु कथाएं बालकों के मनोरंजनार्थ गढ़ी जाती हैं। जो थोड़े समय में कही जाकर उद्देश्य कथन में सफल होती हैं, जबकि दीर्घ कथाएं बड़े-बूढ़ों की जीवन-गुत्थियां सुलझाने में अधिक सचेष्ट जान पड़ती हैं। 'दयिङ्' (कहानी) सुनते समय लोग काफी रात्रि बीतने पर भी ऊंघते नहीं और उत्सुकतावश आगे सुनने को व्यग्र दिखाई देते हैं। मानव जीवन विभिन्न भाव क्षेत्रों एवं व्यापारों के आधार पर कथाओं के विविध भेद किये जा सकते हैं। एक ओर प्रेम, साहस एवं वीरता, सदाचार एवं परोपकारिता आदि सद्गुणों की प्रदर्शक कथाएं कही जाती हैं, तो दूसरी ओर चालाकी, कपट, दंभ, ईर्ष्या, व्यभिचार आदि दुर्गुणों से पूर्ण किस्से भी होते हैं।

मिशिगों के जिस परिवार में बूढ़े लोग हों वह घर कहानियों का भंडार कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। रात्रि के समय कृषक वर्ग दिनभर के परिश्रम के उपरान्त 'मेराम' (चूल्हे) के चारों ओर बैठते हैं, तब कोई बड़ा-बूढ़ा, बालकों के उकसाने पर 'लेके-दयिङ' कहने को प्रस्तुत हो जाता है। कभी भोजन के पश्चात घर में जलती हुई अंगीठी के चारों ओर बच्चे बूढ़ी दादी को घेरकर बैठ जाते हैं। तब वे 'लेके-दयिङ्' सुनने की व्यग्रता दिखाते हैं। लोग कथा कहानी सुनने में इतने लीन हो जाते हैं, कि उस समय समस्त दुश्चिन्ताओं को भूलकर आनन्दमग्न हो उठते हैं। दुखपूर्ण कहानी सुनकर उनके नेत्रों में आँसू छलछला आते हैं, तो हास्यमय कहानी सुन हंसी के मारे लोट-पोट हो जाते हैं।

मनुष्य का उर्वर मस्तिष्क नई-नई मनगढ़न्त कल्पनाएं गढ़ता रहता है और इस प्रकार नई कहानियाँ बनती रहती हैं। विशिष्ट काल, स्थान तथा व्यक्तियों के नाम भूलकर कहानियाँ इस प्रकार कहानीकार प्रारंभ करते हैं—'मेंयिङ्, कंयिङ, आक दलुङ् ल···' (बहुत पहले एक गांव में···) ये कहानियां असंभव घटनाओं से परिपूर्ण रहती हैं। कहानी के पशु, पक्षी, तोता, कौआ, शेर, बन्दर, राक्षस, भूत-प्रेत 'तानि-आगम'' (मनुष्य की भाषा) में बात-चीत करते हैं। कहानियों में कल्पनाओं के बाहुल्य के साथ नीतियुक्त उपदेश, कुतूहल, भय और आश्चर्य मिश्रित भावनाओं का एकीकरण हो उठता है। कुतूहल और भय उत्पन्न करने वाली कथा में ''आबु तुन्तुन्तुङ्' (मिगुमिमात) की कहानी अति लोकप्रिय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिशिंग लोक साहित्य में लेके-दयिङ् का प्रमुख स्थान है। आज भी मिशिंग गांवों में ठंड की रातों में 'मेराम' के चारों ओर बैठकर वृद्ध लोग कभी आप बीती, कभी जग बीती कहानी सुनाने लगते हैं और सुनने वालों में से एक व्यक्ति 'ए···लः' प्रत्युत्तर देता जाता है। 'लेके-दयिङ' अधिकांश गद्यात्मक कही जाती हैं और कहीं गीत कथाएं भी बड़े आकर्षक शैली में सुनाई जाती हैं। कहानी के अन्त तक जिज्ञासावृत्ति बनी रहती है, जिससे श्रोता दत्तचित्त होकर कहानी समाप्त होने पर ही सन्तोष लाभ करता है। कथाकार भी कथा सुनाने में उतनी ही रुचि लेता है और पूरा किये बिना उसे चैन नहीं मिलता है।

कीर्तन

मिशिंग लोग केवलिया वैष्णव धर्म परम्परा को भी यदा-कदा मान लेते हैं। टूटी-फूटी असमिया भाषा में वैष्णव धर्म गाथा का भी इनमें प्रचार है। शिवसागर जिलान्तर्गत, दिसांगमुख माजरबारी निवासी श्री खनीराम मिली ने वैष्णव परम्परा के बहुत से कीर्तन गीतों की रचना मिशिंग भाषा में की है। माजरबारी गांव में इन कीर्तन गीतों को गाने वाली पार्टी का नेतृत्व भी श्री मिली ही करते हैं। श्री मिली के यहाँ से मुझे 'रुनेम् कुम्नाम', 'गुका' (घोषा) आदि अनेक मिशिंग कीर्तन गीत प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार कीर्तन गीतों की रचना का यही सर्वप्रथम प्रयास मिशिंग में हुआ है।

आगम लेतिक

'आगम लेतिक' (कहावतें/मुहावरे) भी मिशिंग समाज में व्यापक हैं, परन्तु वे तो व्यावहारिक जीवन के अंगीभूत हैं, गीतों और कथाओं की भांति उनका कथन-श्रवण नहीं होता। बात चीत करते समय जब कोई अनुकूल अवसर आता है, तभी 'आगम-लेतिक' का प्रयोग किया जाता है। आगम-लेतिक का अर्थ है 'बातों के पैर'। ये तो लोक जीवन का अंग होती ही हैं। सांसारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन 'आगम-लेतिक' में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अनुभूत ज्ञान की निधियाँ होने के कारण इन्हें 'सूक्ति' भी कहा जाता है। लोक जीवन की अनुभूति और कल्पना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति पहेलियों के माध्यम से होती है। इनके द्वारा एक ओर तो बुद्धिविलास होता है, दूसरी ओर मनोरंजन।

मिशिंग गांव के वृद्ध लोग बात-बात में लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। ये लोकोक्तियां बड़ी अर्थगर्भित होती हैं। यदि इनकी उपयोगिता के लिये 'गागर में सागर' वाली बात कही जाये तो अत्युक्ति न होगी। अनुभवी ग्रामीण जन--जीवन के विविध व्यापारों को वाच्यार्थ में न कहकर लक्षण द्वारा प्रकट करते हैं। ये उक्तियां अन्योक्ति के रूप में बड़ी कारगर सिद्ध होती हैं। किसी बात को घुमा फिराकर कहने में मनुष्य को हार्दिक आनन्द मिलता है। वह अपनी बात को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये व्यंग्योक्तियों का सहारा लेता है। इन उक्तियों में कहीं पूर्णवाक्य, कहीं वाक्यांश अथवा कहीं पद्यमय गीत भी मिलते हैं। इसके अन्तर्गत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहावरे भी लिये जा सकते है। 'आगम-लेतिक' भी लोक जीवन में बुद्धि-वैभव का प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान कराते हैं।

मिशिंग लोक साहित्य के अन्य आकर्षण

लोकगीत और लोककथाओं के अतिरिक्त मिशिंग जनसमाज में ऐसा लोक-साहित्य भी मिलता है, जो गहरी अनुभूति एवं सूक्ष्म निरीक्षण का प्रतिफलन है। जीवनकाल में मनुष्य को कई कटु एवं मधुर अनुभव मिलते हैं। वह उन्हें सूत्र रूप में कहने का अभ्यस्त है। ये संक्षिप्त एवं चुभते हुए वचन बड़े प्रभावशाली होते हैं, जो जन जीवन के संसार पथ में संबल का काम देते हैं। पूर्वजों की अनुभवभरी उक्तियां प्रकाशस्तंभ की भांति कार्य करती हैं। ये मनोरंजक तो होती ही हैं, साथ ही बुद्धिपरक भी हैं। संसार के सभी देशों में सुभाषितों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये व्यावहारिकता और सामान्य बुद्धि की निर्देशक होती हैं। लोक जीवन के उल्लास, उत्साह और व्यवहार की झांकी सर्वत्र समान रूप से पायी जाती है, घटना विशेष पर आधारित तथ्य मनुष्य के लिए शिक्षाप्रद सिद्ध होते हैं। समयोचित लोकोक्ति बड़ी शंकाओं का समाधान करने में समर्थ होती है। अधिकांश कहावतों में मिशिंग जाति के संचित अनुभवों का भण्डार अक्षुण्ण बना हुआ है। ये 'आगम-लेतिक' मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं।

बालकों में इसकी स्पर्द्धा अधिक तीव्र होती है। एक लड़का पहेली पूछता है, तो दूसरा उसका उत्तर देता है। जब कोई लड़का उत्तर नहीं दे पाता; तब उसकी हार मान ली जाती है। कभी-कभी तो पहेलियों के उत्तर के लिये दाँव तक लगा दिये जाते हैं।

बड़े बूढ़ों की तरह बालक में भी गीत गाने की प्रवृत्ति रहती है। अवस्था भेद के अनुसार वयस्कों के गीतों की भांति उनमें प्रौढ़ता तो नहीं होती, पर अनुकरणात्मक प्रवृत्ति अवश्य दिखाई देती है। दो चार बालक इकट्ठे होकर जहां खेलना शुरू कर देते हैं, वहां सामूहिक रूप से खेल के गीत भी बनाकर गाने लगते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि उनके समस्त गीत सार्थक ही हों फिर भी कभी-कभी इनके गीतों में आगामी जीवन के अस्पष्ट चित्र अवश्य उभर आते हैं। इन गीतों के शब्द वाक्यादि बाल मनोवैज्ञानिक के लिए अनुसन्धान का विषय बन सकते हैं। बालकों के विभिन्न सामाजिक एवं पारिवारिक रहन सहन संस्कृति के स्तर अवश्यमेव असमान विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो भी सामान्य प्रवृत्तियों में कोई विशेष विभेद नहीं किया जा सकता है।

बाल गीतों को खेल-गीत नाम भी दे सकते हैं। इन गीतों में शिशु की अस्फुट वाणी वातावरण में सरसता एवं मधुरिमा ला देती है, जिसमें रोते हुए चेहरे एक बार मुस्कान से भर उठते हैं। बालकों को ऐसे गीत गाने की विशेष शिक्षा नहीं मिलती है। वे तो अन्तस्-प्रेरणा से उद्भूत होकर स्वतः फूट पड़ते हैं। शिशु के जन्म काल से ही वह माता की 'क-निनाम' (लोरियों) को सुनता है। बालक के गीतों में कभी-कभी निरर्थक, कौतूहलजनक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं असंगत बातें भी पायी जाती हैं। इनमें बालकों की अवस्थानुकूल बुद्धि विकास, उत्सुकता एवं जिज्ञासा की प्रवृत्ति स्वच्छन्द विचरण करती पायी जाती है।

कुछ ऐसे भी 'नितम' (लोकगीत) हैं जो श्रम कार्य करते समय गाये जाते हैं। धान रोपते, काटते, माड़ते, झाड़ते समय गीत गाते हैं जिससे उनके श्रम का परिहार होकर हृदय आनन्द से पूर्ण हो जाता हैं। काम, काम न रहकर खेल प्रतीत होता है। राह चलते, मेला जाते समय झुंड में युवतियां गीत गाती हुई जाती हैं। मनुष्य सदा सुख की खोज में रहता है, वह कष्ट-साध्य श्रम को गीत गाकर भुलाना चाहता है।

मिशिगों के वाद्य-यन्त्र

'नितम' (लोकगीत) को श्रवणीय और आकर्षक बनाने के लिए मिशिग लोग वाद्य-यन्त्रों का भी प्रयोग करते हैं। इनके वाद्य-यन्त्र स्वयं बनाए हुए होते हैं। मिशिगों के वाद्य-यन्त्रों में प्रमुख हैं : दुम्दुम्, पेम्पा, लुपि, गुंगाङ्. मुरुलि, देन्तक, एजुक-तापुङ् देन्दुन, कक्तेर, लेनङ्—बारबाङ् और यक्सा।

दुम्दुम्

मिशिगों का 'दुम्दुम्' ढोल जैसा होता है, इसे कन्धे पर लटकाकर एक ओर डण्डे से और दूसरी ओर हथेली से ठोक-ठोक कर बजाया जाता है। मिशिगों का प्रमुख वाद्य यही है। हर उत्सव-पर्व के अवसर पर 'दुम्दुम्' बजाकर ये नाचते-गाते आनन्द मनाते हैं। स्थानीय बाजार/नगर से 'दुम्दुम्' लाते हैं। साधारणतया 'साम' या 'कटहल' की लकड़ी से 'दुम्दुम्' बनाते हैं। हर मिशिग युवक 'दुम्दुम्' बजाने में पारंगत होता है। 'दुम्दुम्' की ध्वनि में पद चालन कर नृत्य करने में मिशिग युवतियां पारंगत होती हैं। 'दुम्दुम्' की ध्वनि सुनते ही युवतियों का हृदय मचल उठता है। 'मिबु-सुम्नाम्' (पुरोहित नृत्य) को छोड़कर मिशिगों के सभी उत्सव-पर्वों में 'दुम्दुम्' बजाया जाता है।

पेम्पा

'पेम्पा' भैंस के सींग से बनाते हैं। इसके एक ओर छेद युक्त बांसुरी होती है, उसके अग्रभाग में फूंककर बजाने के लिए नल की 'पिलि' लगाते हैं। यह वाद्य सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया में प्राप्त होता है। ब्रह्मपुत्र उपत्यका के सभी जाति के लोग इसे बजाते हैं। मिशिग युवक 'पेम्पा' के माध्यम से 'ऐनितम्' (विरह-गीत) गाने की कला से परिचित होते हैं। भैंस/गाय चराने वाले 'गरकिया' 'पेम्पा' बजाकर अकेलेपन को दूर करते हैं। मिशिगों के प्रायः उत्सवों में 'पेम्पा' बजाते हैं।

लुपि

'झांझ को 'लुपि'/'ताल' कहा जाता है। 'दुम्दुम् (ढोल) और 'लुपि' ही मिशिगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के वाद्यों में प्रमुख होते हैं। 'लुपि' कांसे से बनाते हैं। इनका वजन आधा किलो का होता है। ढोल की ध्वनि के साथ मिलाकर 'लुपि' बजाया जाता है। मिशिंग युवक-युवतियां दुम्दुम् लुपि की ध्वनि के साथ स्वर मिलाकर 'ऐनितम्' (विरह गीत) गा-गा कर नृत्य करते हैं।

गुंगाङ्

'गुंगाङ' को असमिया में 'गगना' कहा जाता है। इसे बांस के छड़ से बनाया जाता है। 'गुंगाङ्' को ओष्ठ से दबाकर अंगुली से मार-मार कर बजाया जाता है। 'गुंगाङ्' का स्वर अति मधुर और सुरीला होता है। 'गुंगाङ्' के माध्यम से मिशिंग युवती अपने मन के भाव को अभिव्यक्त करती है। बांस निर्मित भात चलाने की कलछुल चुराकर 'गुंगाङ्' बनाने पर सुर अति मधुर निकलता है। मिशिंग युवक अपनी प्रेयसी को उपहार-स्वरूप 'गुंगाङ्' बनाकर भेंट करता है।

मुरुली

बाँसुरी को 'मुरुलि/पुलि' या 'कुरुलि' कहा जाता है। बांसुरी बांस की नली से बनाते हैं। 'मुरुलि' में छह छेद होते हैं; उन्हीं में अंगुलियां लगाकर मुंह से फूंककर बजाते हैं। रात्रि में मिशिंग युवक बाँसुरी बजाकर अपने मनके भाव को अपनी प्रेयसी को सुनाकर आगमन की पूर्व सूचना देता है। मिशिंग युवक ऐनितम, काबान आदि गीतों को मुरुलि के सुर में बजाता है। इस वाद्य को मिशिंग युवक स्वयं बनाते हैं। गांव के बच्चे धान की नेवारी से भी 'पिलि' बनाकर बजाते हैं।

देन्तक

'देन्तक' को 'दुम्पाक्' भी कहा जाता है। यह वाद्य नरम बांस के एक टुकड़े को छीलकर बनाते हैं। इसे पेट में लगाकर छोटे डंडे से ठोंक-ठोंक कर बजाया जाता है। पहले मिशिंग लोग इसी 'देन्तक' वाद्य को बजाकर 'गुम्राक' नृत्य करते थे। आजकल 'देन्तक' के स्थान पर 'दुम्-दुम्' (ढोल) बजाकर आनन्द मनाते हैं। उत्सव के अवसर पर भी देन्तक बजाया जाता है।

एजुक-तापुङ्

'एजुक्-तापुङ्' को 'देर्कि-तापुङ्' भी कहा जाता है। यह सपेरे की बीन जैसा होता है, लौकी से बनाया जाता है। विवाह या किसी सम्माननीय व्यक्ति के स्वागत के अवसर पर 'एजुक-तापुङ्' बजाने की प्रथा मिशिंगों में है। 'एजुङ्-तापुङ्' की आवाज सुनकर साँप आते हैं कहकर आजकल इसे नहीं बजाते हैं। इसके स्थान पर 'पेम्पा'/'पुलि' बजाते हैं।

देन्दुन

'देन्दुन' को 'तिन्तङ्' भी कहा जाता है। इसे 'मेगेला' नामक पौधे के डंठल से बनाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है । यह मिशिंग युवकों का अति प्रिय वाद्य है । इसकी आवाज सुरीली होती है । गाय/भैंस चराने वाले 'गरकिया' इसे अधिक मात्रा में बजाते हैं ।

कक्तेर

असमिया में इसे 'टका' कहा जाता है । यह बांस निर्मित होता है, कारण इसकी आवाज 'तक्-तक्...' कर निकलती है । इसे 'बिहु' उत्सव के अवसर पर बजा-बजा कर नृत्य करते हैं ।

लेनङ्-बरबाङ्

'लेनङ्' तीन प्रकार के होते हैं—'बारबाङ्', 'लेनङ्' और 'बालि' असमिया में इसे 'बरकांह' कहा जाता है । ये कांसे और पीतल के होते हैं । इन वाद्यों की वंश की सामूहिक सम्पत्ति के रूप में गिनती होती है । ये मिशिंगों के प्राचीनतम वाद्य माने जाते हैं । गांव में किसी प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु होने पर घर के छत पर चढ़कर 'लेनङ्' बजाया जाता है । 'लेनङ' का शब्द सुनकर दूर-दूर के लोग मृतक के सत्कार के लिए आते हैं । गांव में जरूरी 'केवाङ् (सभा) के लिए लोगों को एकत्रित करने के लिए भी इसे बजाया जाता है । लेनङ् की ध्वनि सुनने पर प्रत्येक घर से एक आदमी 'केवाङ्' के लिए 'मुरुङ् (सामूहिक सभा गृह) में पहुंचता है । 'आलि-आई-लिगाङ्' की अवसर पर इन वाद्यों को विशेष रूप से बजाया जाता है । 'लेनङ' की आवाज सुनकर सुपुप्त मेघ बादल बनकर बरसता है ।

यक्सा

इसे 'मिबु-यक्सा' भी कहा जाता है । यह तलवार जैसा होता है । 'यक्सा' के मूठ में कांस के चार/पांच घुंघरू रहते हैं । 'यक्सा' हिला-हिला कर नाचने पर इनसे आवाज निकलती है । 'पराग' उत्सव के अवसर पर 'मिबु' के नेतृत्व में 'मिबु-सम्नाम्' नृत्य करते हुए 'यक्सा' की घुंघरु के साथ ताल मिलाकर युवक-युवतियां नाचते गाते हैं । मिबु 'आवाङ्' गाते समय छोटी देवघन्टी भी बजाता है । 'याल-गक्नाम' (आत्म-बुलाने), 'तागिर-कानाम्' (ज्योतिष-गणना) के अवसरों पर 'देवघन्टी' बजाने का नियम मिशिंगों में है ।

इन वाद्यों के अलावा मिशिंगों में असम के वाद्य-यन्त्र...टुकारी, रामताल, करताल, खंजरी आदि भी लोकप्रिय हैं । इन वाद्यों को केवल वैष्णव परम्परा से कीर्तन करते हुए बजाते हैं । आजकल पढ़े-लिखे मिशिंग युवक-युवतियां आधुनिक हारमुनियम-तबला, गिटार आदि भी बजाते हैं ।

'मिशिंग जनजाति' के सम्बन्ध में देखिये मेरा लेख—'मानव', ४/२, १९७६ ।

और विस्तृत जानकारी के लिए 'मिशिंग जनजाति', आदिम जाति विकास, गृहमंत्रालय, भारत सरकार, १९८२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश में आठवें दशक में नगरीय वृद्धि का स्वरूप

राधेश्याम त्रिपाठी

उत्तर प्रदेश भारत में जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है। नगरीकरण के सामाजिक परिवर्तन नगरी प्रभावों के अध्ययनों से यहाँ इस प्रक्रिया के अनेक महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात हुये हैं। सन् १९७१ में उत्तर प्रदेश की ११.५ प्रतिशत जनसंख्या नगरों में रहती थी। यह भारत की कुल नगरीय जनसंख्या का १०% था। सन् १९८१ के आंकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या ११,०८,६२,०१३ में १,९८,९९,११५ लोग नगरीय क्षेत्र में निवास करते हैं। एक लाख से अधिक आबादी वाले नगरों की संख्या ३० हो गयी है अर्थात् नगरीकरण की प्रक्रिया प्रदेश में तेजी से आगे बढ़ रही है। समय-समय पर भारतीय जनगणना में नगरीय क्षेत्र के परिभाष में कदाचित परिवर्तन किए गये हैं। उनसे नगरों की संख्या में कुल वृद्धि से सकल नगरीकरण की प्रक्रिया यद्यपि तीव्रतर लगती रही है किन्तु नगरीय स्थल से नगरीय श्रेणियों (Class of Town) का निरूपण यथावत रहा है। इन तथ्यों का किसी क्षेत्र के नगरीय विकास की प्रक्रिया के मूल्यांकन की दृष्टि से महत्व है। भारत में नगरीकरण का सम्पूर्ण प्रारूप महानगरों के विस्तार से ध्वनित होता है। नगरीय नियोजन की दृष्टि से असंतुलित नगरीकरण समाजशास्त्रीय समस्या के रूप में देखा जाने लगा है। परम्परागत समाज का नगरीय भीड़ व आत्मकेन्द्रित समूह के रूप में अवसान के खतरे को देखा जाना आवश्यक है।

इस प्रलेख में उत्तर प्रदेश की नगरीकरण प्रक्रिया का प्रारम्भिक मूल्यांकन व विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय नगरीयकरण की नीति[1] के कतिपय आयाम और उद्देश्य (१) ग्रामीण-नगरीय एकीकरण, (२) विभिन्न बस्तियों में जनसंख्या का पुनर्वितरण, (३) पिछड़े क्षेत्रों का विकास, (४) अनियोजित ढंग से नगरीय विकास पर नियंत्रण (५) नगरीय सुविधाओं के बढ़ाये जाने, (६) सर्वाधिक आवश्यक अनुभव करने वाले के हित को आधार भूमि संसाधनों के वितरण पर नियंत्रण आदि के लिए नगरीकरण का निरंतरण अध्ययन उत्तर प्रदेश के संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

नगरीय वृद्धि

उत्तर प्रदेश के नगरीकरण की प्रक्रिया नये नगरों के विकास के साथ-साथ गतिमान है।

राधेश्याम त्रिपाठी, स० अध्यापक शासकीय महाविद्यालय, जयसिंह नगर (शहडोल म० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण कारक, औद्योगीकरण, एवम् शैक्षणिक उत्प्रेक्षकों की भूमिका इसमें प्रकट होती है। उ० प्र० में नगरों का विकास अनेक कारणों से 'क्षेत्रीय विकास' से प्रभावित रहा है। प्रवजन की धारा ग्रामीण से नगरीय जबकि औद्योगीकरण की प्रक्रिया के सहारे विकसित हो रहे नये नगरों की ओर बढ़ती पाई गयी। प्रवजन की मुख्य प्रवृत्ति मुख्यतया काम की तलाश में आये पुरुषों का एकाकी प्रवजन है जो प्रायः इन नगरों का स्त्री-पुरुष अनुपात कम करता गया।

उ० प्र० के नगर प्राचीन काल से प्रशासन और धर्म के मुख्य केन्द्र रहे हैं जो ब्रिटिश काल में आगे बढ़े प्रशासनिक एवम् राजनैतिक दृष्टि से महत्व के हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नगरों के विकास में आर्थिक संरचना, शिक्षा, निवास, व्यवसाय, नगर निकटता प्रमुख रहे हैं। उत्तर प्रदेश में नगरीकरण एवम् औद्योगीकरण की प्रक्रिया साथ-साथ दृष्टिगोचर हुयी है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश नगर बहुल है। यह क्षेत्र के आर्थिक-सामाजिक विकास का प्रमुख संकेतक माना गया है। दूसरा क्षेत्र 'कावल टाउन' है। यह नगरीय क्षेत्र प्रशासनिक धार्मिक दोनों दृष्टि से अन्तिम रहे हैं, जबकि गाजियाबाद, फिरोजाबाद एवं कानपुर औद्योगिक नगर का आभास देते हैं।

१९६१-७१ के दौरान उत्तर प्रदेश में नगरीय वृद्धि लगभग यथावत् रही है। बड़े नगरों में वृद्धि ही मुख्य रही। भारत में जहाँ कुल ३७.८ प्रतिशत दशकीय वृद्धि दर थी, वहीं उत्तर प्रदेश राज्य की वृद्धि दर ३०.५ प्रतिशत तक रही। मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, केरल, कर्नाटक को छोड़कर शेष अन्य राज्यों में दशकीय वृद्धि दर अधिक थी। इसी तरह उत्तर प्रदेश में भारत की तुलना में प्रथम श्रेणी के नगरों की दशकीय बृद्धि दर ४९.४ प्रतिशत के मुकाबले ३६.८ प्रतिशत थी। वही १६.२ प्रतिशत (भारत) के संदर्भ में ३२.१ प्रतिशत वृद्धि दर होना नगरों का ग्रामीणीकरण की प्रक्रिया का समामेलन कह सकते हैं। (सारिणी १.०)।

सारिणी सं० १.०
उ० प्र० के नगरों का विस्तार १९६१-७१

वर्ग	शुद्ध वृद्धि १९६१-७१ नगरीय जनसंख्या		मिलियन	दशकीय वृद्धि दर प्रतिशत १९६१-७१
	१९६१	१९७१		
१	५४.४३	५७.०७	१.९०	३६.८
२	११.७६	१०.७७	०.२२	१९.५
३	१६.६५	१६.७९	०.४९	३१.१
४	११.०१	१०.३६	०.२९	२३.८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५	५.९२	४.८३	०.०४	६.८
६	०.२३	०.२३	०.०१	३२.१
	—	—	२.८९ मिलियन	३०.५

स्रोत : आशीष बोस, **स्टडीज इन इंडियाज पापुलेशन**, १९६१-७१, टाटा-मैकग्रा हिल, ३७५-७७। १९७८,

सारिणी संख्या २.०

नगरीकरण : संकेतक आंकड़े

		कुल	जनसंख्या (.०००)	नगरीय जनसंख्या प्रतिशत १९७१-८१
१—	नये नगर	३८३	३,२३२	४२.६
२—	दशकीय वृद्धि दर (१%)			
	१९७१-८१	कुल	ग्रामीण	नगरीय
	उत्तर प्रदेश	२५.५	१९.७	६१.२
	भारत	२४.४	१९.०	४६.०
३—	१ लाख आबादी से ऊपर			
	वाले शहरों का वृद्धि प्रतिशत	१९७१	१९८१	
	भारत	५६.२	६०.४	
	उ० प्र०	५७.१	५१.५	
४—	नगरीय जनसंख्या (%)	१२.३९	१९.९७	
५—	वृद्धि दर १९६१-७१		२५.३	
	दशकीय (%) १९७१'८१		६२.७	
६—	नगरीकरण की दर नगरी अनुपात में		२८.५७	
	प्रतिशत परिवर्तन		१७.३२ (सम्पूर्ण भारत)	

उत्तर प्रदेश में १९८१ में ३८३ कुल नये नगरीय क्षेत्र हो चुके हैं, जबकि १ लाख आबादी वाले शहरों का वृद्धि प्रतिशत जहाँ १९७१ में राष्ट्रीय औसत से अधिक था वहीं १९८१ में कम हो गया है। दशकीय वृद्धि दर अवश्य देश के अन्य राज्यों से अपेक्षाकृत तीव्र रही है (आशीष बोस १९८३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवहन सघन केन्द्र की दृष्टि से भी मोदी नगर, मुरादनगर शहर बढ़ते गये हैं। नगरीय अवस्यामिक संरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) की दृष्टि से आवागमन आंकड़ों का एकत्रीकरण यद्यपि १९७१ की जनगणना में नहीं पूरा हो पाया, परन्तु महानगरों के सर्वेक्षण में नगरीकरण की वास्तविक तीव्रता मापने के आकलन में इसे उपयोगी पाया गया है। कुछ नगर अपने विस्तार में (मास्टर प्लान आदि) निरन्तर गाँवों को समाहित करते गये हैं तथा न्यून वृद्धि दर वाले छोटे शहर के आसपास बृहद् उद्योग स्थापन से जनसंख्या वृद्धि के साथ नगरीय सघनता भी बढ़ गयी है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ऐसे प्रतिमान १९६१-७१ के अतिरिक्त १९७१-८१ के दौरान भी गतिशील थे।

नगरीयकरण : क्षेत्रीय भिन्नताओं के प्रतिरूप

उत्तर प्रदेश में नगरीकरण की क्षेत्रीय भिन्नतायें अत्यधिक विपरीत हैं। 'नगरीय निवास प्रतिरूप का पश्चिमी ढंग पूर्वी उ० प्र० से जिस प्रकार भिन्नता लिए हुए है, यह पूर्णतया दो अलग देशों के दो अलग क्षेत्र प्रतिभिन्न आर्थिक व्यवस्था जैसे रखते हों।' (एम० एन० बुच १९८१:१९) इस प्रकार उत्तर प्रदेश में नगरीकरण के दो माडल प्रकट होते हैं। समृद्ध क्षेत्र पश्चिमी में कृषि विकास ही मुख्य आधारक (मूवर) रहा है, जबकि पूर्वी उत्तर प्रदेश का 'नगरीकरण माडल' ग्रामीण वृद्धि के साथ नगरीय वृद्धि क्षेत्र (फीडर हिंटर लैण्ड) एवम् मेट्रोपालिटन नगर के बीच सामांतिक (कोलोनियल) सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। (वही पृ० १९)। आर्थिक दृष्टि से पूर्वी उत्तर प्रदेश पिछड़ा हुआ है, जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश आगे है। गाजियाबाद शहर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दिल्ली के समीप स्थित है। इस औद्योगिक नगर की आबादी २ लाख ९२ हजार (१९८१) हो गयी है तथा १९६१-७१ में वृद्धि दर ८१.३% से बढ़कर १२८.६%, १९७१-८१ के दौरान पायी गयी। रानीगंज बोकारो स्टील नगर को छोड़कर—प्रथम श्रेणी के अन्य नगरों की तुलना में कहीं अधिक तेजी से इस शहर का विस्तार होता जा रहा है।

सारिणी संख्या—३.०

उत्तर प्रदेश के कावल टाउन दशकीय वृद्धि दर

कावल टाउन	१९५१-६१	१९६१-७१	१९७१-८१
कानपुर	+ ३७.७	+ ३१.१	+ ५२७.१
लखनऊ	+ ३२.०	+ २६.०	+ २२२.७
आगरा	+ ३५.४	+ २५.४	+ २२९.४
इलाहाबाद	+ २७.५	+ १९.३०	+ १९८.८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) कावल टाउन

उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा औद्योगिक महानगर कानपुर है। कावल टाउन में सर्वप्रमुख इसकी १९६१-७१ के दौरान दस लाख से अधिक जनसंख्या हो चुकी थी तथा देश के महानगरों में आठवां स्थान प्राप्त है। वाणिज्य और उद्योग इस नगर के विस्तार के मुख्य कारक रहे हैं। जनसंख्या की दृष्टि से लखनऊ, १९३१ के पहले सबसे बड़ा नगर उत्तर प्रदेश का था। कावल टाउन में उपरोक्त पाँचों महानगर प्रदेश के नगरीकरण के मानचित्र में प्रमुखता से आते हैं।

सारिणी संख्या--४.०

कावल टाउन की वर्तमान जनसंख्या, स्त्री-पुरुष अनुपात, साक्षरता, १९८१

कावल टाउन	कुल जनसंख्या	स्त्री-पुरुष अनुपात		साक्षरता	
	१९८१	१९८१	१९७१	१९७१	१९८१
कानपुर	१६,८५,३०८	८०४	७६२	५०.९०	५५.७७
लखनऊ	१०,०६,८४३	८३४	८०९	५२.६६	५७.१४
वाराणसी	७,९८,०५७	८४८	८३९	४२.१३	४७.२७
आगरा	७,५२,५८७	८४९	८२६	४३.८७	४६ ११
इलाहाबाद	६,३२,३५९	८२१	७८५	५२.८४	५८.९१

स्रोत : १९८१ जनगणना, **उत्तर प्रदेश**, पृ० ४१

(ख) एक लाख से अधिक आबादी वाले नगर

१९७१ में उत्तर प्रदेश में नगरीय केन्द्र २२ थे जो बढ़कर ३० (१९८१) हो गये हैं। हरद्वार, अमरोहा, इटावा, संभल, जौनपुर, बुलन्दशहर, हापुड़, बहराइच को यह पद प्राप्त हुआ। १९८१ के आंकड़ों के अनुसार इन नगरों की जनसंख्या में स्त्री अनुपात सम्यक रहा। रामपुर में ८९८ तथा सबसे कम गाजियाबाद में ७९३ पाया गया। गाजियाबाद को छोड़कर ८०४ से ८९८ के अन्तराल में उत्तर प्रदेश के शेष २९ नगरों में स्त्री-पुरुष अनुपात सांकेतिक रहा। देहरादून साक्षरता में सर्वप्रथम, आधे से अधिक साक्षर जनसंख्या गोरखपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, हरद्वार, कानपुर, झांसी, फैजाबाद, गाजियाबाद, मुजफ्फरनगर, मथुरा एवम् मेरठ में पायी गई हैं। जबकि २४.८ प्रतिशत साक्षरता सबसे कम संभल में पायी गयी। देहरादून में ५९.४ प्रतिशत स्त्रियाँ, ७१.६ प्रतिशत पुरुष अधिक साक्षर पायी गयी।[८]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी संख्या—५.०

उत्तर प्रदेश के नगरों का कृषि एवम् गैर कृषिकीय वितरण

नगर श्रेणी	गैर कृषिक		कृषि	
	१९६१	१९७१	१९६१	१९७१
	१७	२२	—	—
	१८	२०	—	१
	५४	५९	२	११
	७५	६१	६	२६
	७५	४४	४	१३
	१६	१०	—	—
कुल	२५५	२१६	१२	५१

स्रोत : अशोक मित्रा एवं अन्य (१९८१)

(ग) नगरों का प्रकार्यात्मक प्रारूप

नगरों के सामाजिक गठन को देखने के लिए भारत के नगरों को कृषिकीय व गैर कृषिकीय वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है (अशोक मित्र)। उन शहरों में जहाँ की कर्मिक जनसंख्या सर्वाधिक रूप से खेती व सम्बन्धित संवर्ग में लगी है, नगरों को कृषिकीय (Agricultural Town) गिना गया है। निर्माण, वाणिज्य व परिवहन सेवा में अधिकांश कर्मिक जनसंख्या की सघनता से 'गैर कृषिकीय नगर' को चिन्हांकित किया गया है। अशोक मित्र के अनुसार भारत के २०.८ प्रतिशत नगर कृषिकीय थे जो १९६१ में २०.७ से बढ़कर १९७१ में २८.८ प्रतिशत थे। नगरों के प्रकार्यात्मक विश्लेषण के उक्त प्रतिमान का उत्तर प्रदेशीय प्रारूप देखने से ज्ञात होता है कि १९६१ से १९७१ के दौरान गैर कृषिकीय नगर कम हुए हैं, जबकि कृषिकीय नगरों की संख्या बढ़ी है। अर्थात् छोटे कस्बे ही बढ़कर विस्तारित नगर (Expanding Town) होने से नगरीय आवृत्त में शामिल होते गये।

उत्तर प्रदेश के महानगर कानपुर में स्वतन्त्रता पश्चात् गैर कृषिकीय उद्यमों का विस्तार उल्लेखनीय है, परन्तु घरेलू उद्यम में लगी जनसंख्या कम होती गई है और अन्य सेवाओं में लगे कर्मिकों का प्रतिशत १९५१ के २४.७ प्रतिशत से बढ़कर ३१.७ तक पहुंच गया (१९७१)।

संचार व परिबहन नगरीय कर्मिक संरचना का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र पाया गया। १९५१ में कानपुर में ४५.१ प्रतिशत जनसंख्या गृह उपज में लगी थी वह कम होकर १९७१ में ३०.२ प्रतिशत पायी गयी (चन्द्रशेखर १९७८:२९४)। इसी शहर के निवास प्रतिमान से यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पता चलता है कि ५०.० प्रतिशत लोग १ कमरे में रहते हैं। २ कमरे में रहने वाले २९.८ प्रतिशत थे। कानपुर में भारत के अन्य महानगरों की अपेक्षा कच्चे मिश्रित मकानों के आवास अधिक हैं। १९७१ के आंकड़ों के अनुसार २०.० प्रतिशत मकान कच्चे थे।[५]

(३) ग्रामीण नगरीय प्रवजन

उत्तर प्रदेश में ग्रामीण से नगरीय प्रवास ५२.० प्रतिशत पुरुष प्रवासी तथा २८.३८ प्रतिशत स्त्री प्रवासी का था (१९७१) जबकि भारत के कई राज्यों में इससे कम था। यह अन्य सभी राज्यों से अधिक है। ग्राम से नगर में पुरुष-स्त्रियों की अपेक्षा अधिक प्रवासित हुए। नगरीय प्रवास के अन्य प्रतिमान नगर से ग्राम (U-R) में दोनों का अनुपात कम पाया गया। नगर से नगर (U—H) प्रवासी में एक तिहाई से कम पाया गया, जबकि महाराष्ट्र में यह प्रक्षेत्र उच्च था। मध्य प्रदेश, बिहार की तुलना में उत्तर प्रदेश में प्रवासियों का नगरागमन अधिक पाया गया।

१९७१ के आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि आगामी वर्षों में प्रदेश के नगरीकरण में 'ग्रामीण प्रवजन' मुख्य उत्प्रेरक एवम् उत्प्रेक्षक कारक के रूप में सक्रिय रहेगा।

नगरीकरण के मुख्य तत्त्व (१) पुनरोत्पादक परिवर्तन (मृत्यु के ऊपर जन्म) तथा शुद्ध (Net) ग्रामीण-नगरीय प्रवजन है। नगरीय क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्र से यह दोनों प्रक्रियायें धीमी पाई जाती हैं। अतएव स्वामिक वृद्धि के अतिरिक्त प्रवजन-वृद्धि से नगरीय वृद्धि हो जाती है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि बहुधा नगरीकरण की दर ग्रामीण-नगरीय प्रवजन के दर के बराबर चलती है। संक्षेप में यह कारक नगरीकरण के 'गतिकी' के रूप में प्रकट होता है।

उत्तर प्रदेश में जन्म दर ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में नगरीय क्षेत्र में कम है। इसी प्रकार मृत्यु दर भी कम थी। शिशु मृत्यु दर भी कम है। यद्यपि राष्ट्रीय औसत से दोनों दर अधिक थी। सारिणीबद्ध तथ्य अवलोकनीय हैं।

	जन्म दर (प्रति हजार)	मृत्यु दर		शिशु मृत्यु दर
ग्रामीण	४६.३	२१.१		१७३.४
नगरीय	३४.५	१३.१		१२१.४
पुरुष	१५.५२	३.८४	५२.०	२८.६४
स्त्री	४०.६४	४.९४	२८.२	२६.७४

उत्तर प्रदेश में नगरीय वृद्धि की वर्तमान गति बड़े शहरों की ओर प्रेरित दिखाई पड़ती है। स्त्री-पुरुष अनुपात घटने, साक्षरता बढ़ने एवम् गंदी बस्तियों में अधिक से अधिक आबादी पहुंचने, नगरीय सुविधाओं का वितरण प्रति व्यक्ति कम उपलब्धता एवम् कानपुर जैसे शहर में कम कमरे में ४-५ व्यक्तियों के निवास का अवलोकन यह आभास देता है कि असन्तुलित नगरीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि से प्रदेश के नगरीकरण प्रारूप का प्रतिमान निर्देशित है। साथ ही पश्चिमी उत्तर प्रदेश का तीव्र आर्थिक विकास से जुड़ा नगरीकरण अलग चित्र प्रस्तुत करता है। ग्रामीण प्रव-जन की 'गतिकी' उपयोगी समाजशास्त्रीय उपकारण अनुसंधान योग्य है। नये नगरों के शरीर रचना शास्त्र का अध्ययन करने पर हमें और अधिक तथ्य प्राप्त हो सकते हैं।

१९७१ की तुलना में प्रदेश का तीव्र नगरीकरण होना अवश्यंभावी था। भविष्य में और बढ़ने की सम्भावना है। हाल के शोधों से ज्ञात होता है कि नगरीय वृद्धि के वास्तविक परिणाम, तीव्रता में आकलन की प्रबिधि में कई प्रकार की असंगति है, इसलिए 'संयोजित संकेतक' नहीं बन पाते। अलग-अलग शहरों के गतिशीलता आंकड़ों (मोबिलिटी टेबल्स) को देखना आवश्यक है एवम् 'प्रकार्यात्मक प्रकारिकी' को भी लेना चाहिये। (अशोक मित्र, १९८१, राकेश मोहन १९८२)।

उत्तर प्रदेश के नगरीय वृद्धि के आठवें दशक के आंकड़ों का परीक्षण व संस्तुतिकरण इस परिपेक्ष्य में प्रविधिकीय उन्नयन सहित किया जाये तो अधिक उपयोगी परिणाम प्रादेशिक नगरीय नियोजन नीति हेतु प्राप्त होंगे।

संदर्भ-सूची

1. Mishra, R. P. (ed.) : 1978 *Million Cities of India* P. 14
2. Bose, Ashish : 1971–81 Pattern of Urban Growth in Urban Growth and Urban planning : Political Context and Peoples priorities. (ed). I. S. I.
3. Chandrasekhara, C. S. : 1978 Kanpur An Industrial Metropolis in *Million Cities of India*, ed. R. P. Mishra, Vikas, p. 275.
4. Census of India : 1981 Uttar Pradesh Provisional Population Tables, series 22, Paper I of 1981, Ravindra Gupta, P. 32.
5. Mitra Ashok et. al. ; 1981 *Shifts in the Function of Cities and Towns of India, 1961-71*, Abhinay Publications P. 51-52,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6. Joshi, M. C. 1975 : Urban and Industrial Growth of Kanpur, *Civic Affairs* Vol. 22 (6) 81–83. Mitra, P. C. : Housing Problem in Greater Kanpur. A suggestion, *Civic Affairs* Vol. 22(4). Nov. 1974, p. 13–17.

7. Saxena, D. P. : 1977 Rural Urban Migration in India Causes and Consequences, Popu lar, Bombay, p. 5.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा छात्राओं के सांस्कृतिक दृष्टिकोण

कु० ललिता शर्मा

विषय प्रवेश

रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (१९८५) की एम० ए० उत्तरार्द्ध की परीक्षा के लिए स्वीकृत लेखिका का 'परियोजना प्रतिवेदन' प्रस्तुत निबन्ध का आधार है। प्रस्तुत अध्ययन में अनुसूची एवं साक्षात्कार विधि के माध्यम से आधुनिक युग की परिवर्ती सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में चान्दपुर नगर की ८० स्नातक एवं स्नातकोत्तर युवा छात्राओं के परिवर्तनोन्मुख सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमानों एवं मूल्यों को आँकने तथा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सम्प्रति भारत में सामुदायिक विकास योजनाओं, सहकारी संगठनों के विकास, लघु उद्योगों के विकास, पंचायतीराज व्यवस्था, लोकतान्त्रिक चुनाव, वयस्क मताधिकार, बढ़ती हुई राजनैतिक जागरूकता, जमीदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार कार्यक्रमों, विवाह, परिवार एवं सम्पत्ति के सम्बन्ध में नवीन सामाजिक विधानों, शिक्षा में प्रगति, यातायात एवं संचार के विकसित साधनों आदि ने देश में नवीन सामाजिकार्थिक परिवेश को जन्म दिया है। इन नूतन आर्थिक, राजनैतिक, प्रौद्योगिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर देश का सामाजिक संगठन, संस्थात्मक व्यवस्थाएँ तथा विचार एवं दृष्टिकोण क्रान्तिकारी परिवर्तन की तीव्र प्रक्रिया से गुजर रही है, देश में सामाजिक परिर्वतनों के इस तीव्र दौर से हमारी स्त्री युवा शक्ति भी अप्रभावित नहीं है। आज युवतियाँ धर्म, व्यवसाय, शिक्षा पद्धति, राजनैतिक व्यवस्था, फैशन, संस्कृति आदि के प्रति अपने विचारों एवं दृष्टिकोणों में परिवर्तनोन्मुख हैं। प्रस्तुत अध्ययन उनके परिवर्ती विचारों एवं दृष्टिकोणों को जानने की दिशा में एक प्रयास है।

उपलब्धियाँ

महात्मा गाँधी के शब्दों में, "शिक्षा से हमारा अभिप्राय बालक के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास है" किन्तु हमारी वर्तमान शिक्षा

कु० ललिता शर्मा, शोध छात्रा समाजशास्त्र, चान्दपुर, बिजनौर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्धति जीवन के किसी भी क्षेत्र की दृष्टि से उपयोगी नहीं रह गयी है चाहे वह ज्ञान का क्षेत्र हो या व्यावसायिक । वह तो मात्र बालक को सैद्धान्तिक ज्ञान से ओत-प्रोत करके व्यावसायिक क्षेत्र में मात्र शून्यता प्रदान कर यथार्थ के धरातल पर दिशाहीन भटकने के लिए छोड़ देती है । इस सम्बन्ध में छात्राओं से राय लेने पर ज्ञात हुआ (सारिणी संख्या—१) कि अधिकांश छात्राओं (८१.२५%) के विचार से वर्तमान शिक्षा पद्धति सामयिक आवश्यकताओं की दृष्टि से अनुपयुक्त एवं उद्देश्यहीन है । मात्र १८.७५ प्रतिशत छात्राओं की दृष्टि से वर्तमान शिक्षा पद्धति उपयुक्त है ।

उपर्युक्त के साथ-साथ यह भी देखने का प्रयास किया गया कि छात्राएँ सहशिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में क्या विचार रखती हैं । फलतः ज्ञात हुआ कि अधिकाँश छात्राएँ (७६.२५%) सहशिक्षा को उचित समझती हैं तथा मात्र २३.७५% छात्राओं के विचार सहशिक्षा के विपरीत हैं जिनमें से अधिकाँश ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित हैं । (सारिणी संख्या-२)

वहीं शासन व्यवस्था सफल एवं चिरस्थायी हो सकती है जो जनमत पर आधारित हो तथा जो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की प्रत्येक छोटी से छोटी इकाई की सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हो । अस्तु भारत लोकमत पर आधारित एक जनतान्त्रिक गणराज्य है इसकी सफलता के लिए आवश्यक है जनमत जागृति एवं राजनैतिक जागरूकता । इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह जानने का प्रयास किया गया कि अध्ययन से सम्बन्धित छात्राओं की वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था के प्रति क्या मनोवृत्ति है, वे इससे सन्तुष्ट हैं अथवा नहीं ? विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि मात्र १२.५०% छात्राएँ वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था को सन्तोषजनक समझती हैं तथा अधिकाँश छात्राएँ (७२.५०%) वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था से असन्तुष्ट हैं, १५% छात्राओं ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की । सम्भवतः उनमें राजनैतिक जगरूकता का पूर्णतः अभाव है । (सारिणी संख्या–३) ।

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त निम्न एवं दयनीय थी । राजनीति तो क्या, उन्हें परिवार की नीति में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सहशिक्षा, सहव्यवसाय, संयुक्त परिवार के विघटन आदि कारणों से स्त्रियों की दशा में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है । फलतः आज की स्त्रियाँ राजनीति की ओर पदार्पण कर रही हैं तथा सफल सिद्ध हो रही हैं । भारत की भूतपूर्व प्रधान मंत्री इन्दिरा गान्धी इसका ज्वलन्त उदाहरण है । अतः परिवर्तित राजनैतिक विचारों का अनुमान लगाने के लिए अध्ययन से सम्बन्धित छात्राओं से यह पूछा गया कि क्या वे महिलाओं के राजनीति में भाग लेने को उचित समझती हैं ? उपलब्ध तथ्यों (सारिणी संख्या-४) से स्पष्ट होता है कि अधिकाँश छात्राएँ (८३.७५%) महिलाओं के राजनीति में भाग लेने को एक प्रगतिशील कदम समझकर उपयुक्त मानती हैं, मात्र १३.७५% छात्राएँ इसे उचित नहीं समझतीं ।

आधुनिक समाज में सामान्यतः फैशन को रहन-सहन, वेशभूषा तथा भौतिक वस्तुओं में होने वाला परिवर्तन समझा जाता है क्योंकि आज समाज में व्यक्ति की स्थिति अधिकाधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख एवं ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने वाली भौतिक वस्तुओं से आँकी जाती है। इस मनोवृत्ति का सर्वाधिक शिकार युवापीढ़ी विशेषतः युवतियाँ होती हैं। अतः अध्ययन की छात्राओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या वे फैशन के अनुरूप चलना आवश्यक समझती हैं? प्राप्त आंकड़ों (सारिणी संख्या–५) से स्पष्ट होता है कि अधिकांश छात्राएँ (७२.५०प्रतिशत) फैशन के अनुरूप चलना आवश्यक समझती हैं, १७.५० प्रतिशत छात्राएँ फैशन को नहीं अपनाना चाहतीं तथा १० प्रतिशत छात्राएँ निरुत्तर रहीं। उल्लेखनीय है कि अधिकांश छात्राएं फैशन के अनुसार इसलिए चलना चाहती हैं कि यही समय की माँग है अन्यथा उन्हें पिछड़ा हुआ समझा जाएगा।

प्राचीन भारतीय समाज एक आध्यात्मिक समाज था जिसमें व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया धर्म से किसी न किसी रूप से सम्बन्धित एवं प्रभावित होती थी। इसके विपरीत आधुनिक समाज धर्म के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। आज व्यक्ति की मनोवृत्ति भौतिकवादी हो गई है। उसके जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति नहीं अपितु अधिक से अधिक सुख सम्पत्ति की प्राप्ति है जिसमें धन ही सहायक हो सकता है धर्म नहीं। इस सम्बन्ध में छात्राओं के विचार जानने से स्पष्ट होता है कि आधुनिक भौतिकवादी युग में भी अधिकांश छात्राओं ने (६८.७५ प्रतिशत) अपने जीवन में धर्म को अधिक महत्व दिया है। मात्र २५.०० प्रतिशत छात्राओं ने धन के पक्ष में अपनी राय व्यक्त की है तथा ६.२५ प्रतिशत छात्राओं ने इस सम्बन्ध में कोई प्रतिक्रिया प्रदर्शित नहीं की (सारिणी सं०–६)।

आधुनिक भौतिकतावादी समाज में पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण की प्रवृत्ति प्रत्येक स्तर एवं वर्ग के सदस्यों में तेजी से बढ़ रही है। आज जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे-रहन-सहन, वेशभूषा, बोलचाल के ढंग आदि में पाश्चात्य प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। विशेषतः युवापीढ़ी इसका अन्धानुकरण कर रही है। इस सन्दर्भ में यह जिज्ञासा हृदय से स्वभावतः जागृत होती है कि क्या हमारा भारतीय समाज अपनी प्राचीन संस्कृति को महत्वहीन समझता है या उसे पूर्णतः भूल चुका है या फिर मात्र दिखावे के लिए पाश्चात्य संस्कृति का अनुसरण कर रहा है। इस सम्बन्ध में छात्राओं के विचारों (सारिणी सं०-७) से स्पष्ट होता है कि अधिकांश छात्राएं (६५.००%) भारतीय संस्कृति की पक्षधर हैं तथा मात्र १० प्रतिशत छात्राएं पाश्चात्य संस्कृति को अपनाना चाहती हैं तथा २५ प्रतिशत छात्राएं मिश्रित संस्कृति को, जो पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति का संयुक्त रूप है, पसन्द करती हैं।

परम्परागत भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति निम्न थी, उन्हें धर्म एवं समाज के ठेकेदारों के द्वारा बनाए गए कठोर सामाजिक व धार्मिक नियमों एवं निषेधों का शिकार होना पड़ता था। पुरुषों के साथ मेलजोल व व्यावसायिक क्षेत्र में साथ-साथ कार्य करना तो दूर की बात है स्त्रियों के द्वारा पुरुषों को देखना व बातचीत करना भी हेय समझा जाता था। किन्तु देश की स्वतन्त्रता के पश्चात स्त्रियों की दशा में उत्तरोत्तर सुधार हुआ है और वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कार्य कर रही हैं। इस सम्बन्ध में छात्राओं के विचार जानने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास किया गया जिससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश छात्राएं (६२.५० प्रतिशत) युवक-युवतियों के पारस्परिक मेलजोल को उचित समझती हैं तथा ३५ प्रतिशत छात्राएं इसे उचित नहीं समझतीं, २.५० प्रतिशत निरुत्तर रही (सारिणी संख्या–८)। यह जानने पर कि छात्राएं पुरुषों के साथ महिलाओं के कार्य करने के सम्बन्ध में क्या विचार रखती हैं, ज्ञात हुआ कि अधिकाँश छात्राओं (८६.२५ प्रतिशत) छात्राओं ने महिलाओं के पुरुषों के साथ कार्य करने को एक प्रगतिशील कदम मानते हुए स्वीकृति प्रदान की है। मात्र ३.७५ प्रतिशत छात्राओं ने साथ-साथ कार्य करने को असहमति प्रकट की है (सारिणी सं ९) सम्भवतः छात्राओं पर इस क्षेत्र में आधुनिकता का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

देश के परिवर्ती समाजार्थिक परिवेश में, जहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य कर रही हैं यह जानना भी आवश्यक समझा गया कि आज युवा छात्राएं महिला समुदाय के लिए कौन से व्यवसाय को अधिक उपयुक्त समझती हैं, इस सम्बन्ध में सम्बन्धित छात्राओं के विचारों (सारिणी संख्या-१०) से स्पष्ट होता है कि अधिकाँश छात्राएं (५२.५० प्रतिशत) महिलाओं के लिए अध्यापन व्यवसाय को उपयुक्त समझती हैं तथा २५ प्रतिशत छात्राओं के विचार से उनके लिए प्रत्येक व्यवसाय उपयुक्त है। उल्लेखनीय है कि ८.७५ प्रतिशत छात्राएँ महिलाओं द्वारा किसी भी व्यवसाय को अपनाने को उचित नहीं समझती, सम्भवतः उनके विचारों से महिलाओं का कर्मक्षेत्र परिवार है।

उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में युवा स्नातक एवं स्नातकोत्तर छात्राओं के विचार, दृष्टिकोण, आदर्श एवं मूल्य अर्थात सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तीव्र परिर्वतनों के प्रक्रम से गुजर रही है। आज अधिकाँश युवतियाँ सहशिक्षा को उचित समझती हैं, उनके विचार से महिलाओं का राजनीति में भाग लेना तथा पुरुषों के साथ मेलजोल व व्यवसाय करना अनुचित नहीं है। वरन यह भारतीय समाज व राष्ट्र की प्रगति की दिशा में एक ठोस कदम है उनके विचार से महिलाओं के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यवसाय अध्यापन है। वे वर्तमान शिक्षा पद्धति व राजनैतिक व्यवस्था की सामयिक परिस्थितियों में उपयुक्त नहीं समझती तथा वे अपने जीवन में धर्म तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को अधिक महत्व देती हैं। छात्राओं के इस समस्त विचारों में प्रौढ़ता एवं तर्कशीलता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। निष्कर्षतः उनके विचार एवं दृष्टिकोण परिवर्तनोन्मुख एवं प्रगतिशील हैं।

आभार

डॉ० जगदीश सिंह राठौर, अध्यक्ष स्नातकोत्तर समाज शास्त्र विभाग, जी० एस० एच० कालेज चान्दपुर (बिजनौर) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना लेखिका अपना पावन कर्त्तव्य समझती है जिन्होंने न केवल मार्गदर्शन किया अपितु लेख को अन्तिम रूप प्रदान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी संख्या १

वर्तमान शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में छात्राओं के विचार

शिक्षा पद्धति की उपयुक्तता	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
उपयुक्त है	१५	१८.७५
अनुपयुक्त है	६५	८१.२५
योग	८०	१००-००

सारिणी संख्या—२

सहशिक्षा के सम्बन्ध में छात्राओं के दृष्टिकोण

छात्राओं के दृष्टिकोण	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
सहशिक्षा से सहमत	६१	७६.२५
सहशिक्षा से असहमत	१९	२३.७५
योग	८०	१००.००

सारिणी संख्या—३

वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में छात्राओं के विचार एवं दृष्टिकोण

व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
सन्तोषजनक है	१०	१२.५०
सन्तोषजनक नहीं है	५८	७२.५०
कोई उत्तर नहीं	१२	१५.००
योग	८०	१००.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी संख्या—४

महिलाओं के राजनीति में भाग लेने के सम्बन्ध में छात्राओं के विचार

राजनीति में भाग लेना	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
उचित है	६७	८३.७५
अनुचित है	११	१३.७५
कोई उत्तर नहीं	२	२.५०
योग	८०	१००.००

सारिणी संख्या—५

फैशन के सम्बन्ध में छात्राओं के दृष्टिकोण

फैशन के अनुसार चलना	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
आवश्यक है	५८	७२.५०
आवश्यक नहीं है	१४	१७.५०
कोई उत्तर नहीं	८	१०.००
योग	८०	१००.००

सारिणी—६

जीवन में धर्म अथवा धन के महत्व के सम्बन्ध में छात्राओं के विचार

जीवन में महत्व	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
धर्म को	५५	६८.७५
धन को	२०	२५.००
कोई उत्तर नहीं	५	६.२५
योग	८०	१००.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी संख्या—७

सभ्यता एवं संस्कृति के सम्बन्ध में छात्राओं की रुचि

सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति रुचि	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
भारतीय	५२	६५.००
पाश्चात्य	८	१०.००
मिश्रित	२०	२५.००
योग	८०	१००.००

सारिणी संख्या—८

अविवाहित युवक-युवतियों के पारस्परिक मेलजोल के सम्बन्ध में छात्राओं के विचार

उचित है	५०	६२.५०
उचित नहीं है	२८	३५.००
कोई उत्तर नहीं	२	२.५०
योग	८०	१००.००

सारिणी संख्या—९

महिलाओं के पुरुषों के साथ कार्य करने के सम्बन्ध में छात्राओं के विचार

स्त्री-पुरुषों के साथ-साथ कार्य	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
करना चाहिए	६९	८६.२५
नहीं करना चाहिए	११	१३.७५
योग	८०	१००.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी संख्या—१०

छात्राओं की दृष्टि में महिलाओं के लिए उपयुक्त व्यवसाय

व्यवसाय	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
प्रत्येक व्यवसाय	२०	२५.००
अध्यापन	४२	५५.००
डाक्टर	४	५.००
वकील	३	३.७५
टी० वी० उद्घोषक	१	१.२५
बैंक सेवा	१	१.२५
विमान परिचारिका	१	१.२५
लिपिक	१	१.२५
कोई व्यवसाय नहीं	७	८.७५
योग	८०	१००.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान भारत की राजनैतिक संरचना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सत्य व्रत पाण्डे

[उत्तर प्रदेश समाजशास्त्र, परिषद के अष्टम सम्मेलन (५,६ एवं ७ जुलाई, १९८५), आगरा में राजनैतिक समाजशास्त्र विचार-गोष्ठी में प्रस्तुत पत्र]

वर्तमान भारत की राजनैतिक संरचना एवं तद्जनित राजनैतिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं, प्रक्रियाओं तथा अन्य पक्षों का अध्ययन एवं उन पर विचार अनेक विद्वानों द्वारा किया गया है परन्तु इनमें जो दृष्टिकोण प्रमुख रूप से उभर कर हमारे सामने आते हैं वे या तो विशुद्ध राजनीतिशास्त्रीय हैं या प्रबुद्ध पत्रकारीय । कतिपय समाजशास्त्रियों ने इस विषय को यदि अपने विचारार्थ अपनाया भी तो इसे उन्होंने भारत के आधुनिकीकरण की बृहत प्रक्रिया के अवधारणातमक अभिबन्ध के अन्तर्गत ही (गौण) स्थान दिया । इस प्रकार इस विषय को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अधिक से अधिक एक पक्ष मानकर संतोष कर लिया गया ।

उपरोक्त स्थिति के कारण एक साथ ही अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उठ जाते हैं । समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कम से कम यह मान्यता तो स्पष्ट ही है कि किसी भी समाज की राजनैतिक संरचना उस समाज के मौलिक जीवन-मूल्यों से जनित, विकसित एवं इसलिये अटूट रूप से संबंधित होती है न कि किसी ऐसी प्रक्रिया से जिसका स्वयं जन्म या विकास या जिसकी अभिव्यक्ति किसी अन्य समाज की संपूर्ण वैचारिकी या मानसिकता का परिणाम हो । इसलिये वर्तमान भारत की राजनैतिक संरचना को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का एक पक्ष मात्र मानना यह भ्रम उत्पन्न करता है कि जैसे भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया स्वयं भारतीय समाज के जीवन मूल्यों का परिणाम या उनकी ही अभिव्यक्ति है ।

सन् १९५० ई० का संविधान वर्तमान भारतीय राजनैतिक संरचना का जनक है । ब्रिटिश शासन की समाप्ति के पश्चात् भारत में जिस राजनैतिक-प्रशासानिक व्यवस्था का जन्म

डा० सत्यव्रत पांडेय, रीडर, समाज शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ उसका आधार स्रोत यही है। सम्पूर्ण संविधान की विशेषताओं का वर्णन तो नहीं किया जा सकता परन्तु जिस प्रमुख राजनैतिक संगठन को संविधान ने जन्म दिया वह है अनेक राज्यों के योग पर निर्मित संघात्मक राष्ट्र भारत (जिसे भारतीय संघ भी कहा जाता है)। भारतीय संघ के सभी राज्यों को स्वायत्तता (ऑटोनॉमी) प्राप्त है तथा इसलिये उनकी सरकार उनके प्रशासन तथा सुव्यवस्था के लिये उत्तरदायी है।

भारतीय संघ तथा इसके समस्त राज्यों की राजनैतिक संरचना द्विसदनात्मक संसदात्मक जनतांत्रिक प्रणाली (बाइकैमरल पार्लियामेन्टरी डेमोक्रैटिक सिस्टम) की पूर्वापेक्षाओं तथा मान्यताओं पर आधारित है। इसके कारण जिन राजनैतिक संस्थाओं ने जन्म लिया वे हैं दलगत राजनीति अर्थात् अनेकों राजनैतिक दलों का राजनैतिक सत्ता प्राप्ति के लिये संवैधानिक विधि द्वारा प्रयत्नशील होना, सामान्य मतदान के द्वारा जनप्रतिनिधियों का चयन, बहुमत प्राप्त दल को शासक दल की मान्यता मिलना (जिसके फलस्वरूप ही यह दल राजनैतिक सत्ता का अधिग्रहण करता है) एवं शासन के त्रिआयाभी संगठन (विधान मंडल, कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका) का एक अंग होते हुए भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता। इन संस्थाओं के सुचारु संचालन तथा जनहित की सर्वोच्च भावना को ध्यान में रखते हुए विधि-सम्मत प्रविधियों का भी जन्म हुआ। प्रशासन तथा न्याय के अनेकों क्षेत्रों में ब्रिटिश शासकों द्वारा विकसित अनेकों संस्थाओं को यह मानकर अपना लिया गया था कि बाद में उनका भारतीयकरण कर दिया जाएगा।

उपरोक्त राजनैतिक संस्थाएं भारतीय राजनैतिक संरचना का अति संक्षिप्तीकरण करती है परन्तु यह मानते हुए कि पाठक इस संरचना से विस्तृत रूप से अवगत हैं, हम अपने विचार को आगे बढ़ा सकते हैं। मूल संविधान तथा उसके लगभग पचास संशोधनों की मूल भावना भारत में स्वच्छ प्रशासन तथा सामान्य जन के हित में राजनैतिक व प्रशासनिक संस्थाओं का संचालन करता रहा है। लेकिन ऐसा होते हुए भी इस राजनैतिक संरचना की असफलता के प्रमाण सर्वत्र विद्यमान हैं जिसके कारण कुछ लोग ऐसा समझने के लिये स्वयं को बाध्य महसूस करते हैं कि संभवतः जनतांत्रिक राजनीति भारतीय समाज के लिये उपयुक्त नहीं है या यह कि भारतीय समाज इस प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था के लिये अनुपयुक्त है। इस पक्ष पर विचार कर लेना आवश्यक है।

भारतीय समाज में द्विसदनात्मक जनतांत्रिक व्यवस्था की असफलता का सर्वप्रमुख प्रमाण है इसके द्वारा जनित सार्वजनिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार जिसके सूक्ष्म स्वरूप भी विद्यमान हैं। इस व्यवस्था ने राजनैतिक क्रिया-क्षेत्र में मात्र एक ही मान्यता (या अमूल्य) को जन्म दिया है और वह है चुनाव में विजय। इस लक्ष्य की प्राप्ति ही महत्वपूर्ण है, साधन नहीं क्योंकि लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात् साधन स्वतः ही अपना औचित्य स्थापित कर लेते हैं। यह अमूल्य पाश्चात्य समाज के उपलब्धि वादी-मूल्य प्रधान मानसिकता का विकृत रूप ही है। स्पष्ट है कि इस 'परम उद्देश्य' की प्राप्ति के लिये आधुनिक राजनेता कोई भी मूल्य चुकाने के लिये तत्पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। व्यक्तिगत ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, समूह के लिये त्याग एवं उसके अहित को रोकने के लिये प्रयत्न करना इत्यादि ऐसे मूल्य हैं जो धीरे-धीरे अपना मौलिक अर्थ खोते जा रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में मतदाता को, विशेषकर चुनाव के अवसर पर नकद या वस्तु या सेवा के रूप में घूस दे देना तो एक नितांत सामान्य घटना बन चुकी है।

प्रसंगवश, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि चुनाव लड़ने के लिये और जीतने के लिये अनेकों मदों पर जो धन व्यय किया जाता है उसके सूत्र का प्रारंभिक बिन्दु कहां पर है। क्या कुछ चन्द पैसों या रूपयों की सामान्य-सदस्यता शुल्क से राजनैतिक दलों के पास यह धन एकत्र होता है ? यदि नहीं तो कहां से ? क्या एक अन्तुले के धनोपार्जन के रहस्य का भण्डाफोड़ हो जाना वर्समान स्थिति में कोई अन्तर उत्पन्न कर पाया है ? और फिर कितने अन्तुले ऐसे हैं जिनके रहस्यों का भण्डाफोड़ तो नहीं हुआ है परन्तु प्रबुद्ध वर्ग उन्हें जानता है। तो क्या लोकतांत्रिक व्यवस्था जिसका भारत में चयन कितनी ही उच्च आशाओं की पूर्ति हेतु किया गया था, उसके प्रतीक यही लोग होंगे ? यदि हां, तो यह इस प्रकार की राजनैतिक संरचना की अधोगति ही है जिसके कारण संरचना में ही निहित हैं, न कि संरचना से बाहर।

एक कठिनाई और भी है। यह सर्वविदित है कि वर्तमान भारत की आर्थिक व्यवस्था में काले धन की अवांछनीय भूमिका के कारण इसके द्वारा एक लगभग समानान्तर आर्थिक व्यवस्था का न केवल जन्म बल्कि विकास भी हो चुका है। इस काले धन के उत्पादन स्रोत कहां स्थित हैं और इसके प्रमुख उत्पादक कार्य क्या हैं, इसका वर्णन करने की आवश्यकता इस सभा के सामने नहीं प्रतीत होती है। काला धन सफेद होने में चुनावों की भूमिका अब एक सामान्य ज्ञान का विषय है जिसके लिये अर्थशास्त्री या समाजशास्त्री होना आवश्यक नहीं है। तो फिर काले धन की समस्या को समाप्त करने या इसके समाप्त होने का प्रश्न ही कहां उठता है। अन्य शब्दों में इस संरचना में निहित विसंगतियों के कारण ही वर्तमान भारत का आर्थिक क्रिया-क्षेत्र न केवल दूषित हो गया है बल्कि इसमें अनेक असन्तुलन उत्पन्न करने वाले कारक भी उत्पन्न हो गये हैं। कोटा, परमिट, लाइसेन्स का वितरण तथा सरकारी चिकित्सकों, अभियन्ताओं व अन्य उच्च अधिकारियों के वांछनीय स्थानान्तरण व नियुक्तियों में किन विशिष्ट कारकों का केन्द्रीय महत्व होता है, इसका वर्णन अनावश्यक है परन्तु यह संदेह किया जाता है कि इस क्रियाओं में सत्तारूढ़ राजनयिकों की धन-लिप्सा का विशिष्ट चालक तत्व क्रियाशील होता है। इन सभी स्रोतों एवं उद्योगपतियों से अर्जित किया गया धन व्यक्तिगत तथा दलगत स्थिति को सुदृढ़ करने में निश्चय ही सहायक सिद्ध होता है। दो माह पूर्व तक प्रचलित दल-बदल की राजनीति इसी तथ्य की पुष्टि करती थी।

इस समस्या का एक दूसरा पक्ष भी है। चूंकि चुमाव जीतकर राजनैतिक सत्ता का अधिग्रहण ही राजनैतिक जीवन का परम लक्ष्य बन गया है, इसलिये इसके आर्थिक पक्ष का सहयोगी पक्ष, जिसे हम "बल प्रयोग" कारक कह सकते हैं, भी इसके जुड़वां भाई के रूप में विद्यमान रहा है। मतदाताओं को हिंसा के प्रयोग की धमकी या भय दिखाकर उनका मत प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के अतिरिक्त कतिपय विशिष्ट परिवारों या वर्गों के लोगों को मतदान केन्द्र तक ही न पहुंचने देना भी इसी प्रविधि में सम्मिलित है। पुनश्च, मतदान केन्द्र अपहरण (बूथ कैपचरिंग) की घटनाओं से हम सभी लोग या तो अवगत हैं और या अनुभव-प्राप्त हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसा करने वाले लोग कौन हैं।

इसका उत्तर भी हम जानते हैं कि इनके दो उपसमूह है—प्रथम जो वास्तविक अर्थात शारीरिक रूप में इस समाज विरोधी क्रिया के लिए सामने आते हैं और प्रायः अत्याधुनिक अस्त्रों और शस्त्रों से लैस होते हैं, जिन्हें हम पेशेवर हत्यारों, कुख्यात डाकुओं तथा गुन्डों के नाम से जानते हैं एवं द्वितीय वे जिन्हें मत प्राप्ति में इनकी सहायता की आवश्यकता होती है अर्थात् स्वयं राजनयिक। दूसरा उपसमूह पहले का पोषक है। यह कोई सूचना का विषय नहीं है कि प्रायः सभी कुख्यात समाज विरोधी तत्वों को राजनैतिक-संरक्षण अर्थात विधायकों या सांसदों या अन्य राजनैतिक दलालों का संरक्षण और आशीर्वाद प्राप्त होता है। इनमें से अनेक तो स्वयं विधायक या सांसद का चुनाव न केवल लड़ते हैं बल्कि जीत भी जाते हैं। व्यक्तिगत उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। अस्तु, यह स्वयं ही समझा जा सकता है कि पुलिस विभाग अर्थात् वेतनभोगी पुलिस-कर्मी कैसे कार्यनिष्ठ हों। परिणाम सबके सामने है। हम जिस व्यवस्था में जी रहे हैं उसका प्रत्येक भाग इन्हीं तत्वों के हाथ में गिरवी रखा हुआ है।

हम अपने विचार के समर्थन में एक अन्य राजनैतिक घटना (फिनामिनन) की सहायता लेना चाहते हैं और वह है मतदान की निम्न दर या प्रतिशत। किसी विशिष्ट कारण या कारणों से उत्पन्न किसी प्रकार की 'लहर' को छोड़कर यदि हम ध्यान दें तो सामान्यतया यह दर मतदाताओं की कुल संख्या के ३० प्रतिशत से ५० प्रतिशत के बीच में केन्द्रित होती है। क्या यह वर्तमान राजनैतिक संरचना का मखौल नहीं है कि मतदाताओं का प्रायः आधा या उससे अधिक भाग मतदान ही नहीं करता है। यह उदासीनता किस तथ्य की परिचायक है। यह तथ्य कि मतदाताओं की कुल संख्या में से यदि पांचवा भाग भी किसी एक राजनैतिक दल को प्राप्त हो जाता है तो अन्य दलों की बहुलता के कारण वही दल शासक दल भी बन जाता है क्या बहुमत प्राप्ति का वास्तविक संकेत है? उत्तर स्पष्ट ही नकारात्मक है। तो इस राजनैतिक संरचना की असफलता का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है।

जिस प्रकार की जनतांत्रिक राजनैतिक संरचना का चयन भारत के लिये किया गया था उसकी एक पूर्वापेक्षा यह है कि चुनाव के जीतने के लिये या चुनावी प्रचार के लिये सरकारी तंत्र का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। हम सभी लोग भारतीय संदर्भ में इस पूर्वापेक्षा की हास्यास्पदता से भलीभांति परिचित हैं। इसका उल्लंघन कभी-कभी तो बहुत ही भोंडे ढंग से होता है। समकालीन गुजरात की स्थिति हमारे सामने है। परन्तु प्रायः ऐसा उल्लंघन सूक्ष्म होता है जैसे चुनावों के कुछ माह पूर्व से ही समस्त आवश्यक उपभोग की वस्तुओं की भरपूर उपलब्धि/सेवारत कर्मचारियों के वेतन भत्तों में वृद्धि या अन्य मांगों की स्वीकृति या कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य वर्गों की मांगों को इसी कारण स्वीकार कर लेना इत्यादि इसके कतिपय उदाहरण हैं। सरकारी वाहनों एवं जनसंचार के साधनों के सत्तारूढ़ दल द्वारा प्रयोग का तथ्य कौन नहीं जानता है। कई बार तो चुनाव जीतने में सहायक उच्च अधिकारियों का स्थानान्तरण एवं नियुक्तियां भी उनकी इसी 'उपयुक्तता' को ध्यान में रखकर की जाती हैं और जीत जाने पर संबंधित दल की सरकार ऐसे अधिकारियों को सूक्ष्म रूप में "पुरस्कृत" भी करती हैं।

जनतांत्रिक व्यवस्थाओं में चुनावी प्रत्याशी की व्यक्तिगत योग्यता या उसकी सार्वजनिक छवि और लोकप्रियता का विचार प्रत्याशी चयनकर्ताओं के सम्मुख सर्वप्रथम महत्व का होता है। भारतीय संदर्भ में 'निश्चित जीत' वाले प्रत्याशी के व्यक्तिगत-परम्परात्मक पृष्ठभूमि के सम्मुख यह विचार गौण है। अर्थात् चुनाव में विजय प्राप्ति की संभावना वाले प्रत्याशी कितने भी अयोग्य क्यों न हों, उनके लिये योग्यता प्राप्त प्रत्याशी की बलि चढ़ा दी जाती है। वास्तव में यह प्रक्रिया प्रत्याशी-चयन की वृहत प्रक्रिया का एक पक्ष मात्र है। प्रत्याशियों के चयन में योग्यता संभवतः जोखिम मानदण्ड होता है जिसके प्रयोग की वास्तविक संभावनाएं प्रायः नगण्य होती हैं।

इसी संदर्भ में जाति और धर्म की भूमिकाएं भी अर्थपूर्ण हैं। यद्यपि राजनेता अपने प्रत्येक सार्वजनिक भाषण या वक्तव्य में इन्हें ही राजनीतिक जीवन की सबसे निकृष्ट बुराइयां कहता है तथापि क्या कारण है कि यादव-बहुल चुनाव-क्षेत्र से यादव, मुस्लिम-बहुल चुनाव-क्षेत्र से कोई न कोई मुसलमान प्रत्याशी, जाट-बहुल क्षेत्र से जाट ही क्रमशः चुनाव लड़ने के लिये सामने लाए जाते हैं। चुनावों से पूर्व 'टिकट' वितरण की प्रक्रिया के समय चुनाव प्रत्याशी बनने हेतु जिस प्रकार की असामान्य आपाधापी, भागदौड़, जोर-दबाव, तथा व्यक्तिगत प्रभाव का प्रयोग इत्यादि देखने को मिलता है उससे न केवल भारतीय राजनीति में सहभागिता करने वालों की गम्भीरता का परिचय मिलता है बल्कि स्वयं इस प्रकार की राजनैतिक संरचना की भारतीय समाज के लिए अनुपयुक्तता का भी बार-बार संकेत मिलता है। चुनाव के समय पर मतप्राप्ति हेतु तथाकथित विवेकहीन तत्व (इर्रेशनल एलीमेन्ट्स) जैसे जाति एवं धर्म (की भावनाओं) का जिस प्रकार शोषण किया जाता है और परिणामस्वरूप जो विजय (या दूसरे प्रत्याशी की पराजय) हाथ लगती है क्या वह इस विवेक-प्रधान संरचनात्मक व्यवस्था को एक हास्य-प्रधान नाटक के समकक्ष नहीं लाती है?

किसी समय कुछ जातियों को 'अनुसूचित' और कुछ सांस्कृतिक समूहों को 'अनुसूचित जनजाति' मानकर ऐतिहासिक कारणों से प्रेरित होते हुए उन्हें अपना जीवन-स्तर उच्च करने के लिए एक निश्चित समय (१० वर्ष) तक कुछ विशिष्ट सुविधाएं एवं अधिकार दिये गये थे जो अवधि अब तक कई बार बढ़ाई जाती रही है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि आरक्षण नीति तथा योग्यता को साथ-साथ ले चलना न केवल इस राजनैतिक व्यवस्था के दुहरे मानदण्डों को उजागर करती है बल्कि यह भी कि ये तथाकथित दुर्बल वर्ग मत-बैंकों के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं जिस कारण उन्हें ये 'सुविधाएं' उपलब्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त वर्णन प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था के व्यावहारिक पक्ष की झलकी मात्र है। विषय के विस्तार से सभा अवगत हैं। मुख्य विषय यह है कि ऐसी स्थिति जिसकी संभावना नहीं थी क्यों उत्पन्न हुई और वांछनीय राजनैतिक समाजीकरण क्यों नहीं उपलब्ध हो सका। और यह भी कि इसके लिये दोषी कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर उसी समय मिल सकता है जब कि हम समाज या सामाजिक व्यवस्थाओं के जन्म एवं विकास के नियम को ध्यान में रखें क्योंकि तभी हमारा विश्लेषण एवं मूल्यांकन वास्तविक अर्थ में समाजशास्त्रीय हो सकता है।

सुदूरभूत में न जाकर हम यदि बीसवीं सदी के ही आरवाल्ड स्पेंगलर जैसे महान सामाजिक-दार्शनिक एवं पी०ए० सोरोकिन जैसे महान समाजशास्त्री के विचारों पर दृष्टिपात करें तो हमारे इस विचार की और भी पुष्टि होती है कि कोई भी समाज किसी एक या उससे आबद्ध कुछ विशिष्ट जीवन-मूल्य (मूल्यों) से उत्पन्न होता है और उसी को केन्द्रविन्दु मानकर उसमें सामाजिक संगठन की प्रक्रिया संचालित होती है। अन्य शब्दों में, समाजों का जन्म और उनका विकास एक स्वाभाविक या प्राकृतिक घटना है वैसे ही जैसे जीवधारियों का जन्म और विकास। वह समाज संगठन के विभिन्न स्तरों पर अर्थात् सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में उसी मूल्य को अभिव्यक्त करता है। अर्थात् एक समाज स्वयं किसी एक ऐसे मूल्य की अभिव्यक्ति है जो शाश्वत होता है और इसलिए उस समाज के विकास की प्रत्येक अवस्था और स्थिति में वह प्रतिबिम्बित होता रहता है। सामाजिक व्यवस्था के प्रत्येक भाग इसी परम सत्य की ही विशिष्ट अभिव्यक्ति होता है। सामाजिक विकास तथा परिवर्तन का नियम इसी मौलिक सत्य पर आधारित है और सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक गतिशास्त्र की आधारभूत मान्यता यही है। इस मूल्य के विकास की संभावनाएं अनन्त हैं और इसलिये किसी भी समाज में परिवर्तन और रूपान्तरण की प्रक्रियाओं के स्वरूप और उनकी आधारभूत मान्यताओं को इस दृष्टिकोण से समझने और परखने की सावधानी स्पष्ट हो जानी चाहिए।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य द्वारा किया गया कोई ऐसा कार्य या प्रयत्न जो स्वयं प्रकृति के नियमों के विपरीत हो या उससे अलग हटा हुआ हो, अंततोगत्वा सफल नहीं हो सकता है। प्रकृति अपने स्व को प्रतिस्थापित करती है। यह कहा जाय कि मूल स्वभाव कृत्रिमता पर विजयी होता रहता है। जो जीवन-मूल्य एक समाज के जन्म और विकास में अंतर्निहित है उन्हें नकारा कैसे जा सकता है या उन पर कृत्रिमता का आवरण डालकर उस आवरण को ही वास्तविक कैसे माना जा सकता है। हमें भारतीय समाज के जन्म और उसके अब तक के विकास की प्रक्रिया को इसी दृष्टिकोण से देखना होगा और तभी वास्तविक व्यावहारिक स्थिति का अर्थ-पूर्ण समाजशास्त्रीय विश्लेषण हो सकना संभव है।

जहाँ तक वर्तमान भारत की राजनैतिक संरचना का प्रश्न है, संभवतः उपस्थित विद्वानों को वास्तविक स्थिति स्पष्ट हो गई होगी। कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारी वर्तमान राजनैतिक संरचना और तद्भासित व्यवस्था पाश्चात्य समाज विशेषकर ब्रिटिश समाज की अनुकृति है और इसलिये कृत्रिम है, न कि वास्तविक और स्वाभाविक। इसे हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत को 'आधुनिक' समाज बनाने के प्रलोभन को संवरण न कर पाने के कारण पश्चिम से उधार लिया है। बिना इस पर विचार किए हुए कि हम जो वस्तु (या विचार) उधार ले रहे हैं उसका पूर्वातिहास क्या है और वह किन मूल्यों की अभिव्यक्ति पर आधारित है।

संरचनात्मक दृष्टिकोण से वर्तमान जनतांत्रिक व्यवस्था पाश्चात्य पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था का राजनैतिक आदर्श है जिसके मूल में उपचार-बौद्धिक मौलिकता, व्यक्तिवाद तथा व्यष्टिवाद, प्रतिस्पर्धा तथा प्रतिस्पर्धात्मक योग्यता, व्यक्तिगत भौतिक उपलब्धि, भौतिकवाद (शारीरिक सुख व समृद्धि के अर्थ में) एवं संकुचित विज्ञानवाद जैसे मूल्य अंतर्निहित हैं। अन्य शब्दों में, यह राजनैतिक संरचना इन्हीं मूल्यों से उत्पन्न सांसारिक-दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति या उसका प्रतिफल है तथा इसी मूल्यात्मक संदर्श में अपनी सार्थकता को बनाए रह सकती है।

भारतीय समाज को जन्म देने वाले और इसके संगठन में अंतर्निहित मूल्य उपरोक्त मूल्यों से न केवल भिन्न हैं बल्कि उनके विपरीत भी हैं। इसलिये पाश्चात्य समाज के लिये स्वाभाविक और उपयुक्त यह राजनैतिक संरचना भारतीय सामाजिक वास्तविकता और स्वभाव के विपरीत है अर्थात् अस्वाभाविक है। कृत्रिमता वास्तविकता नहीं बन सकती और ऐसे सभी प्रयत्न प्राकृतिक नियम के अनुरूप ही असफल सिद्ध होते हैं। आज यदि वर्तमान समय में भी भारत में जाति एक प्रमुख राजनैतिक दबाव समूह बन गई है तो इसका अर्थ यही है कि जातीय-मूल्य में ही इसे एक राजनैतिक समूह में रूपान्तरित करने की संभावनाएं निहित थीं। अस्तु, भारत में वर्तमान जनतांत्रिक राजनैतिक संरचना पर आधारित व्यवस्था की असफलता किसी समाजशास्त्रीय आश्चर्य की भावना नहीं उत्पन्न करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे देवी देवता

टी० आर० सिंह

धार्मिक व्यवहार में अलौकिक शक्ति, धार्मिक विशेषज्ञ, सामाजिक मूल्य तथा सामाजिक संरचना के तत्व निहित हैं। इन तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करके धार्मिक संस्थाओं को समझा जा सकता है। अलौकिक शक्तियों में देवी, देवता, भूत, प्रेत, पीर तथा ओपरा महत्वपूर्ण हैं। देवी से तात्पर्य माता, माता के विभिन्न स्वरूपों से लिया जाता है। किन्तु देवता शब्द का प्रयोग पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दो अलग-अलग अर्थों में होता है। प्रथम अर्थ में देवता स्वयंभू, स्वयंभू द्वारा सृजन किये हुए तथा उनके अवतार हैं। दूसरे अर्थ में निःसन्तान, अविवाहित, अपंग या असामयिक और असामान्य परिस्थितियों में मृत व्यक्ति की असंतुष्ट आत्मा या प्रेत को विधिवत शान्त करके उसे देवता के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। उसके लिए खेत, खलिहान, या घर के आस-पास एक 'थान' बनाकर पूजा की जाती है। भूत, प्रेत, चुड़ैल, पीर मृत व्यक्तियों के प्रेतों के अलग-अलग स्वरूप हैं। धार्मिक विशेषज्ञों में पुरोहित, पुजारी, पुच्छा, सियाना, भगत, बाबा, सन्त, ओपरावाला आदि आते हैं। सामाजिक संरचना में व्यक्ति की परिस्थति को निर्धारित करने वाले तत्त्व जैसे जाति, व्यवसाय, अपवित्रता-पवित्रता, शाकाहारी-मांसाहारी भोजन, शान्त-उग्र प्रवृत्ति, पूजा-पाठ विधि · आदि धार्मिक विशेषज्ञों और उनके अलौकिक शक्तियों पर लगभग समान रूप से लागू होते हैं। इसलिए धार्मिक संस्थाओं का अध्ययन सामाजिक संरचना से अलग करके नहीं किया जा सकता।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में धार्मिक संस्थाओं के व्यवस्थित अध्ययन बहुत कम हैं। पोलिन कोलैण्डा (Pauline Kolenda) ने ग्राम रणखण्डी के अनुसूचित जाति के लोगों के देवी-देवताओं का अध्ययन किया। माइकिल महार (Michael Mahar) ने उसी गाँव के त्यौहारों का विश्लेषण किया। वर्तमान लेखक के अध्ययनों से प्रदेश के कुछ देवी-देवताओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। वर्तमान अध्ययन के लिए कुछ गाँवों का सर्वेक्षण करके पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाये जाने वाले देवी-देवताओं की एक सूची तैयार की गई है। इस सूचि में लगभग पचास महत्वपूर्ण अलौकिक शक्तियों को सम्मिलित किया गया है। निम्न तालिका में इनको, इनके गुण, शक्ति, पुरोहित, पूजा-पाठ विधि, प्रसाद, विस्तार आदि के आधार पर तीन श्रेणियों तथा नौ वर्गों में बांटा गया है।

डा० टी० आर० सिंह, समाजशास्त्र विभाग, बी० एस० एम० कालेज, रूड़की में प्रवक्ता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका

हिन्दू देवी देवता	हिन्दू प्रेत-आत्माएं	मुस्लिम प्रेत-आत्माएं	मुस्लिम सन्त-आत्माएं
(अ) अखिल भारतीय विस्तार वाले			
(१)			(२)
१. ब्रह्मा, विष्णु, महेश और उनके अवतार			११. साबिर अलाउद्दीन
२. लक्ष्मी			१२. किलकिली साहब
३. पार्वती इनके विभिन्न स्वरूप			१३. गायब शाह
४. सरस्वती			१४. इमाम साहब
५. हनुमान			
६. गणेश			
७. सत्य नारायण			
८. गंगा, गौरी			
९. काली			
१०. दुर्गा			
(ब) प्रादेशिक या क्षेत्रीय विस्तार वाले			
(३)	(४)	(५)	(६)
१५. मनसा, चण्डी	२६. नरसिंह	३६. सरवर	४२. नौराजा
१६. शाकुम्बरी	२७. चेहड़ मल	३७. दरिया	४३. काठे वाला
१७. बाला सुन्दरी	२८. भूरा देव	३८. ख्वाजा	४४. विलायत शाह
१८. काली	२९. काली सिंह	३९. गुग्घा पीर	४५. पुलवाला
१९. होई	३०. महासिंह या हरी सिंह	४०. सैयद	
२०. सांझी		४१. सिरकट	
२१. सती	३१. बागड़ वाला		
२२. गोधन	३२. सुन्ना वाला बाबा		
२३. सन्तोषी	३३. रहदास		
२४. बूढ़ा बाबू	३४. बाल्मिकी		
२५. भूमिया या खेड़ा	३५. बाबा साहब		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स) स्थानीय विस्तार वाले

(७)	(८)	(९)
४६. स्टोव देवता	४८. गान्धी बाबा	मुस्लिम पीर
४७. जलेबी वाली माता	४९. पारिवारिक 'देवता'	

(अ) अखिल भारतीय स्तर वाले देवी-देवता

(१) इस वर्ग में आने वाले सभी देवी-देवताओं की उत्पत्ति, शक्ति, पूजा-पाठ विधि आदि का वर्णन संस्कृत ग्रन्थों में उपलब्ध है। शान्ति, समृद्धि, स्वास्थ्य के लिए इनकी पूजा की जाती है। हिन्दुओं के घरों में इनकी तस्वीरों की पूजा की जाती है।

(२) अखिल भारतीय विस्तार वाले पीरों में साबिर अलाउद्दीन, किलकिली साहब, इमाम साहब तथा गायब शाह महत्त्वपूर्ण हैं। यह सभी पीरान-ए-कलियर में (सहारनपुर जनपद) में है। साबिर साहब शान्त स्वभाव, रहमदिल और तुरन्त मन्नत पूरा करने वाले पीर समझे जाते हैं। वे अत्यन्त क्रोधी भी हैं। कहा जाता है कि एक बार वे नमाज के लिए पहली सफ में खड़े हुए। एक स्थानीय व्यक्ति ने उन्हें वहाँ से हट जाने पर इसरार किया। इस पर साबिर साहब को बहुत गुस्सा आया। मगर उन्होंने केवल इतना कहा "अच्छा, मैं जाता हूं। मगर मेरे जाने के बाद न तुम रहोगे न तुम्हारी इबादत गाह" इबादतगाह के बाहर निकलते ही सारा नगर जल कर नष्ट हो गया।

साबिर साहब की दरगाह गंगा नहर के पश्चिम में है। नहर के पूरब में किलकिली साहब की दरगाह है। विश्वास किया जाता है कि किलकिली साहब अपार अलौकिक शक्ति वाले व्यक्ति थे। जंगे-मैदान में जब वे चिल्लाते, जितनी दूर उनकी आवाज जाती, उतनी दूर तक शत्रु के हथियार प्रभावहीन हो जाते।

नहर के किनारे ही गायब शाह की दरगाह है। इनके बारे में रिवायत मशहूर है कि गंगा नहर बनते समय इनकी दरगाह नहर में आ गयी थी। अंग्रेज सरकार के आदेशानुसार नहर सीधी ही खुदनी थी। दरगाह को बचाना असम्भव था। हर रोज मजार हटाकर दीवार खड़ी की जाती और सुबह ही दीवार टूटी मिलती। एक दिन एक बूढ़े आदमी की सलाह पर नहर के किनारे एक दरगाह बनायी गई। जुमे की सुबह मजार हटाकर शाम को नहर का पानी रवां किया गया।

विश्वास किया जाता-है कि सभी पीर जुमे के दिन नमाज अदा करने के लिए अपनी कब्र के बाहर आ जाते हैं। इसी तरह गायब शाह जुमे की नमाज पढ़कर शाम को अपनी दरगाह पहुंचे तो देखा कि उनकी मजार पर से नहर का पानी बह रहा है। नहर के किनारे बने खाली मजार को उन्होंने अपना ठिकाना बना लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायब शाह फोड़ा, फुंसी, मस्से जैसी शिकायतों को बखूबी दूर करते हैं। इनके मजार पर एक झाड़ू, पंखा और पाँच मुट्ठी नमक चढ़ाया जाता है।

साबिर साहब, किलकिली साहब तथा अन्य पीरों को बरफी, जलेबी, इलाइची दाना, बताशा चादर आदि चढ़ाये जाते हैं। साबिर साहब की सेवा करने से सन्तान प्राप्ति और हर किस्म के दुःख दूर होते हैं।

इन पीरों की पूजा हिन्दुओं द्वारा भी की जाती है। कलियर के मेले में हिन्दुओं की संख्या पर्याप्त होती है।

(ब) प्रादेशिक देवी-देवता

(३) प्रादेशिक स्तर के ११ देवी-देवताओं में से चार के मन्दिर सहारनपुर जनपद में हरिद्वार, जसमौर और देवबन्द में हैं। गंगा स्नान करने वालों में से अनेक मनसा देवी और चण्डी देवी के दर्शन भी कर लेते हैं। मनसा देवी का मन्दिर एक ऊँची पहाड़ी पर है। गंगा की दूसरी ओर पहाड़ी पर चण्डी देवी का मन्दिर है। शाकुम्बरी का मेला जसमौर से कुछ दूर हर चौदस पर लगता है। किन्तु इनका मेला अक्तूबर में विशाल पैमाने पर आयोजित किया जाता है। मन्दिर से कुछ दूर भूरा देव का 'थान' है।

शाकुम्बरी देवी के बारे में अनेक परम्पराएं हैं। मारकण्डेय पुराण के अनुसार एक समय धरती पर इतना भयंकर अकाल पड़ा कि सारे पेड़-पौधे सूख गये। भूख-प्यास से पीड़ित ऋषि-मुनियों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर माता ने स्वयं अपने शरीर से शाक-पात उत्पन्न करके धरती को भर दिया था। इसलिये इसे शाकुम्बरी या शताक्षी कहा जाता है।

बाला सुन्दरी का मेला जून में आयोजित किया जाता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में इस मेले को चमार चौदस भी कहा जाता है। अतीत में अधिकांश चमार किसानों के हाली के रूप में काम करते थे। किसान और हाली के बीच संविदा का अन्तिम दिन यह चौदस ही समझा जाता था। संविदा के अन्तिम कार्य के रूप में चमार-हाली विटौडे की चोटी बांध कर माता के दर्शन के लिए देवबन्द चला जाता था। इसलिए आज भी कुछ लोग इसे चमार-चौदस कहते हैं।

बाला सुन्दरी माता सती का सूक्ष्म रूप है। माता सती के अनेक खण्डों में से एक खण्ड से बाला सुन्दरी की उत्पत्ति हुई।

बाला सुन्दरी सात्विक और शाकाहारी हैं। किन्तु इनकी प्रतिमा के पीछे बकरों की बलि दी जाती थी। प्रतीक के रूप में आज भी मेले के समय कई लोग माता को बकरा चढ़ाते हैं।

बाला सुन्दरी के मन्दिर के सामने एक सरोवर है। उसके पूरब और उत्तर में अनेक सतियों के 'थान' बने हुए हैं। कहा जाता है कि ये सतियाँ औरंगजेब के जमाने की हैं। औरंग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेब द्वारा लगाये गये जजिया कर के विरोध में देवबन्द के आस-पास के कई हिन्दू मारे गये थे। इन मृत व्यक्तियों की स्त्रियों ने आत्मदाह किया और उनकी याद में यह सतियों के थान बनाये गये हैं ।

होई माता की पूजा सन्तान की सुरक्षा और दीर्घायु के लिए की जाती है। घर की दीवारों पर होई का चित्र बनाकर या बाजार से खरीदी हुई तस्वीर में बच्चों के नाम लिख कर पूजा की जाती है। होई से सम्बन्धित अनेक मिथक प्रचलित हैं। उनमें से एक के अनुसार माता की पूजा के लिए सात बहुएं तथा उनकी ननद मिट्टी लेने के लिये जाती हैं। मिट्टी खोदते समय ननद से सेई का एक बच्चा मर जाता है। माता प्रकट होकर शाप देती है कि तुम्हारे सभी बच्चे मर जायेंगे। तुम में से कोई एक अपनी कोख बंधवा ले तो उसका शाप हट जायेगा। लेकिन कोई भी बहू उसके लिए तैयार नहीं होती। अन्त में बड़ी बहू अपनी कोख बंधवा लेती है। घर जाकर वह देखती है कि उसके सभी बच्चे मर गये। उसकी सास सभी बातें जानकर उसे घर से बाहर निकाल देती है। कुछ दिन बाद किसी औरत के कहने पर उसने होई की पूजा की और उसके सभी बच्चे जिन्दा हो गये।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अधिकांश गाँवों में माताएं सोहू पहनती हैं। इस माला में पुत्र और पुत्र-वधू के लिये एक-एक दाना होता है। पुत्र या पुत्र-वधू की मृत्यु पर एक दाने को माला से अलग कर दिया जाता है।

भंगियों वाली माता या काली प्रत्येक गाँव में होती हैं। इसके लिए गाँव के बाहर एक थान बना हुआ होता है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसकी देख-रेख भंगी करता है। इसकी पूजा के लिये भंगी की उपस्थिति अनिवार्य है। इस माता के थान पर पूजा के समय दीप नहीं जलाया जाता। अंधेरे में औरतें हलवा-पूरी थान के पास ले जाती हैं, आधा भाग माता के थान के आगे रख दिया जाता है। कहीं-कहीं प्रसाद चढ़ाने का कार्य भंगी द्वारा किया जाता है। भंगी मुर्गे की दोनों टांगें पकड़ कर बच्चों पर से घुमाता है जिससे भूत-प्रेत से सुरक्षा होती है।

भंगियों वाली माता का सम्बन्ध कृष्ण या प्रहलाद से जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि पूतना की गोद में बिठाकर कृष्ण को आग लगा दी गई। कृष्ण पूतना सहित आकाश में उड़े और वहां से पूतना को पत्थर पर पटक दिया। फिर ध्यान आया कि कृष्ण ने उसके स्तन का दूध पिया है। इसलिए कृष्ण ने कहा, "कलियुग में तुम्हारी पूजा होगी। भंगी तुम्हारा पुजारी होगा। भंगी द्वारा चढ़ाया प्रसाद सबको मान्य होगा।"

बूढ़ा बाबू फोड़े फुन्सी के देवता हैं। इनके थान अनेक गाँवों में हैं। वर्षा से पूर्व इनके सम्मान में मेले का आयोजन किया जाता है।

भूमिया या खेड़ा, गाँव के देवी-देवताओं, मनुष्यों और अन्य प्राणियों का राजा समझा जाता है। इसका थान गाँव के किसी भाग में हो सकता है। इसकी पूजा बरसात से पहले की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। आजादी से पहले इसकी पूजा के समय बकरा, मुर्गा आदि की बलि दी जाती थी। कटड़ा, बछड़ा भी इनके नाम पर छोड़ दिया जाता था। वर्तमान समय में हवन किया जाता है और हलवा पूरी चढ़ाई जाती है।

भूमिया के जग या पूजा की दो तीन प्रमुख बातें हैं। पूजा के दिन गाँव के सारे भूत-प्रेत आदि को गाँव से बाहर किया जाता है। मनुष्यों एवं पशुओं के स्वास्थ्य के लिए जल छिड़काया जाता है। गाँव की सीमाओं के बाहर से आक्रमण करने वाली अलौकिक शक्तियों से सुरक्षा के लिए गांव की सीमाओं पर जल व मदिरा की धारा दी जाती है। कहीं-कहीं औरतों के नाचने की प्रथा भी पाई जाती है। इनकी पूजा समय-समय पर विशेष रूप से विवाह के अवसर पर की जाती है।

(४) हिन्दू प्रेत-आत्माएं

प्रादेशिक स्तर के हिन्दू प्रेतात्माओं में नरसिह, चेहड़मल, भूरा देव, काली सिंह, हरी सिंह या महासिंह बागडवाला प्रमुख हैं। इनमें से प्रथम पाँच गुग्घा पीर के शिष्य थे। नरसिंह जोगी जाति के देवता हैं। इनका थान ग्राम लाठर देवा हूण में है। गुग्घा मेले की शुरुआत नर सिंह और गणेश की पूजा से होती है। इसके बाद गाँव-गाँव में गुग्घा की छड़ियों की पूजा की जाती है। जनपद स्तर पर सहारनपुर नगर में विशाल मेले का आयोजन किया जाता है।

चेहड़मल भूतों के राजा माने जाते हैं। रुड़की नगर से १० किलो मीटर दूर एक झील के किनारे इनका थान है। इसी थान के पास प्रतिवर्ष मेला लगता है। आस-पास के गाँव के लोग यहां इकट्ठा होते हैं। दंगल का भी एक प्रमुख आकर्षण है। रात के समय भगत, सियाने, सिद्ध, जोगी अपनी सिद्धि, की प्रदर्शनी करते हैं। भूत उतारने का काम भी किया जाता है।

भूरा देव के बारे में परस्पर दो विरोधी बातें कही जाती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि भूरा देव गुग्घा पीर के शिष्य थे। कुछ अन्य लोग इसे शाकुम्बरी का द्वारपाल मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक तीसरी परम्परा भी भूरा देव के साथ जुड़ी हुई है। कहा जाता है कि अंग्रेजों के शासन काल में टिभली नाम की एक छोटी मगर स्वतन्त्र राजधानी थी। टिमली के राजा ने अंग्रेजों की शरण नहीं ली थी। अंग्रेजों के आक्रमण और युद्ध में टिमली के राजा मारे गये। उनकी पुत्री शाकुम्बरी थी। उसने अपने सेनापति भूरा देव के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया। किन्तु युद्ध में दोनों ही मारे गये। जिस स्थान पर उनकी मृत्यु हुई उसी जगह उनके थान बनाये गये हैं। और यह थान मन्दिरों के रूप में विकसित किये गये।

काली सिंह, हरी सिंह या महा सिंह के थान अनेक गाँवों में पाये जाते हैं। कुछ गाँवों में इनके सम्मान में मेला लगाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बागडवाला गुघाल या गुग्घा पीर का दूसरा नाम है। इनकी सेवा करने से सन्तान-प्राप्ति, आर्थिक समृद्धि और सामान्य स्वास्थ्य लाभ होता है। जो लोग सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से बागड प्रदेश जाते हैं, इच्छा पूरी होने पर अपने घर के बाहरी भाग में दो ईंटों का थान बना देते हैं जिसे म्हाडी कहा जाता है। तिथि-त्यौहार को दीप जलाया जाता है। साल में एक बार पत्तल चढ़ाई जाती है। बागड वाले को प्रसन्न करने के लिए कन्दूरी भी की जाती है। केवल धनवान लोग कन्दूरी करते हैं क्योंकि इसमें गाँव के लोगों और रिश्तेदारों को आमन्त्रित करके भोजन, कपड़ा और मिलाई की रस्म अदा करने में अधिक खर्चे बैठते हैं।

रामपुर मनिहारान के पास एक गाँव है सुन्ना अर्जुनपुर। इस गाँव में झील के किनारे एक मन्दिर है जहाँ जनपद स्तर का मेला लगता है। कहा जाता है कि इस झील के किनारे एक कुटिया में बड़ा सिद्ध बाबा रहता था। बाबा दिन में एक बार दूध पीता था। दूध पीने के बाद कुटिया में यौगिक क्रियायें करता था। इसलिए कुटिया में जाने की अनुमति नहीं थी। एक दिन दूध समय पर न मिलने से बाबा कुटिया में चला गया और वहाँ यौगिक क्रियायें करने लगा। इतने में चेला दूध लाया और भूल से कुटिया में चला गया। वहाँ उसने देखा कि बाबा अपने योग के बल से अपनी सारी आंते शरीर के बाहर निकाल कर उन्हें धूप में सुखा रहा है। चेले को देखते ही बाबा ने आंते शरीर में वापस भेज दीं और उसी समय उनका स्वर्गवास हो गया। इसी बाबा के सम्मान में हर साल मेले का आयोजन होता है। इस सरोवर में नहाने से चर्म रोगों से मुक्ति मिलती है।

आजकल जातिगत देवताओं की पूजा का रिवाज बढ़ रहा है। चमार जाति के लोग रैदास की और भंगी बालिमकी की पूजा कर रहे हैं। लगभग सभी गाँवों में रैदास और बालिमकी के मन्दिर बन रहे हैं। इनकी जयन्ती के अवसर पर जलूस निकालने का रिवाज भी लोकप्रिय हो रहा है। अनेक रैदास और बालिमकी मन्दिरों में बाबा नियुक्त किये गये हैं। रैदास रामायण एक ग्रन्थ है जिसमें रैदास के जन्म और चमत्कारों का वर्णन है। इस ग्रन्थ का पाठ भी होता है। इसी प्रकार अनुसूचित जाति के कुछ वर्ग अम्बेडकर की तस्वीर की पूजा करते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सैनी जाति के लोग महात्मा सुरसैन की तस्वीर की पूजा कर रहे हैं।

(५) प्रादेशिक विस्तार वाली मुस्लिम प्रेत-आत्माएं

सरवर, दरिया, ख्वाजा यह तीनों मुस्लिम पीर हैं। सरवर पशुओं का देवता है, दरिया कुओं का और ख्वाजा जोहड़ नदी-नालों का। सरवर के तुरबत या थान अधिकांश गाँवों में हैं। इनके दो रिवायात हैं। प्रथम दन्त कथा के अनुसार सरवर या सरवल जयचन्द का वजीर था। जयचन्द और सरवल की सेवाओं से मोहम्मद गोरी बहुत प्रसन्न था। पृथ्वीराज पर विजय प्राप्त होने के बाद उसने अपने राज में सरवर की कब्र बनाकर उसे सम्मान देने का आदेश दिया। परिणाम स्वरूप सरवर पशुओं के देवता के रूप में पूजे जाने लगे। दूसरी दन्त कथा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार किसी गाँव के जंगल में आस-पास के गाँवों के बालक पशु चरा रहे थे। अचानक एक दैत्याकार भयंकर प्राणी प्रकट हुआ और एक गर्भवती गाय के पेट में बल्लम आर-पार कर दिया। गाय तड़प कर जमीन पर गिर गयी। भयभीत बालकों ने दैत्य से गाय को बचाने की प्रार्थना की। दैत्य बोला, "गाय बच सकती है, मगर दो शर्त हैं। हर गाँव में मेरे लिए एक थान या तुर्बत बनाया जायेगा। और हर साल जंगल में मेरे लिए एक रोटा हनाना होगा।" बालकों ने शर्त मान ली। दैत्य अदृश्य हो गया और गाय भी बच गयी। इस लिए अधिकांश गाँवों में सरवर के थान होते हैं। दो तीन दशक पहले तक जंगल में रोटा या रोट्टा बनाने का रिवाज था। डंगर चराने वाले बालक गाँव से गेहूं का आटा इकट्ठा करके एक-दो धड़ी (५-७ किलो) आटे का एक ही रोट्टा बनाकर सरवर को सम्मान देते थे।

सरवर की पूजा से पशु ठीक रहते हैं। खोया हुआ पशु अपने आप घर लौट आता है। गाय, भैंस, बकरी के दूध की मात्रा सही रहती है। गाय, भैंस, बकरी के पहले दिन का दूध भूमिया और सरवर पर चढ़ाया जाता है।

सरवर की पूजा सरल है पहले अगरबत्ती या दिया जलाया जाता है। फिर दूध या खीर तुर्बत पर रखकर हाथ जोड़े जाते हैं। किन्तु सरवर पर चढ़ाई गई खीर कोई भी हिन्दू घर वापस नहीं लाता न ही वह उसे खाता है। यह खीर फकीर को दी जाती है। सरवर को हिन्दू मुसलमान बराबर मानते हैं।

दरिया और ख्वाजा के थान किसी गाँव में नहीं देखे गये। दरिया की पूजा विवाह के अवसर पर की जाती है। विवाह के लिए बारात ले जाने से पहले दूल्हा कुआ पूजता है। पान, लौंग, सुपारी और मिठाई चढ़ाकर शुभ यात्रा की कामना करता है।

ख्वाजा की पूजा चौमासा में की जाती है। पत्ते के दोने में फूल, पान, लौंग, हलवा, पूरी सहित दीप जलाकर जोहड़ के पानी में छोड़ा जाता है।

गुग्घा पीर या गुघाल का पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ जनपदों में विशेष महत्व है। इसे जाहर दीवान भी कहा जाता है। संक्षेप में गुग्घा पीर की मिथक इस प्रकार है। बाछल और काछल दो बहनें थीं। गोरखनाथ के आशीर्वाद से बाछल के गर्भ से गुग्घा और काछल के गर्भ से अर्जन और सरजन का जन्म हुआ। सम्पत्ति और राजधानी के बंटवारे को लेकर हुए युद्ध में अर्जन और सर्जन मारे गये। छोटी बहिन के बच्चों के मारे जाने का बाछल को बहुत दुःख हुआ। उसने गुग्घा का मुंह न देखने का प्रण लिया। अपनी माँ के प्रण को निभाने के लिये गुग्घा जंगल में चला गया। मगर रात में छिपकर अपनी पत्नी सीरियल के पास आया जाया करता था।

एक दिन बाछल गुग्घा को देखकर उसके पीछे दौड़ पड़ी। माँ को निकट आते देख गुग्घा ने धरती मां से अपने में समा लेने की प्रार्थना की। धरती मां उसकी इच्छा पूरी न करने पर गुग्घा असमंजस में पड़ गया। इतने में कहीं से आवाज आई "अल्लाह तुम्हें माफ कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलमा पढ़ो और नजात मिलेगी ।" कलमा पढ़ते ही गुग्घा का घोड़ा लम्बी छलांग लगाकर गुग्घा सहित कई किलो मीटर दूर धरती में उतर गया । यह दोनों ऐसी जगह धँस गये जहाँ कोई नहीं जा सकता । केवल गुग्घा के बल्लम की नोक दिखाई देती है ।

कुछ समय बाद गुग्घा ने प्रकट होकर लोगों से कहा "तुम मेरे लिए यहाँ म्हाड़ी बना देना । जहाँ मेरे घोड़े ने छलांग ली थी वहां गुरू गोरखनाथ की गद्दी बना दो । मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा । हिन्दू-मुसलमान दोनों ही हमारी प्रजा हैं । मेरे लिए दोनों समान हैं ।"

गोरख गद्दी और गुग्घा मढ़ी बागड़ प्रदेश या बीकानेर जनपद में हैं । सन्तान प्राप्ति, सांप-बिच्छू से सुरक्षा, पशुओं का स्वास्थ्य इनको पूजा से प्राप्त होता है । गुग्घा पीर को चढ़ाया जाने वाला प्रसाद भीगी चने की दाल, प्याज, पंखा और अण्डा है ।

Levis Strauss के Structural method की दृष्टि से यह मिथक अत्यधिक महत्वपूर्ण है । शायद यह मिथक इन प्रमुख प्रश्नों का उत्तर दे रही है ।

(१) क्या सांसारिक समस्याओं का समाधान धर्म परिवर्तन है ।

(२) क्या राजा धर्म परिवर्तन करने से अपनी प्रजा के प्रति उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाता है ।

(३) धर्म परिवर्तन करने वालों का क्या परिणाम होता है ? क्या वे प्याज, भीगी चने की दाल की तरह नहीं हैं ?

(६) क्षेत्रीय स्तर के मुस्लिम पीर

क्षेत्रीय स्तर के मुस्लिम पीरों में सैयद, नौगजा, सिरकट मुख्य हैं । विलायत शाह, काठे-वाला, नहर-पुलवाला स्थानीय महत्व के हैं । हिन्दुओं के लिए किसी भी मुसलमान का प्रेत सैयद है । जिसे हिन्दू सैयद कहते हैं, उसे मुसलमान पीर मानते हैं । पढ़े-लिखे मुसलमानों के अनुसार केवल ऊँचो प्रस्थिति के मुसलमान जो अल्लाह को हमेशा याद करते हैं जिनकी जिन्दगी पाकीज़ा है वे ही पीर बन सकते हैं ।

जिस प्रकार भूमिया या खेड़ा गांव का राजा और रक्षक माना जाता है उसी प्रकार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अनेक गाँवों में सैयद को गांव का रक्षक मानते हैं । पीर आम तौर पर तन्हा-पसन्द होते हैं और किसी को सताना पसन्द नहीं करते । किन्तु इन्हें कुछ बातों पर क्रोध आता है जैसे उनके थान के आस-पास पेशाब करना या थूकना । एहसान फरामोशी और बे-अदबी पर भी इन्हें बहुत क्रोध आता है ।

नौगजा एक विचित्र प्रकार का पीर है । इसकी मजार २७ फीट लम्बी होती है । नौगजा की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि इनके मजार का एक से अधिक बार माप लिया जाये तो हर माप दूसरे माप से कम या अधिक होगा । यही इनका चमत्कार है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौगजा की मजारें सहारनपुर जनपद में कैलाशपुर, मंगलौर और अन्य नगरों में हैं। जनपद के बाहर इनकी मजारें मेरठ और बरेली में भी हैं।

नौगजा के बारे में अलग-अलग बातें कही जाती हैं। कुछ मुसलमानों का कहना है कि मूसा अलै-सलाम के समय आदमी की लम्बाई २७ फीट हुआ करती थी। यह मजारें उसी समय की बनी हुई हैं। कुछ हिन्दू विद्वानों के अनुसार आदिकाल में कुछ सिद्ध पुरुष हुआ करते थे। वे अपनी सिद्धि से ९ गज के दायरे में किसी भी व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं का पता लगा लेते थे। इसलिए इन्हें नौगजा कहा जाता था। एक दन्त कथा के अनुसार जो व्यक्ति युद्ध में नौ हथियारों को एक साथ चलाता था नौगजा कहलाता था। चाहे जो भी हो, २०-२५ वर्ष पूर्व कैलाश पुर के नौगजा के पास से गुजरने वाले हर वाहन चालक, वाहन रोककर नोगजा को बा-अदब नमस्कार करके सुरक्षित यात्रा की कामना करता था।

काठेवाले पीर की दरगाह लक्सर से कुछ दूर जंगल में है। हर साल यहां मेला लगता है आस-पास के हजारों हिन्दू एवं मुसलमान यहां आते हैं।

काठे वाला पशु-रक्षक और दूध-वर्धक पीर समझा जाता है। इनके मजार पर २ १/२ किलो गुड़ की भेली चढ़ाने से गाय, भैंस, बकरी अधिक दूध देती है। मवासे, फोड़े, फुंसी के लिये झाड़ू, पंखा आदि भी चढ़ाये जाते हैं।

कहा जाता है कि एक बनजारा शाम के समय बैलगाड़ी में माल ले जा रहा था। रास्ते में जंगल था। अधिक रात हो आई कि बैलगाड़ी की एक कील निकल कर कहीं गिर गयी। बनजारा बहुत घबराया। क्योंकि आगे और भी घना जंगल था। इतने में उसे एक आवाज सुनाई दी "फिक्र मत करो मैं तुम्हारे साथ हूं। चले चलो।" घर जाकर जब बनजारा सो गया तो उससे स्वप्न में एक वृद्ध व्यक्ति ने कहा "मैंने तुम्हें बचाया है। जहां कील गिरी थी वहीं मेरे लिए मजार बना देना।" बनजारे ने उसी स्थान पर मजार बनवाया।

शाह विलायत का पूरा नाम हजरत सैयद शाह उस्मान जहांगीर चिश्ती था। इनकी दरगाह मगलौर (सहारनपुर) में है। यंह बुकारा से भारत लगभग ११९३ ई० में आये।

अपने जमाने के दस्तूर के मुताबिक उन्होंने अपने गुरू के आदेशानुसार भारत आना तय किया। इनके साथ और लोगों के अलावा दो उल्लू भी थे। यह पक्षी जहां बैठ जाते वहीं अपना डेरा लगा देते। उल्लू आगे बढ़ते-बढ़ते मंगलौर पहुंचे और वहीं बैठ गये। यहीं उन्होंने अपना मुस्तकिल डेरा बना लिया।

एक दिन कुछ बालक इनके डेरे के पास जानवर चरा रहे थे। शाह विलायत ने उनसे कहा "मुझे दूध चाहिए। कोई गाय या बकरी ले आओ। मैं खुद निकाल लूँगा।" बच्चों ने जवाब दिया, "इनमें से कोई भी दूध देने वाली नहीं है।" शाह विलायत ने एक बछिया पकड़ लिया और उसके थन से दूध निकाल लिया। इनके इस चमत्कार की चर्चा सारे गांव में फैल गयी। लोग उनके आशीर्वाद के लिए नियमित रूप से आने लगे। शाह विलायत के अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमत्कार भी हैं। कभी उन्होंने गुड को नमक बना दिया तो कभी पत्थर को गुड़।

शाह विलायत दरगाह बहुत पुरानी है। अंग्रेजी शासन काल में इनकी दरगाह पर मेला लगाने की अनुमति नहीं थी। चार-पांच वर्ष पूर्व इनके मेले का उद्घाटन किया गया था।

सिरकट सैयद का विकृत स्वरूप है। युद्ध में जिस पुरुष का सिर धड़ से अलग हो जाता है या किसी अपराध के दण्ड स्वरूप सिर काटा जाता है उसकी प्रेत आत्मा को सिरकट कहा जाता है। ये सुनसान जगह, तालाब के किनारे या किसी विशाल वृक्ष पर अस्थाई रूप से रहते हैं। कई गांवों में इनके लिये मजार बनाये गये हैं। हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने तरीके से उनकी पूजा करते हैं।

क्षेत्रीय विस्तार वाले अन्य मुस्लिम पीर असंख्य हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इन्हें मानते हैं।

(स) स्थानीय विस्तार वाले देवी देवता

(७) स्थानीय विस्तार वाले हिन्दू देवी-देवताओं में स्टोव (Stove) देवता और जलेबी वाली माता उल्लेखनीय हैं। यह दोनों अस्थाई थे और वर्तमान समय में इनकी पूजा नहीं की जाती। दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व स्टोव देवता की चर्चा अधिक होती थी। विश्वास किया जाता था कि नहा-धोकर स्टोव जलाकर, कुछ सांसारिक क्रियायें करने से स्टोव देवता प्रगट होते हैं और मनो-कामना पूरी करते हैं। देवता के प्रगट होने का प्रमाण यह समझा जाता था कि स्टोव की एक टांग अपने आप ऊपर उठ जाती और स्टोव दो टांगों पर ही टिका रहता।

लगभग दस वर्ष पूर्व बच्चों वाली माताएं शुक्रवार के दिन गंगा नहर के किनारे बैठकर जलेबी स्वयं खातीं या मछलियों के लिए नहर में डाल देतीं। विश्वास किया जाता था कि ऐसा करने से माता प्रसन्न होकर उनके बच्चों की रक्षा करती हैं। इसलिए इसे जलेबी वाली माता कहा जाता था।

जलेबी वाली माता का सम्बन्ध निम्न घटना से जोड़ा जाता है—एक दिन एक स्त्री चूड़ियां पहनने के बाद मनिहार के बक्से में १, २, ५, १०, २०, ५० और १०० के नोट रखते हुए कहा "इनमें से जितने नोट चाहो ले लो।" चूड़ी वाले ने केवल ५ का नोट अपने पास रखा। उस स्त्री ने कहा, "अच्छा हुआ तुमने ५ का नोट उठाया। अगर १०० का नोट उठाते तो सारा खानदान समाप्त हो जाता। ५० का लेते तो बच्चों सहित तुम्हारी स्त्री मर जाती। ५ का नोट लेने से तुम्हारा एक लड़का मर जायेगा। उसे बचाने का एक उपाय है। तुम्हारी स्त्री गंगा नहर के किनारे बैठकर पेट-भर जलेबी खाये या मछलियों को खिलाये तो यह संकट टल सकता है। इस घटना से इस माता की पूजा शुरू हुई थी रुड़की नगर के आस-पास के गांवों में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) स्थानीय हिन्दू प्रेतात्माओं में गांधी बाबा और पारिवारिक देवता का महत्वपूर्ण है। रुड़की नगर से १० किलो मीटर दूर भारापुर-भौंरी नाम के दो जुड़वा गांव हैं। इन गाँवों में महात्मा गांधी की याद में हर साल १२–१८ फरवरी तक सात दिवसीय मेले का आयोजन किया जाता है। इस मेले की शुरुआत महात्मा गांधी की शिष्या मीरा बेन द्वारा की गई थी। भारापुर-भौंरी के निकट मूलदास पुर माजरा में मीरा बेन का आश्रम था। आश्रम के आस-पास के गांवों में वे समाज-सेवा का कार्य करती थीं। गान्धीजी की अस्थियों का विसर्जन भारापुर-भौंरी के निकट रतमऊ नदी में किये जाने से इसी नदी के किनारे मेला लगाया जाता है। फरवरी १२ को गान्धीजी की मूर्ति नदी के किनारे मैदान में रखी जाती है। विधिवत हवन किया जाता है। सात दिन तक स्वांग, दंगल, नाच आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम चलाये जाते हैं। भारापुर-भौंरी और इनके आस-पास के गांवों के लिये महात्मा गान्धी 'गान्धी बाबा' हैं।

स्थानीय पारिवारिक 'देवता' असंख्य हैं। रुड़की नगर से ५ किलो मीटर दूर एक गांव है सलेमपुर राजपुतान। इस गांव में सैनी जाति के लोग बहुसंख्यक हैं और १४ गोत्रों में बंटे हुए हैं। प्रत्येक गोत्र का कम से कम एक 'देवता' है। इन 'देवताओं' के 'थान' गांव के चारों तरफ खेतों में बनाये गये हैं। पिछले पांच वर्षों में ५-६ पारिवारिक 'देवताओं' की स्थापना की गई है। इनमें से एक ऐसा था जो ३०-३५ साल 'शान्त' रहा। दो वर्ष पूर्व उसने अपनी बीमार मां को स्वप्न में दर्शन देकर कहा "अपने तीनों बेटों की शादी कर दी और मुझे भूल गई।" वास्तविकता यह थी कि इस परिवार में चार लड़के थे। इनमें से तीसरे की मृत्यु २० वर्ष पहले हुई थी। उस समय वह ११ वर्ष का था। लगभग बीस साल के बाद उस मृत बालक की प्रेम-आत्मा ने अपने लिये एक 'थान' बनाने के लिये अपनी बूढ़ी मां को आदेश दिया। वस्तुतः थान विधिवत बनाया गया। उस थान पर लिखा हुआ है 'इन्द्र राज देव'। इन्दराज उस बालक का नाम था।

एक अन्य 'देवता' का नाम 'नौमीवाला' है। इसका थान ७०-८० साल पहले गांव के बाहर बनाया गया था। गाँव की चकबन्दी के समय थान सहित सारा खेत एक ब्राह्मण परिवार के नियंत्रण में चला गया। इस ब्राह्मण परिवार के एक सदस्य का दाह-संस्कार थान के निकट किया गया। इस वर्ष नौमीवाला देवता ने एक स्त्री को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "यहां मुरदे भी फुंकने लगे अब मुझे यहां से कहीं और ले चलो।" उस जगह से थान को विधिवत हटाकर किसी और जगह स्थापित किया गया।

कभी-कभी पारिवारिक 'देवता' अत्यधिक क्रोधी हो जाता है और परिवार के सदस्यों को 'परेशान' करता है। सियाना और छू-मंतर वालों के 'काबू' में नहीं आता। ऐसे 'देवता' के लिये विशेष व्यवस्था की जाती है। हरिद्वार में नारायणी मन्दिर के परिसर में प्रेत-शिला है। मन्त्रों और जादुई क्रियाओं से प्रेत-आत्मा को उस प्रेत-शिला के नीचे 'दबा' दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले चार-पांच दशकों में हिन्दू सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिसके परिणाम स्वरूप धार्मिक संस्थाओं के प्रति लोगों में दृष्टिकोण और व्यवहार परिवर्तन आये हैं। यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण शोध विषय है। सामाजिक संरचना और धार्मिक संस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण करके निश्चित और उपयोगी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

नोट—इस लेख को डा० कर्ण सिंह चौहान की सहायता से तैयार किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाराणसी की डोम जाति की सामाजिक-आर्थिक दशा का समाज वैज्ञानिक अध्ययन

नूतन अग्रवाल

अध्ययन की समस्या

हिन्दू सामाजिक संस्तरण में अस्पृश्य मानी जाने वाली डोम जाति का अत्यन्त निम्न स्थान है। परम्परागत रूप से डोम जाति का कार्य श्मशान घाट की व्यवस्था, शवदाह, कर वसूलना इत्यादि है। परन्तु काशी के डोम हिन्दू पौराणिक साहित्य एवं संस्कृति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वर्तमान अध्ययन वाराणसी में निवास करने वाली अस्पृश्य एवं पिछड़ी आर्थिक स्थिति रखने वाली **डोम जाति** पर आधारित है। इस जाति का परम्परागत पेशा श्मशान घाट पर कर वसूलना, शव को आग देना, बांस की दौरी, सूप इत्यादि बनाना एवं सफाई का काम करना है। इस जाति के सदस्यों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के विश्लेषण द्वारा वर्तमान अध्ययन बृहद् जातीय संरचना में डोम जाति के स्थान और सामाजिक सांस्कृतिक निरन्तरता और एक-मत्यता के अन्वेषण का प्रयत्न करता है। वर्तमान अध्ययन यह भी देखने का प्रयत्न करता है कि डोम जाति की लघु परम्पराओं और उपसंस्कृति का स्वरूप क्या है, वे किस प्रकार वृहद् हिन्दू परम्परा से भिन्न है, डोम जाति के पारिवारिक संगठन, जातिगत संगठन, धार्मिक विश्वास, जन्म, विवाह, मृत्यु सम्बन्धित संस्कारों के माध्यम से लघु एवं वृहद् परम्पराओं की साम्यता और विसंजुयता का अन्वेषण का प्रयत्न करता है। वर्तमान अध्ययन डोम जाति के आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन के अध्ययन के द्वारा एक ओर यह ज्ञात करने का प्रयास करता है कि डोम परिवारों में व्यवसायिक गतिशीलता की प्रकृति क्या है और दूसरी ओर उनकी आर्थिक समस्या का स्वरूप क्या है ? अध्ययन का उद्देश्य यह भी ज्ञात करता है कि परिवर्तन की नवीन शक्तियां विशेषकर हरिजन कल्याण के सरकारी प्रयत्न, शिक्षा का प्रसार और सामाजिक, आर्थिक गतिशीलता, नगरीकरण, औद्योगीकरण इत्यादि सामान्य प्रक्रियाएं डोम जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में किस मात्रा में और किस प्रकार का रूपान्तरण कर रही हैं।

नूतन अग्रवाल, शोध छात्रा, समाजशास्त्र, जे० १३/६३-३३ कॉटन मिल कालोनी, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन का क्षेत्र एवं उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन वाराणसी नगर में निवास करने वाली डोम जाति के सदस्यों के जीवन-दशा का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से करता है ।

१ सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि

वर्तमान अध्ययन डोम जाति के चुने हुए सूचनादाताओं के सामाजिक उद्गम का अन्वेषण उनके परिवार के परम्परागत् व्यवसाय, आयगत स्थिति, निवास स्थान की प्रकृति आदि के द्वारा करता है । एक ओर यह ज्ञात करना है कि डोम जाति के सदस्य अपने पितामह और पिता की तुलना में व्यावसायिक, आयगत एवं शैक्षणिक गतिशीलता के किस प्रतिमान का प्रतिनिधित्व करते हैं ? दूसरी ओर अन्वेषण का लक्ष्य यह भी ज्ञात करना है कि वर्तमान पीढ़ी में डोम जाति के सदस्यों का आर्थिक एवं वर्गीय स्तर क्या है ?

२ सूचना सम्प्रेषण एवं विगोपन स्तर

वर्तमान अध्ययन यह देखने का प्रयत्न करता है कि नगर में रहने वाले डोम जाति के सदस्य जागरूकता एवं सहभागिता के किस प्रतिमान को प्रतिबिम्बित करते हैं । क्या शिक्षा और नगरीय जीवन की विशेषताओं ने डोम जाति के सदस्यों के विगोपन स्तर को उच्च किया है या डोम जाति की परम्परागत निम्न सामाजिक स्थिति उनकी जागरूकता वृद्धि की प्रक्रिया में बाधक है ? क्या अशिक्षा और निम्न व्यावसायिक स्थिति डोम जाति के सामाजिक राजनीतिक सहभागिता एवं जागरूकता को अवरुद्ध किए हुए है ?

३ आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन

वर्तमान अध्ययन भी यह जानने का प्रयत्न करता है कि डोम जाति की तीनों उपशाखाएं रहदरिया, बनरसिया और घाटिया किस मात्रा में अपने परम्परागत व्यवसाय में संलग्न हैं और यदि वे व्यवसायिक रूप से गतिशील हैं तो उनकी व्यावसायिक गतिशीलता की दिशा एवं स्वरूप क्या है ? क्या डोम जाति के व्यवसाय का व्यावसायिक जीवन किसी प्रकार की व्यवसायिक गतिशीलता (Career Mobility) को अभिव्यक्त करता है ?

व्यावसायिक गतिशीलता के लिए डोम जाति के सदस्यों को सरकारी नौकरी में आरक्षण की सुविधा तथा व्यावसायिक प्रगति के लिए आर्थिक सहायता की व्यवस्था उपलब्ध है । वर्तमान अध्ययन में यह देखने का प्रयत्न करता है कि डोम जाति के सदस्य इन आर्थिक सुविधाओं का किस मात्रा में उपभोग कर रहे है ?

४ आवासीय दशा एवं पड़ोसी सम्बन्ध

वर्तमान अध्ययन यह ज्ञात करने का भी प्रयत्न करता है कि अध्ययन में सम्मिलित डोम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति के सदस्यों की आवासीय दशा का स्वरूप क्या है ? क्या वे मलिन बस्तियों में निवास करते हैं ? क्या उनके आवास में पानी शौच इत्यादि की सुविधा सन्तोषजनक है ? क्या उनके आवास में रहने की कमरों के संख्या पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है ? वर्तमान अध्ययन यह देखने का भी प्रयास करता है कि डोम जाति के सदस्यों ने सरकारी आवासीय सुविधा का किस मात्रा में उपभोग किया है ।

५ पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन

वर्तमान अध्ययन यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि डोम जाति का पारिवारिक संगठन एवं वैवाहिक जीवन आदर्श प्रारूप के किस मात्रा में भिन्न है ? क्या संयुक्त परिवार की व्यवस्था, सदस्यों के सम्बन्धों की पारस्परिकता एवं पारिवारिक कार्यों के सम्पादन डोम जाति के परिवारों में उपलब्ध हैं, या डोम जाति के परिवार की संरचना एवं प्रकार्यात्मक विशेषताएं किसी नवीन प्रतिमान को प्रस्तुत करती हैं ? क्या एकाकी परिवार की बहुलता डोम जाति के आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित व्यवस्था है, या एकाकी परिवार डोम जाति के सदस्यों की विशिष्ट जीवन-शैली अर्थात पारस्परिक कलह स्वार्थवादिता एवं व्यक्तिवादिता से अभिप्रेरित व्यवस्था है ?

हिन्दू वैवाहिक जीवन का आदर्श प्रारूप दाम्पत्य सम्बन्ध की पवित्रता एवं स्थायित्व है । वर्तमान अध्ययन यह ज्ञात करने का प्रयास करता है कि डोम जाति के वैवाहिक जीवन में यह पवित्रता एवं स्थायित्व किस मात्रा में पाया जाता है । दाम्पत्य सम्बन्ध, कलह, विवाह, विच्छेद, पुर्नविवाह, बहुपत्नी विवाह इत्यादि तथ्यों के माध्यम से वर्तमान अध्ययन यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि डोम जाति के सदस्यों का वैवाहिक जीवन किस मात्रा में अशान्तिपूर्ण, अस्थिर एवं विचलनकारी है ? वर्तमान अध्ययन यह भी ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि वैवाहिक निर्णय के क्षेत्र में परिवार, नातेदारी सम्बन्ध तथा सम्बन्धित वर-वधु का तुलनात्मक रूप से क्या महत्व है ? वैवाहिक आकांक्षाओं एवं परिवर्तनशील मनोवृत्तियों का अध्ययन सूचनादाताओं के पुत्र-पुत्री के विवाह, अन्तर्जातीय विवाह इत्यादि तथ्यों के माध्यम से किया गया है ।

६ सामाजिक अन्तः क्रिया एवं जातिगत स्थिति

वर्तमान अध्ययन में गवेषणा का एक महत्वपूर्ण आयाम डोम जाति की सामाजिक अन्तः-क्रिया एवं सामाजिक सम्बन्ध के विस्तार की परिधि का अन्वेषण करना है । साथ ही साथ यह भी जानने का प्रयत्न किया गया है कि डोम जाति, सवर्ण हिन्दू जाति, अन्य अनुसूचित जाति एवं स्वयं अपनी जाति की विशेषताओं का प्रत्यक्षीकरण किस रूप में करते हैं । परम्परागत रूप से डोम जाति को अस्पृश्य एवं निम्न कोटि का मानकर उसे सामाजिक अन्तःक्रिया की परिधि से पृथक रखा गया है । डोम जाति का सामाजिक सहवास, सामाजिक आदान-प्रदान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं खान-पान अत्यन्त सीमित एवं प्रतिबन्धित रहा है। वर्तमान अध्ययन यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि परिवर्तन के नवीन कारकों के सन्दर्भ में डोम जाति के सामाजिक अन्तःक्रिया के क्षेत्र में क्या परिवर्तन हुए हैं ? क्या शिक्षा, नगरीकरण, औद्योगीकरण इत्यादि प्रक्रियाओं ने डोम जाति के सामाजिक सम्पर्क को विस्तृत किया है ? हरिजन कल्याण कार्यक्रमों तथा सरकारी कर्मचारियों की भूमिका के सम्बन्ध में डोम जाति का दृष्टिकोण क्या है ?

७ धार्मिक जीवन

परम्परागत रूप से डोम जाति बृहद हिन्दू धार्मिक विश्वासों, कर्मकाण्डों एवं संस्थाओं से विरत रखी गयी है। अन्य अस्पृश्य जातियों की भांति डोम जाति के सदस्य भी धार्मिक ग्रन्थों का पाठ, मंदिरों में प्रवेश, या कर्मकाण्डों का निर्वाह नहीं कर सकती थी। परन्तु हिन्दू समाज में जो नवीन परिवर्तन हो रहे हैं उनमें से एक प्रमुख परिवर्तन बृहद हिन्दू सांस्कृतिक परम्पराओं का निम्न जातियों के द्वारा अपनाया जाना है। उच्च जातियों के जीवन-शैली को अपनाये जाने की यह प्रक्रिया संस्कृतिकरण के नाम से सम्बोधित की जाती है। दूसरी ओर निम्न जातियों की लघु सांस्कृतिक परम्पराओं का सार्वभौमिकरण भी हो रहा है। समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विसंस्कृतिकरण की प्रक्रिया भी निम्न जातियों की संस्कृति में देखने को मिलती है।

वर्तमान अध्ययन यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि डोम जाति के सदस्य किस मात्रा तक हिन्दू संस्कृति की वृहद परम्पराओं को ग्रहण कर रहे हैं ? यह भी जानने का प्रयत्न किया है कि डोम जाति की लघु परम्पराओं का स्वरूप क्या है ? इसके अतिरिक्त अनुसूचित जाति को प्रभावित करने वाले ईसाई धर्म प्रचारक संगठन से किस मात्रा में डोम जाति के सदस्य प्रभावित हो रहे हैं, यह भी वर्तमान गवेषणा का एक प्रमुख बिन्दु है।

८ परिवर्तनशील सामाजिक सांस्कृतिक मनोवृत्ति

वर्तमान अध्ययन में प्रक्षेपण विधि के माध्यम से डोम जाति के सदस्यों की परिवर्तनशील मनोवृत्ति को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। मुख्य रूप से छुवा-छूत आवासीय प्रतिबन्ध, अन्तर्जातीय विवाह, वेश्यावृत्ति, नारी उत्पीड़न, हरिजन उत्पीड़न इत्यादि समस्याओं के सम्बन्ध में सूचनादाताओं की मनोवृत्तियों का विश्लेषण किया जा रहा है। अध्ययन का लक्ष्य यह ज्ञात करना है कि डोम जाति किस मात्रा में अपनी परम्परागत जीवन-शैली को बनाये रखना चाहती है या यदि नवीन जीवन-शैली को अपनाना चाहती है तो इस जीवन-शैली का स्वरूप क्या है ?

अध्ययन का समग्र एवं निदर्श

वर्तमान अध्ययन का समग्र काशी नगर में निवास करने वाली डोम जाति के परिवार हैं। काशी में मुख्यतः डोम जाति की तीनों शाखाएँ पायी जाती हैं, जिन्हें रहदरिया, बनरसिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं घाटिया डोम के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अध्ययन के समय वाराणसी में डोम जाति के ५१६ परिवार निवास कर रहे थे इनमें से २५० परिवार के मुखियों को वर्तमान अध्ययन में सूचनादाता के रूप में सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार समग्र का लगभग आधा परिवार निदर्श में सम्मिलित किया गया है। निदर्श की इकाइयों को चुनने के पहले वाराणसी नगर में निवास करने वाली डोम जाति के परिवारों की एक विस्तृत सूची तैयार की गयी है इसमें परिवार के मुखिया का नाम, आयु, उपजाति, व्यवसाय एवं निवास स्थान सम्बन्धी विवरण अंकित किया गया है। उपजाति, व्यवसाय, एवं आयु को स्वतंत्र परिवर्त्य मानकर निदर्श की इकाइयों का चयन दैव निदर्शन विधि से किया गया है।

तथ्य संकलन का उपकरण एवं विधि

वर्तमान अध्ययन से सम्बन्धित प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का संकलन अलग-अलग विधियों को अपना कर किया गया है। अध्ययन से सम्बन्धित द्वितीय तथ्यों का संकलन जन-गणना रिपोर्ट, प्रकाशित रिपोर्ट, एवं प्रकाशित अध्ययनों के माध्यम से किया गया है।

प्राथमिक तथ्यों का संकलन मुख्यतः एक साक्षात्कार-अनुसूची-परिशिष्ट 'अ' के माध्यम से किया गया है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय निरीक्षण एवं अनौपचारिक वार्तालाप विधि का प्रयोग भी प्राथमिक तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची में दिये गये प्रश्नों के माध्यम से प्रत्येक सूचनादाता का साक्षात्कार अनुसंधानकर्त्ता ने उसके निवास स्थान पर किया है। प्रत्येक साक्षात्कार को सम्पन्न करने में लगभग ५० मिनट का समय लगा। सूचनादाताओं को साक्षात्कार के लिए राजी करने में अनुसंधानकर्त्ता को एक से अधिक बार सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। अनुसंधान का उद्देश्य स्पष्ट करके सूचनादाता का विश्वास एवं सहयोग प्राप्त किया गया। सूचनादाताओं के आवास की गन्दगी परिवार के सदस्यों का सन्देही एवं झगड़ालू स्वभाव कभी-कभी बाधक रहा। इन कठिनाइयों के होते हुए भी सूचनादाताओं का सहयोग सराहनीय रहा।

तथ्यों का प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण

अध्ययन से प्राप्त तथ्यों को सम्पादित एवं वर्गीकृत करके प्राथमिक और द्वितीयक सारणी तैयार की गयी। प्रत्येक सारणी में आवृत्ति एवं साधारण प्रतिशत दर्शाया गया है। द्वितीयक सारणी मुख्यतः "उपजाति" को स्वतंत्र परिवर्त्य मानकर तैयार की गयी है।

तथ्यों का विश्लेषण वर्णनात्मक दृष्टिकोण से किया गया है। तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् सामान्य निष्कर्षों का प्रतिपादन किया गया है।

अध्यायीकरण

१ ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
२ शोध प्रारूप एवं अध्ययन पद्धति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ सूचनादाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि
४ सूचना सम्प्रेषण एवं विगोपन स्तर
५ आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन
६ आवासीय दशा एवं पड़ोसी सम्बन्ध
७ पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन
८ सामाजिक अन्तःक्रिया एवं जातिगत स्थिति
९ धार्मिक जीवन
१० परिवर्तनशील सामाजिक सांस्कृतिक मनोवृत्ति
११ निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

वाराणसी नगर के चुने हुए डोम सूचनादाताओं की जीवन दशा, अभिवृत्तियों एव मूल्या के अनुभवात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं —

१ सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

वर्तमान अध्ययन में यद्यपि युवा, मध्यम एवं वृद्ध आयु के सदस्य सम्मिलित हैं, तथापि युवा आयु के सदस्यों की बहुलता (६०.४%) है। सूचनादाताओं की शैक्षणिक स्थिति अत्यन्त असन्तोषजनक है। बहुसंख्यक सूचनादाता (७८.८%) अशिक्षित हैं। जिन सूचनादाताओं ने शिक्षा प्राप्त की है उनका शैक्षणिक स्तर अत्यन्त निम्न है।

वर्तमान अध्ययन के अधिकतर सूचनादाता सरकारी नौकरी में संलग्न हैं जो मुख्यतः नगर महापालिका में सफाई कर्मचारी हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सूचनादाता रेल, रोडवेज, बीमा और डाक तार विभाग में सफाई कर्मचारी के रूप में कार्यरत हैं। अधिकतर रहदरिया और बनरसिया डोम सफाई कर्मचारी के रूप में कार्यरत हैं। जबकि घाटिया उपजाति के बहुसंख्यक डोम अपने परम्परागत व्यवसाय अर्थात शव-दाह की क्रिया में संलग्न हैं।

सूचनादाताओं की मासिक आय से सम्बन्धित विवरण यह स्पष्ट करता है कि अधिकतर (५२.८ प्रतिशत) की मासिक आय रुपया ७५१-१००० है। यह स्थिति यद्यपि निम्न मध्यम वर्गीय आयगत स्थिति का परिचायक है तथापि डोम जाति की अपव्ययता, ऋण ग्रस्तता, तथा जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं के पूर्ति की अक्षमता के सन्दर्भ में असन्तोषजनक आर्थिक स्थिति का परिचायक है।

वर्तमान अध्ययन के सूचनादाता (९५.६ प्रतिशत) नगरी पृष्ठभूमि से सम्बन्धित है। अधिकतर वाराणसी नगर के ही निवासी हैं। केवल थोड़े से सूचनादाता मूलतः ग्रामीण क्षेत्र के निवासी हैं जिनका परिवार रोजगार की तलाश में नगर आकर बस गया है। वाराणसी नगर में सूचनादाताओं का फैलाव नगर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में है। रहदरिया डोम मुख्यतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्खीघाट, एवं हबीबपूरा, बनरसिया डोम दुर्गाकुण्ड और कोलुहा तथा घाटिया डोम मणिकर्णिका घाट के निवासी हैं। ये सूचनादाता मुख्यतः सार्वजनिक भूमि पर अनधिकृत निर्माण करके रह रहे हैं या सरकारी आवास में रहते हैं। केवल थोड़े से सूचनादाताओं के पास निजी मकान हैं।

सूचनादाताओं के पिता के शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि केवल ११.२ प्रतिशत सूचनादाताओं के पिता प्राइमरी स्कूल तक शिक्षित थे और शेष सभी के पिता अशिक्षित थे। पिता की पीढ़ी में भी जीविका का प्रमुख साधन सफाई कार्य था, बनरसिया (५२.० प्रतिशत) और रहदरिया (३१.० प्रतिशत) सूचनादाताओं के पिता सफाई कर्मचारी थे जबकि सभी घाटिया डोम सूचनादाताओं के पिता परम्परागत घाट के कार्य में संलग्न थे। अधिकतर सूचनादाताओं के पिता की मासिक आय रु० २५१-५०० थी। पितामह के समय में यद्यपि रहदरिया और बनरसिया दोनों ही उपजाति में सफाई का कार्य ही मुख्य व्यवसाय था तथापि इस पीढ़ी में सूप-दौरी और बढ़ई गिरी का कार्य किया जाता था। घाटिया डोम सूचनादाताओं के पितामह अपने परम्परागत व्यवसाय घाट पर शव-दाह की क्रिया में संलग्न थे।

२ सूचना-सम्प्रेषण एवं विगोपन स्तर

डोम जाति के सूचना सम्प्रेषण एवं सामाजिक विगोपन का स्तर सामान्यतः असन्तोषजनक है। अशिक्षा के कारण समाचार पत्र के प्रभाव से अधिकतर सूचनादाता वंचित हैं। अध्ययन में सम्मिलित ७८.८ प्रतिशत अशिक्षित सूचनादाता के द्वारा समाचार पत्र अध्ययन का प्रश्न ही नहीं उठता है। जो सूचनादाता शिक्षित है उनमें से सिर्फ एक सूचनादाता नियमित रूप से और १८ सूचनादाता कभी-कभी समाचार पत्र का अध्ययन करते हैं। साधारण रूप से शिक्षित सूचनादाताओं में से अधिकतर समाचार पत्र का अध्ययन नहीं करते।

रेडियो/ट्रांजिस्टर सुनने की रुचि भी केवल २०.० प्रतिशत सूचनादाताओं में नियमित रूप से और २४.४ प्रतिशत सूचनादाताओं में कभी-कभी पायी गयी है। अधिकतर सूचनादाता फिल्मी संगीत और समाचार सुनने में रुचि रखते हैं। रहदरिया और बनरसिया की तुलना में यह रुचि घाटिया डोम में अपेक्षाकृत अधिक पायी गयी है। घाटिया और बनरसिया डोम को फिलम संगीत अधिक प्रिय है जबकि रहदरिया डोम की रुचि समाचार में पायी गयी है। सिनेमा देखने की प्रवृत्ति बहुसंख्यक सुचनादाताओं में देखने को मिलती है। अनेक सूचनादाता महीने में एक या दो बार फिल्म देखते है अपराध जासूसी और रोमांटिक फिल्म सबसे अधिक प्रिय पायी गयी हैं।

डोम जाति की भ्रमणशीलता की प्रवृत्ति उनके आर्थिक पिछड़ेपन एवं सामाजिक भेदभाव के कारण अत्यन्त सीमित है। सूचनादाताओं का एक महत्वपूर्ण भाग वाराणसी जनपद या इसके निकटवर्ती स्थल से दूर नहीं गया है। थोड़े से ही सूचनादाता भारत के प्रमुख ऐतिहासिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या धार्मिक स्थानों का भ्रमण कर पाये हैं। अपने निवास क्षेत्र से निकल कर किसी अन्य स्थान पर जाने का कारण सम्बन्धियों से भेंट, तीर्थों का दर्शन, जजमानी, रोजगार की तलाश रहा है। शुद्ध रूप से पर्यटन या धार्मिक स्थलों का भ्रमण डोम जाति के सदस्यों में कम पाया जाता है। इसके प्रमुख कारण उनके विरुद्ध धार्मिक एवं जातिगत भेदभाव का पाया जाना और अभाव ग्रस्त आर्थिक परिस्थिति है।

राजनीतिक सहभागिता की वृद्धि यद्यपि मतदान की प्रक्रिया में भाग लेने वाले सूचनादाताओं के ७२.४ प्रतिशत अंश के द्वारा पर्याप्त मात्रा में होती है तथापि डोम जाति की राजनीतिक जागरूकता एवं सहभागिता का स्तर निम्न है। अनेक सूचनादाता राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के दबाव या प्रलोभन के कारण ही मतदान प्रक्रिया में भाग लेते हैं। व्यक्तिगत रूप से राजनीतिक सक्रियता का अभाव पाया जाता है। अशिक्षा, निर्धनता एवं सामाजिक संस्तरण में निम्नता के कारण डोम जाति की राजनीतिक जागरूकता एवं सक्रियता का स्तर भी निम्न है।

३ आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन

सूचनादाताओं के मुख्य व्यवसाय का अध्ययन करते हुए यह विदित होता है कि वे नगर महापालिका सफाई कर्मचारी के रूप में कार्यरत हैं जिनके पद स्वीपर, कूड़ागाड़ीवान, ट्राली बेलदार, गाड़ीवान बेलदार सीवर कुली है। कुछ सूचनादाता सफाई कर्मचारी या चौकीदार के रूप में प्राइवेट नौकरी में संलग्न हैं। अकुशल श्रमिकों का व्यवसाय ट्राली चालक, रिक्शा चालक, मजदूरी है। कुछ सूचनादाता दुकानदारी एवं व्यापार में संलग्न हैं जिनका काम शराब बेचना, सूअर पालना, बैण्डबाजा बजाना और कूड़े-कबाड़ का धन्धा करना है। कुछ सूचनादाता परम्परागत व्यवसाय में संलग्न हैं जो घाट पर शव दाह का कार्य या सूप दौरी बनाने का कार्य करते हैं।

अध्ययन में सम्मिलित ३६.४ प्रतिशत सूचनादाता कुछ सहायक व्यवसाय कर रहे हैं। इन सहायक व्यवसायों का नाम अंश कालिक सफाई कर्मचारी, बैण्डबाजा बजाना, सूप दौरी बनाना या अकुशल श्रमिक के रूप में कार्य करना।

अधिकतर सूचनादाताओं का वर्तमान व्यवसाय ही प्रथम व्यवसाय है। केवल २३.२ प्रतिशत सूचनादाताओं को पूर्व व्यावसायिक अनुभव है। इन सूचनादाताओं ने पहले प्राइवेट नौकरी, बैण्डबाजा, सूप दौरी बनाना और रिक्शा चलाने के द्वारा अपना व्यावसायिक जीवन प्रारम्भ किया था।

सूचनादाताओं के परिवार में स्त्री और बच्चे दोनों ही जीविकोपार्जन के कार्य में संलग्न पाये गये हैं। ५३.२ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवारों में स्त्री सफाई कर्मचारी नगर महापालिका, सफाई कर्मचारी प्राइवेट और सूप दौरी बनाने के कार्य में भी संलग्न पायी गयी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे अधिक रहदरिया उपजाति की स्त्रियां जीविकोपार्जन के कार्य में संलग्न हैं। १८.० प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार में बच्चे जीविकोपार्जन के कार्य में संलग्न हैं। ये बच्चे अंशकालिक सफाई कर्मचारी, अंशकालिक मजदूरी, बैण्डबाजा और सूप-दौरी बनाने के कार्य में संलग्न हैं। घाटियां और बनरसिया की तुलना में रहदरिया डोम ने अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में जीविकोपार्जन के कार्य में अपने बच्चों को सम्मिलित किया है।

परिवार की कुल मासिक आय के अध्ययन से यह विदित होता है कि घाटिया डोम की आयगत स्थिति रहदरिया, और बनरसिया से अच्छी है। घाटिया डोम के ३२.० प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार की मासिक आय रुपया १००१-१२५० और २४.० प्रतिशत की १२५१-१५०० पायी गयी है।

डोम जाति के परिवारों में बेरोजगारी का अस्तित्व पर्याप्त मात्रा में है २६.८ प्रतिशत परिवारों में एक युवा सदस्य और १४.८ प्रतिशत परिवारों में दो युवा सदस्य बेरोजगार पाये गये हैं। बेरोजगारी की मात्रा बनरसिया डोम में रहदरिया और घाटिया डोम की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक पायी गयी है।

ऋणग्रस्तता डोम परिवारों की एक समस्या है। अध्ययन में सम्मिलित ३७.६ प्रतिशत परिवार ऋणग्रस्त पाये गये हैं। यद्यपि अधिकतर परिवार रुपया १००० से कम के ऋण के बोझ में दबे हैं। परन्तु कुछ ऐसे परिवार भी है जिनका दो हजार रुपया तक का ऋण का बोझ पाया गया है। ऋण बोझ का मुख्य कारण बीमारी और दवा इलाज बताया है। इसके अतिरिक्त जन्मोत्सव, मृत्यु संस्कार और विवाह के कारण भी अनेक परिवार ऋणग्रस्त बन गये हैं। अध्ययन में सम्मिलित ४.४ प्रतिशत परिवारों ने सरकारी ऋण का उपभोग किया है।

अशिक्षा और निर्धनता के कारण डोम जाति आरक्षण की सुविधा का पर्याप्त लाभ नहीं उठा सकी है। अध्ययन में सम्मिलित ९.२ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार के किसी सदस्य या निकट सम्बन्धी ने सरकारी नौकरी में आरक्षण की सुविधा का लाभ उठाया है।

व्यावसायिक गतिशीलता के प्रति सूचनादाताओं का दृष्टिकोण पुत्र या पुत्री के आकांक्षित भावी व्यवसाय के माध्यम से किया गया है। तथ्यों के विवरण से यह स्पष्ट है कि सूचनादाताओं के व्यावसायिक आकांक्षा का स्तर उच्च नहीं है। बहुसंख्यक सूचनादाता (६०.०%) अपने पुत्र का भावी व्यवसाय सफाई कार्य ही चाहते हैं और पुत्री के लिए गृहस्थी उपयुक्त मानते हैं। सूचनादाताओं की यह आकांक्षा उनके आर्थिक पिछड़ेपन और अशिक्षा का प्रतिबिम्ब है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यावसायिक गतिशीलता के लिए आवश्यक प्रेरणा का अभाव वर्तमान अध्ययन के डोम जाति के सूचनादाताओं की एक प्रमुख विशेषता है।

४ आवासीय दशा एवं पड़ोसी सम्बन्ध

सूचनादाताओं की आवासीय दशा से सम्बन्धित तथ्यों का विश्लेषण उनके अभाव ग्रस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिस्थितियों एवं अस्वास्थ्यकर जीवन की दशा को पर्याप्त मात्रा में प्रतिबिम्बित करता है। अधिकतर सूचनदाता (४२.४ %) सार्वजनिक भूमि पर अनाधिकृत निर्माण करके रह रहे हैं और ३२.८ प्रतिशत पैतृक आवास में रहते हैं । पैतृक आवास में रहने वाले सूचनादाताओं की मात्रा घाटिया डोम में तुलनात्मक रूप से अधिक है । जबकि सरकारी आवास में रहदरिया डोम अधिक मात्रा में निवास कर रहे हैं । अनाधिकृत आवास में बनरसिया डोम सबसे अधिक मात्रा में निवास कर रहे हैं । यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि अधिकतर सूचनादाताओं का निवास मलिन बस्तियों में है । मकान तथा सरकारी क्वार्टर सामान्यतः शौच स्थल, कूड़ा फेंकने के स्थान, तालाब के पटाव इत्यादि स्थानों पर है ।

अध्ययन में सम्मिलित ३६.८ प्रतिशत सूचनादाताओं का मकान पक्का है जबकि ४०.८ प्रतिशत का कच्चा है । २२.४ प्रतिशत का मकान कच्चा पक्का मिश्रित दोनों है । सरकारी क्वार्टर को छोड़कर पक्के मकान सामान्यतः अत्यन्त मामूली किस्म के बने हुए हैं । कच्चे मकान बांस-फूंस की झोपड़ी के बने हैं जो खपरैल या टीन से छाये हैं । अधिकतर मकानों में दो या तीन कमरे हैं । आधे से अधिक मकानों में शौच-गृह की सुविधा नहीं है । ७०.८ प्रतिशत मकानों में पानी कल की सुविधा भी नहीं है ।

सूचनादाता अपने मकान में पर्याप्त अवधि गुजार चुके हैं । २४.८ प्रतिशत पितामह की पीढ़ी से, ४३.६ प्रतिशत पिता की पीढ़ी से और ३१.६ प्रतिशत वर्तमान पीढ़ी से अपने निवास स्थल में रह रहे हैं ।

सूचनादाताओं के आवासीय स्थल की अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों की वृद्धि में पशु पालन का विशेष स्थान है । ५७.२ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार में पशु पाले गये हैं । मुख्यतः सूअर ४२.० प्रतिशत परिवारों में पाले गये हैं । सूअर के अतिरिक्त बकरी-बकरा, भेड़-भेड़ी, बत्तख, मुर्गी पालने का शौक भी अनेक सूचनादाताओं के परिवार में देखने को मिलता है। सामान्यतः मकान के आंगन या निवास के कमरे में ही पशु पाले जाते हैं । कुछ सूचनादाताओं ने मकान से पृथक बाड़ा पर पालन के लिए बनाया है और उसमें सूअर पालते हैं । ये स्थान भी आवास से दूर न होने के कारण आवास की गन्दगी को बढ़ाते हैं ।

सूचनादाताओं के पड़ोस के सम्बन्ध में तथ्यों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि २०.८ प्रतिशत सूचनादाताओं के पड़ोस में उनकी ही उपजाति के पड़ोसी निवास करते हैं, २५.६ प्रतिशत के पड़ोस में उनसे भिन्न उपजाति के सदस्य निवास करते हैं, ३५.२ प्रतिशत सूचनादाताओं के पड़ोस में अनुसूचित जाति, १४.८ प्रतिशत के पड़ोस में पिछड़ी जाति और ३.६ प्रतिशत सूचनादाताओं के पड़ोस में उच्च जाति के सदस्य निवास करते हैं । बहुसंख्यक सूचनादाता (५७.२ प्रतिशत) के पड़ोसी की आर्थिक स्थिति उन्हीं के समान है, २८.४ प्रतिशत की पड़ोसी की आर्थिक स्थिति उच्च, १४.४ प्रतिशत के पड़ोसी की आर्थिक स्थिति निम्न है। यद्यपि २५.६ प्रतिशत सूचनादाता पड़ोसी से अपने सम्बन्ध स्नेहपूर्ण और ४२.८ प्रतिशत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य मानते हैं तथापि २२.४ प्रतिशत ने पड़ोसी से अपने सम्बन्ध को पृथकतापूर्ण/तनावपूर्ण बताया है ।

यद्यपि बहुसंख्यक सूचनादाताओं (६१.२ प्रतिशत) का अपने पड़ोसियों से कोई लेन देन नहीं है तथापि शेष सूचनादाता अनाज या बर्तन वस्त्र या रूपये या तीनों का एक साथ लेन-देन अपने पड़ोसियों से करते है ।

५ पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन

काशी के डोम के पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन का अध्ययन अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालता है । वर्तमान अध्ययन के बहुसंख्यक सूचनादाताओं (६६.४ प्रतिशत) के एकाकी परिवार हैं, केवल १३.६ प्रतिशत सूचनादाताओं का परिवार संयुक्त प्रकृति का पाया गया है । रहदरिया बनरसिया और घाटिया यद्यपि इन तीनों उपशाखाओं में एकाकी परिवार की बहुलता है तथापि घाटिया डोम में संयुक्त परिवार का अस्तित्व तुलनात्मक रूप से अधिक पाया गया है । घाटिया डोम में संयुक्त परिवार की अधिकता सम्भवतः उनके अपेक्षाकृत संतोष-जनक आर्थिक स्थिति, दीर्घकालिक नगरीय आवास एवं अपेक्षाकृत स्थायी पारिवारिक जीवन से प्रभावित है।

परिवार के एकाकी प्रवृत्ति के अनरूप डोम जाति के परिवार का आकार भी अपेक्षाकृत सीमित है । ४४.८ प्रतिशत परिवारों में केवल ४-६ सदस्य पाये गये हैं । रहदरिया परिवार का आकार सबसे अधिक विस्तृत पाया गया है ।

डोम जाति के वैवाहिक जीवन का अध्ययन कई बिन्दुओं के माध्यम से किया गया है । सूचनादाता के विवाह की आयु से यह विदित होता है कि ४०.८ प्रतिशत का विवाह १५ वर्ष से कम आयु में सम्पन्न हुआ है । विवाह के समय अधिकतर सूचनादाता के (५१.२ प्रतिशत) पत्नी की आयु १०—१४ वर्ष थी । अतः सूचनादाताओं की पीढ़ी में बाल-विवाह का पर्याप्त मात्रा में प्रचलन था । चूंकि विवाह कम आयु में हुआ था अतः सूचनादाता आर्थिक रूप से अपने परिवार पर निर्भर थे । सामान्यतः विवाह माता पिता (६०.४ प्रतिशत) और निकट सम्बन्धी (३२.० प्रतिशत) के द्वारा तय किया गया था ।

डोम जाति में सीमित मात्रा में अन्तर्जातीय विवाह देखने को मिलता है । रहदरिया और बनरसिया डोम आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित करते हैं परन्तु घाटिया डोम की अन्य उपशाखाओं से विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं करते हैं । वर्तमान अध्ययन के सभी घाटिया डोम के सूचनादाताओं ने अपनी उपजाति में विवाह सम्बन्ध स्थापित किया है । जबकि ३९.० प्रतिशत रहदरिया ने बनरसिया से और ३०.० प्रतिशत बनरसिया ने रहदरिया डोम से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया है । अधिकतर विवाह सम्बन्ध नगर क्षेत्र के अन्तर्गत ही स्थापित किये गये हैं । १३.६ प्रतिशत ने नगर में अपनी बस्ती में और ३१.२ प्रतिशत ने नगर के बाहर बस्ती में विवाह सम्बन्ध स्थापित किये हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह का अवसर डोम जाति में मनोरंजन एवं प्रदर्शन का अवसर होता है। अतः दान दहेज की तुलना में खान-पान और शराब इत्यादि पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है। सूचनादाताओं का विवाह जो आज से अनेक वर्षों पूर्व हुआ था उसमें ५००० या उससे अधिक का व्यय अनेक सूचनादाताओं ने किया है।

दाम्पत्य कलह डोम वैवाहिक जीवन की एक सामान्य विशेषता है। २९.२% सूचनादाताओं ने बहुधा और ५९.२ प्रतिशत ने कभी-कभी दाम्पत्य कलह की घटना को स्वीकार किया है। घाटियों एवं बनरसिया की तुलना में रहदरिया डोम ने दाम्पत्य कलह को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में स्वीकार किया है। दाम्पत्य कलह का कारण पारिवारिक व्यय की अधिकता शराब खोरी, पत्नी की दुश्चरित्रता इत्यादि बतलाया गया है।

निम्न जातियों में अभावग्रस्त परिस्थितियों के होते हुए भी बहु-पत्नी की प्रथा पायी जाती है। वर्तमान अध्ययन में ५.२ प्रतिशत सूचनादाताओं की एक से अधिक पत्नियां हैं। एक से अधिक पत्नी होने का कारण पहली पत्नी की अस्वस्थता, निःसन्तान होना, या दुश्चरित्र होना बताया गया है।

पुनर्विवाह का प्रचलन डोम जाति में पाया जाता है। अध्ययन में सम्मिलित १३.२% सूचनादाताओं के परिवार में पुनर्विवाह की घटना घटित हुई है। पुनर्विवाह का कारण पत्नी या पति की मृत्यु या तलाक बताया गया है।

डोम जाति में विवाह विच्छेद की घटना घटित हुई है। तलाक का प्रमुख कारण शराबखोरी, फिजूल-खर्ची, पति या पत्नी का अनैतिक चरित्र या दूसरा विवाह कर लेना बताया गया है।

सूचनादाताओं की पीढ़ी में वैवाहिक जीवन का स्वरूप अध्ययन करने के पश्चात् उनके वैवाहिक आकांक्षा का अध्ययन पुत्र-पुत्री के विवाह के माध्यम से किया गया है। अधिकतर सूचनादाता अल्प आयु में अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह नहीं करना चाहते हैं। परन्तु वे अधिक आयु में भी विवाह के पक्षधर नहीं हैं। अधिकतर सूचनादाता (५१.२ प्रतिशत) पुत्र का विवाह २२-२५ वर्ष की आयु में और पुत्री का विवाह १६-१८ वर्ष की आयु में करना उपर्युक्त मानते हैं। पुत्र और पुत्री दोनों के विवाह में स्वतंत्र निर्णय के वे पक्षधर नहीं है। माता-पिता के द्वारा पुत्र एवं पुत्री का विवाह तय किया जाना वे उचित मानते हैं। अन्तर्जातीय विवाह को सीमित मात्रा में पुत्र के लिए स्वीकार किया जा सकता है परन्तु पुत्री के लिए नहीं।

६ सामाजिक अन्तःक्रिया एवं जातिगत स्थिति

डोम जाति के सामाजिक अन्तःक्रिया का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि परम्परागत प्रतिबन्धों की परिधि में अभी भी डोम जाति के सदस्य बंधे हुए हैं। अध्ययन में सम्मिलित केवल २.८ प्रतिशत सूचनादाता के परिवार को विवाह आदि सामाजिक उत्सव पर उच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति के द्वारा आमंत्रण प्राप्त हुआ है। अधिकतर सूचनादाताओं का मैत्री सम्बन्ध खटिक, चमार, दुसाध, धोबी, भर, जैसे अनुसूचित जातियों से ही है।

डोम जाति के सदस्यों का अनुसूचित जातियों के साथ खान-पान का सम्बन्ध बहुत कम है। अध्ययन में सम्मिलित केवल २२.४ प्रतिशत सूचनादाताओं को चमार और खटिक जाति के द्वारा ही आमंत्रण प्राप्त हुआ है। स्वयं सूचनादाताओं ने अपने यहाँ खटिक चमार और भर को सामाजिक उत्सव पर आमंत्रित किया है। परन्तु ये आमंत्रण भी थोड़े से सूचनादाताओं के द्वारा किया गया है। सामान्य रूप से डोम जाति का अन्य अनुसूचित जाति के सामाजिक अन्तःक्रिया प्रतिबन्धित है।

अपनी जातिगत स्थिति का मूल्यांकन करते हुए अधिकतर रहदरिया डोम अपनी जाति के सदस्यों को ईमानदार एवं परिश्रमी मानते हैं। बनरसिया जाति के अधिकतर सूचनादाता अपनी जाति के सदस्यों को बात का पक्का और ईमानदार मानते हैं। घाटिया डोम अपने जाति के आलोचक प्रतीत होते हैं। अधिकतर घाटिया डोम ने अपनी जाति के सदस्यों को विलासी एवं झगड़ालू माना है।

डोम जाति के सदस्य उच्च जातियों में ब्राम्हण की प्रमुख विशेषता धार्मिक मानते हैं तथापि अनेक सूचनादाताओं ने उन्हें पाखण्डी, धूर्त और बेईमान बतलाया है। अधिकतर सूचनादाताओं ने क्षत्रिय जाति के सदस्यों को क्रोधी और आक्रामक माना है। वैश्य जाति को मुख्यत: लालची मानते हैं। कायस्थों की प्रमुख विशेषता बुद्धिमानी मानते हैं। यादव जाति को अधिकतर सूचनादाताओं ने विवेकहीन एवं क्रोधी माना है।

अनुसूचित जातियों में धोबी की प्रमुख विशेषता परिश्रमी बतायी गयी है। खटिक का प्रमुख गुण बेइमानी माना गया है। चमार को अधिकतर सूचनादाताओं ने आलसी माना है और दुसाध को ईमानदार बतलाया है।

डोम जाति के अधिकतर सूचनादाता जाति व्यवस्था को दैवीय व्यवस्था नहीं मानते हैं। अधिकतर सूचनादाताओं ने व्यक्ति की श्रेष्ठता का आधार कर्म माना है न कि जन्म। अधिकतर सूचनादाता पूर्व जन्म के कर्मों के परिणाम में आस्था रखते हैं।

अधिकतर सूचनादाता यह मानते हैं कि अपनी निम्न स्थिति के लिए हरिजन जाति स्वयं उत्तरदायी है। आलस्य, निष्क्रियता, अनैतिकता, बेइमानी को हरिजन जाति के पिछड़ेपन का कारण माना गया है। बहुसंख्यक सूचनादाता यह मानते हैं कि परम्परा जाति व्यवस्था ने हरिजनों का आर्थिक रूप से शोषण किया है।

हरिजन कल्याण में शिक्षा की प्रभावशाली भूमिका को बहुसंख्यक सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है ' अधिकतर सूचनादाता ये मानते हैं कि हरिजन कल्याण से सम्बन्धित सुविधाओं का वितरण असमान रूप से किया जाता है। निर्धन एवं जरूरत मंद व्यक्ति के स्थान पर पहुंच वाला व्यक्ति भ्रष्ट तरीकों से सहायता प्राप्त कर लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिजन जाति की समस्याओं के निराकरण के लिए अधिकतर सूचनादाताओं (५५.६%) ने स्वतंत्र हरिजन राजनीतिक संगठन की आवश्यकता पर बल दिया है। सूचनादाताओं के एक महत्वपूर्ण अंश ने शोषण से मुक्ति के लिए हरिजन जातियों को संगठित होकर आक्रामक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया है।

७ धार्मिक जीवन

डोम जाति के धार्मिक जीवन में दीर्घ एवं लघु परम्पराओं का मिश्रण है। वे मुख्य रूप से शंकर के उपासक हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त हनुमान, दुर्गा, शीतला मां, राम-सीता की भी वे उपासना करते हैं। इनकी आराधना वे सामान्यत: विशेष पर्व पर करते हैं। अपने घर में राम-सीता, शंकर, हनुमान, दुर्गा का चित्र और मूर्ति भी रखते हैं। अशिक्षा के कारण धार्मिक ग्रन्थों का पढ़ना एवं सुनना कम पाया जाता है। कुछ सूचनादाता रामायण एवं गीता को पढ़ते एवं सुनते हैं। तीर्थ दर्शन की प्रवृत्ति डोम जाति में अत्यन्त सीमित है। कुछ डोम परिवार के सदस्य प्रयाग, गया, गंगासागर और बद्रीनाथ तीर्थ करने के लिये गये हैं। ज्यूतिया, गणेश-चतुर्थी और तीज का व्रत रखने की प्रवृत्ति कुछ डोम परिवारों में पायी जाती है।

डोम जाति की अपनी कुछ लघु परम्परायें भी हैं। घाटिया डोम की कुल देवी सायर माई हैं, रहदरिया और बनरसिया की कुल देवी डोमिनियां माई हैं इनकी आराधना सूचनादाता करते हैं। विशेष रूप से वार्षिक शृंगार पर पशु बलि एवं नाचने गाने का कार्यक्रम किया जाता है।

बहुसंख्यक सूचनादाताओं को भूत-प्रेत में विश्वास है। लगभग २१.२ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार का कोई सदस्य भूत प्रेत से प्रभावित हो चुका है। ओझा की शक्ति में बहुसंख्यक सूचनादाता विश्वास करते हैं।

ईसाई धर्म प्रचारकों के सम्पर्क में १९.२ प्रतिशत सूचनादाता आ चुके हैं। ३.६ प्रतिशत सूचनादाताओं के निकट सम्बन्धियों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है।

वर्तमान अध्ययन के सूचनादाताओं का जिन हरिजन संगठनों से सम्बन्ध है उनके नाम रविदास सम्प्रदाय, कबीर पन्थ, हरिजन सेवक संघ, सतनामी सम्प्रदाय, आर्य समाज हैं। रविदास सम्प्रदाय का प्रभाव सबसे अधिक पाया गया है, घाटिया डोम अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में रविदास सम्प्रदाय के समर्थक है।

८ परिवर्तनशील सामाजिक सांस्कृतिक मनोवृत्ति

वर्तमान अध्ययन में डोम जाति के परिवर्तनशील सामाजिक सांस्कृतिक मनोवृत्ति का अध्ययन प्रक्षेपण विधि के माध्यम से किया गया है। कुछ परिस्थितियां सूचनादाताओं के सम्मुख प्रस्तुत करके अपनी प्रतिक्रिया जानने का प्रयास किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान अध्ययन से यह भली-भांति स्पष्ट है कि डोम जाति में आत्मसम्मान, आक्रोश एवं प्रतिकारात्मक दृष्टिकोण का विस्तार हो रहा है। परिस्थिति संख्या एक से यह स्पष्ट है कि अधिकतर डोम पूजा-पाठ में अस्पृश्यता के आधार पर भेदभाव स्वीकार नहीं करते हैं। परिस्थिति संख्या दो से यह स्पष्ट है कि अधिकतर सूचनादाता हरिजनों के साथ निवास सम्बन्धी भेदभाव के विरुद्ध हैं। परिस्थिति संख्या तीन से यह स्पष्ट है कि उच्च जाति के युवक और हरिजन युवती का अन्तर्जातीय विवाह पर्याप्त इन्तजार और अभिभावकों के समर्थन द्वारा होना अधिक उचित है। परिस्थिति संख्या चार से यह स्पष्ट है कि खान-पान एवं सामाजिक आमंत्रण में हरिजन जाति के साथ किया जाने वाला भेद-भाव बहुसंख्यक सूचनादाता बिल्कुल स्वीकार नहीं करते हैं। परिस्थिति संख्या पाँच से यह स्पष्ट है कि घूस-खोरी को यद्यपि डोम जाति के सदस्य खराब मानते हैं परन्तु अपनी आर्थिक स्थिति की विवशता को ध्यान में रखते हुए सरकारी अधिकारी को घूस देकर अपना काम निकालना खराब नहीं मानते हैं। परिस्थिति संख्या छः से यह स्पष्ट है कि उच्च जाति के द्वारा हरिजन महिला के अनैतिक शोषण को उचित नहीं मानते हैं तथापि वे इसके प्रतिकार के उग्र दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करते हैं। परिस्थिति संख्या सात से स्पष्ट है कि छूआ-छूत का अनुमोदन वे नहीं करते हैं। असावधानीवश सवर्ण हिन्दू का शरीर छू जाने पर हरिजन सदस्य के डाट-फटकार को पसन्द नहीं करते। चुनाव में हरिजन मतदाताओं के डराये जाने पर हरिजनों का दबना अधिकतर सूचनादाता उचित नहीं मानते हैं तथा वे पुलिस प्रशासन की मदद द्वारा अपने राजनीतिक हितों की रक्षा करना उचित मानते हैं। परिस्थिति संख्या आठ से स्पष्ट है कि हरिजन समुदाय में आत्म सम्मान की भावना बढ़ रही है। यदि कोई हरिजन महिला पति के दुराचरण और आर्थिक विवशता के कारण वेश्यावृत्ति अपनाना चाहती है तो इसे अधिकतर सूचनादाता उचित नहीं मानते हैं। उनका विचार है कि परिश्रम से परिवार का भरण-पोषण करना वेश्यावृत्ति की तुलना में अच्छा है।

पति के द्वारा पत्नी उत्पीड़न के सम्बन्ध में सूचनादाताओं के दृष्टिकोण का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि पत्नी को पति के अत्याचार की शिकायत निकट सम्बन्धियों और पंचायत से करनी चाहिए। अधिकतर सूचनादाता पति के अत्याचार का अनुमोदन नहीं करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रानी खेत (जिला अल्मोड़ा) उत्तर प्रदेश में पर्वतीय नारियों की सामाजिक दशाओं का अध्ययन

विमल चन्द्र जैन

प्रस्तावना

जिला अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश) रानीखेत कुमायूँ पर्वतीय अंचल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। रानीखेत समुद्र तट से लगभग ६,००० फिट ऊँची पहाड़ी पर बसा है। यह पर्वतीय अंचल कुमायूं प्रदेश के मूल निवासियों द्वारा बसा हुआ है। रानीखेत में विभिन्न जातियों, वर्गों एवं धर्मों के व्यक्ति निवास करते हैं। इस क्षेत्र में अधिकांशतः पन्त, जोशी, त्रिपाठी, तिवारी, विष्ट, भट्ट, जुयाल, पांडे आदि समुदायों के व्यक्ति रहते हैं। यहां की पर्वतीय नारियां विशेष रूप से पितृसत्तात्मक, पितृवंशीय एवं पितृस्थानीय सामाजिक परिवेश में रहती हैं। इस पुरुष प्रधान समाज में पर्वतीय नारी की सामाजिक दशायें क्या हैं ? इस उद्देश्य से प्रस्तुत अध्ययन को संचालित किया गया है।

शोध-विन्यास

प्रस्तावित अध्ययन का उद्देश्य रानीखेत की पर्वतीय नारियों की सामाजिक दशाओं का अध्ययन है। इस शोध का **विश्व** रानीखेत है। इस अध्ययन का निदर्शन १०० नारियों का अध्ययन है जो कि विभिन्न वर्गों, समुदायों से दैव निदर्शन पद्धति से चयनित की गयी है।

इस शोध में अनुसूची प्रणाली, साक्षात्कार प्रणाली, क्षेत्रावलोकन तथा अर्द्ध-सहभागी अवलोकन पद्धति के द्वारा सूचनाओं एवं तथ्यों को एकत्र किया गया है तथा सांख्यिकीय पद्धति द्वारा सूचनाओं का शोधन किया गया जिससे सूचनाओं को वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

इस शोध में विशेष रूप से नारियों की सामाजिक दशाओं, पारिवारिक संरचना, विवाह,

---

विमल चन्द्र जैन, प्रवक्ता, परास्नातक समाजशास्त्र विभाग, बद्री विशाल कॉलेज, फर्रुखाबाद (कानपुर विश्वविद्यालय)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थी संचालन, धार्मिक कृत्यों एवं उत्सवों में सहभागिता, शिक्षा की दशाएं, आर्थिक दशाएं एवं सांस्कृतिक जीवन की परिसीमाओं में रानीखेत की पर्वतीय नारी का अध्ययन किया गया है।

तथ्य विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत शोध में रानीखेत में पर्वतीय समाज की पारिवारिक संरचना के तथ्यों को तालिका संख्या १ में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या—१
पारिवारिक संरचना

परिवार के प्रकार	संख्या		संख्या		योग
		पुरुष	स्त्रियां	बच्चे	
संयुक्त परिवार	५	१५	१२	२०	४७
मूल परिवार	९५	९०	१०२	२०५	३९७
	१००	१०५	११४	२२५	४४४

उपरोक्त तालिका से निम्नलिखित तथ्यों का विवरण मिलता है।

१— पर्वतीय समाज अधिकांशतः मूल परिवारों (९५) में विभक्त हैं।

२— संयुक्त परिवारों की संख्या ५ है जो इस तथ्य को परिलक्षित करता है कि संयुक्त परिवार काफी अंशों तक टूट चुके हैं।

३— इन परिवारों में कुल १०५ पुरुष, ११४ स्त्रियाँ एवं २२५ बच्चे हैं। यह तथ्य इस बात को इंगित करता है कि पुरुषों और स्त्रियों का अनुपात स्त्रियों के पक्ष में अधिक है और बच्चों की संख्या भी कुछ कम है जिनका औसत २.२५ है।

रानीखेत के पर्वतीय समाज की पारिवारिक संरचना का अवलोकन करने से यह सिद्ध होता है कि वर्तमान सामाजिक परिवर्तनों से यह अंचल अछूता नहीं है।

इस अंचल में 'आँचल विवाह', 'सरोल अथवा बराह विवाह' तथा 'मन्दिर विवाह' अधिक प्रचलित हैं। आँचल विवाह के अन्तर्गत वैदिक रीति एवं मन्त्रों के साथ वधू को वर के आँचल में बांधकर विवाह किया जाता है। जितना भी धन वधू पक्ष का विवाह में व्यय होता है वह समस्त धन वर के पिता को कन्या के पिता को देना पड़ता है। या वधू का पिता कुछ भी न लेकर समस्त प्राप्त व्यय धन कन्या को दान में भेंट कर देता हैं। सरोल या बराह विवाह पद्धति में वर के पिता से जितना भी धन निश्चित कर लिया जाता है वह समस्त धनराशि एक साथ अथवा कुछ पहले टीके की रस्म पर व शेष विवाह पर देनी पड़ती है। वर का बारात के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ जाकर वधू को लाना आवश्यक नहीं है। बारात जाकर वधू को ले आती है। वधू के लिए वस्त्र, आभूषण तथा मूल्य देना अनिवार्य है। वधू को मोटी काली चूड़ी पहनना तथा बारात के साथ वर के घर जाना इस विवाह के प्रमाण हैं।

मकर संक्रांति के दिन वर और वधू शिव पार्वती के मंदिर के चारों तरफ तीन बार परिक्रमा करते हैं और विवाह सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के विवाह को 'मन्दिर विवाह' कहते हैं।

पर्वतीय स्थानों में दहेज प्रथा खूब प्रचलित है यद्यपि इसका रूप मैदानिक क्षेत्रों से भिन्न हैं यहाँ पर 'कन्या मूल्य' की प्रथा विवाह संस्था का एक अभिन्न अंग है। यह कुप्रथा है जिसका विरोध ९७ प्रतिशत स्त्रियों ने किया है।

रानीखेत में विधवाओं की दशा अत्यन्त हीन एवं शोचनीय है। विवाह एवं अन्य मांगलिक कार्यों में उनकी उपस्थिति का बहिष्कार किया जाता है। धार्मिक कट्टरता एवं अंधविश्वासों के कारण पर्वतीय समाज विधवा विवाह का विरोधी है परन्तु ९० प्रतिशत स्त्रियां विधवा विवाह के पक्ष में हैं।

पर्वतीय समाज में पर्दा-प्रथा न्यून अंशों में पायी जाती है केवल १९ प्रतिशत महिलायें पर्दा प्रथा के पक्ष में हैं। महिलाओं के अनुसार पर्दा प्रथा परिवार के वृद्ध सदस्यों के प्रति आदर एवं शील का द्योतक है परन्तु हर समय पर्दा करने के वह विरुद्ध हैं।

बाल विवाह का प्रचलन इस पर्वतीय अंचल में अभी तक चला आ रहा है। बाल विवाह से सम्बन्धित आंकड़ों को तालिका संख्या २ में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या—२

विवाह आयु सीमा

विवाह के समय आयु	१० वर्ष	१० से १४ वर्ष	१४ से १८ वर्ष	१८ से ३० वर्ष	२० से ऊपर
संख्या	५	३०	४५	११	१

उपरोक्त तालिका से निम्नलिखित तथ्यों का उद्बोधन होता है।

१— अधिकांश स्त्रियों की विवाह की आयु १० से १८ वर्ष तक है इस आयु सीमा में विवाह संख्या ८० है।

२— १८ वर्ष से ऊपर स्त्री विवाह की संख्या केवल १२ है।

इन तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि इस पर्वतीय क्षेत्र में बाल विवाह का प्रचलन अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। फलस्वरूप स्त्रियों के स्वास्थ्य, व्यक्तित्व के विकास एवं उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पर्वतीय अंचल की नारियां अधिकांश रूप से शारीरिक परिश्रम करती हैं। डींगि तथा प्राकृतिक स्रोतों से पानी लाना यहां की स्त्रियों का मुख्य कार्य है। बहुत कम परिवारों में गृह कार्य में सहायता देने के लिए सेवक हैं।

रानीखेत की जलवायु चीड़ तथा देवदार के वृक्षों से घिरे होने के कारण स्वास्थ्य के लिये अति उत्तम है परन्तु अन्धविश्वास कुप्रथाओं के कारण स्त्रियों की एवं बालकों की मृत्यु अधिक हो जाती है। परन्तु अध्ययन में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार प्रसूति मृत्यु ४ प्रतिशत एवं बाल मृत्यु २१ प्रतिशत है।

पर्वतीय समाज में गृह प्रबन्ध एवं गृहस्थी संचालन सम्बन्धी आंकड़ों को तालिका नं० ३ में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका नं० ३

गृहस्थी का समस्त प्रबन्ध करती है	पति की सहयोगी होकर कार्य करती है	गृहिणी का कोई हाथ नहीं
८२	२	१६

उपरोक्त तालिका से निम्नलिखत तथ्य स्पष्ट होते हैं :

१— ८२% स्त्रियाँ गृह प्रबन्ध स्वयं करती हैं। २% स्त्रियां पति की सहयोगिनी के रूप में कार्य करती हैं अर्थात् पति भी गृह प्रबन्ध में भाग लेते हैं। १६% स्त्रियां गृह प्रबन्ध में कोई रुचि नहीं लेतीं। यह तथ्य इस सत्य को परिलक्षित करते हैं कि गृह प्रबन्ध एवं गृह संचालन का अधिकांश भार स्त्रियों पर ही है।

रानीखेत की पर्वतीय नारियों की शिक्षा का स्तर एवं शैक्षिक दशाओं आदि से सम्बन्धित आंकड़ों को तालिका नं० ४ में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका नं० ४
स्त्रियों में शिक्षा का स्तर

अशिक्षित	शिक्षित	प्राथमिक	जूनियर हाई स्कूल	हाई स्कूल	इण्टर मीडिएट	बी०ए०
३२	६८	३५	२०	७	५	१
३२%	६८%	५०.४०%	५९.४१%	१०.३०%	७.३%	१.४%

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त तालिका से निम्नलिखित तथ्य पता चलते हैं। ६८% स्त्रियां शिक्षित हैं जिनमें ३५ प्राथमिक कक्षा उत्तीर्ण हैं। २० जूनियर हाई स्कूल, ५ इण्टरमीडिएट तथा १ बी० ए० हैं। ३२% स्त्रियां अशिक्षित हैं।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों की अभिवृत्ति अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति क्या है, इस सम्बन्ध में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं।

४४% स्त्रियां अपने बच्चों को स्वयं पढ़ाती हैं। ३०% स्त्रियों के पति अपने बच्चों की शिक्षा में सहायता देते हैं। इसके अतिरिक्त बालिकाओं की शिक्षा के प्रति स्त्रियों की अभिवृत्ति इस प्रकार है। ४०% स्त्रियां बालिकाओं को उच्च शिक्षा देने की समर्थक हैं। ५४% स्त्रियां बालिकाओं को शिक्षा देने के पक्ष में हैं परन्तु उच्च शिक्षा कीं समर्थक नहीं हैं। ६% बालिकाओं को घरेलू शिक्षा देने के पक्ष में हैं।

पर्वतीय नारियों की व्यावसायिक संरचना से सम्बन्धित आंकड़ों को तालिका नं० ५ में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका नं० ५
स्त्रियों के स्वतन्त्र व्यवसाय

अध्यापन कार्य	लिपिक	फल उत्पादन	दस्तकारी (हस्तकलाएं)	घरेलू नौकरी	दुकानदारी
४	२	५	५	२	१

उपरोक्त तालिका के अनुसार ४ स्त्रियां अध्यापन कार्य, २ लिपिक कार्य, ५ फलोत्पादन, ५ दस्तकारी, २ घरेलू नौकरी तथा १ दुकानदारी का कार्य करती हैं। यह सूचना इस बात की द्योतक है कि स्त्रियों को अपने पैरों पर खड़े रहने एवं आर्थिक स्वतन्त्रता से वंचित रखा जाता है।

रानीखेत की कुमायूंनी नारी लोकगीत व नृत्य आदि में अधिक रुचि लेती हैं। इस संबंध में तालिका नं० ६ में तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं।

तालिका नं० ६
लोकगीत एवं नृत्य में पर्वतीय नारियों की रुचि

लोकगीत जानने वाली स्त्रियां	संगीत जानने वाली स्त्रियां	वाद्य संगीत	कं० संगीत	लोकगीत नृत्य
४२	६	२	४	२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त तालिका से निम्न तथ्य स्पष्ट हुए हैं :

१— ४२% स्त्रियां लोकगीत जानने वाली एवं गाने वाली हैं।

२— ६% स्त्रियां संगीत जानती हैं एवं संगीत का अभ्यास करती हैं।

३— २% स्त्रियां वाद्य संगीत में रुचि रखती हैं। ४% कं० संगीत में रुचि रखती हैं।

४— २५% स्त्रियां अन्य प्रकार के नृत्यों में रुचि रखती हैं।

५— शेष २१% स्त्रियों को इन कार्यक्रमों में कोई दिलचस्पी नहीं है।

इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश स्त्रियाँ सांस्कृतिक जीवन में रुचि रखती हैं और उसमें सहयोग करती हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

उपरोक्त अध्ययन से प्रमुख निष्कर्ष पर्वतीय नारी की सामाजिक दशाओं के बारे में कुछ इस प्रकार उद्घाटित हुए हैं।

१— संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है तथा मूल परिवारों की स्थापना हो रही है। इस दशा में नारियों को सामाजिक परिवर्तन के प्रवाह में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं।

२— वैवाहिक क्षेत्र में नारियों की स्थिति उच्च जान पड़ती है परन्तु कन्या मूल्य, बाल विवाह, प्रसूति मृत्यु आदि इस तथ्य के द्योतक हैं कि नारियों का शारीरिक एवं मानसिक रूप से शोषण किया जा रहा है और इसके लिये सामाजिक नीति विषयक कानूनों को बनाना होगा।

३— शिक्षा के क्षेत्र में पर्वतीय नारियां अधिकांश रूप से शिक्षित हैं परन्तु उनकी शिक्षा में प्रौद्योगिकी ज्ञान अथवा आर्थिक स्वतन्त्रता के हेतु तकनीकी शिक्षा का अभाव है। स्त्रियां बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा के प्रति जागरूक हैं। यह बदलते हुए सामाजिक परिवर्तनों के एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में हैं। यह इस तथ्य का द्योतक है कि उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो कुमायुँनी बालक एवं बालिकाएं राष्ट्रीय जीवन धारा से तालमेल रख सकते हैं।

४— आर्थिक दृष्टिकोण से अभी भी कुमायुँनी नारी पुरुषों के अधीन हैं क्योंकि केवल कुछ ही प्रतिशत स्त्रियों के अपने स्वतंत्र व्यवसाय हैं। इसके लिये सरकार एवं समाज को उचित कदम उठाने होंगे जिससे कि कुमायुँनी नारी अधिक रूप से स्वतंत्र हो सके एवं समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकें। सांस्कृतिक क्षेत्र में स्त्रियों की दशा अच्छी है और वे लोक गीतों, लोक संगीत एवं नृत्य में उनकी सहभागिता प्रचुर मात्रा में दिखायी पड़ती है।

उपरोक्त अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर रानीखेत की कुमायुँनी नारी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक स्थिति संक्रमण कालीन है। सामाजिक परिवर्तन की धारा में प्रगति करने के लिये वह है परन्तु पुरुष प्रधान समाज के दबाव एवं आतंक तथा आर्थिक परतन्त्रता के कारण उसका स्थान सामाजिक न्याय के अनुसार उसको प्राप्त नहीं हुआ है।

उचित साधनों एवं सुविधाओं के अभाव में रानीखेत की स्त्रियाँ विभिन्न व्यवसायों को करने में अपने को असमर्थ पाती हैं। स्त्रियाँ फलोत्पादन द्वारा अपनी आय में वृद्धि करती हैं। इस व्यवसाय को करने वाली स्त्रियों को उचित, आर्थिक तथा विषय सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में हर सम्भव सहायता दी जानी चाहिए। उन्हें फल संरक्षण, अचार, मुरब्बे, चटनी आदि बनाने की निःशुल्क प्रशिक्षण को सुविधा मिलनी चाहिये जिससे वह आर्थिक दशा सुधार सकें।

५% स्त्रियां कढ़ाई-सिलाई का व्यवसाय करती हैं, पर वैज्ञानिक विधि के प्रशिक्षण के अभाव में कुशलतापूर्वक नहीं कर पाती हैं। अतः हस्त व मशीन के द्वारा कढ़ाई व सिलाई का स्कूल महिलाओं के लिए इस दिशा में बहुत उपयोगी होगा।

महिला समितियों एवं मण्डल द्वारा अम्बर चर्खे का प्रचार किया जाना चाहिए। इसके द्वारा खाली समय के सदुपयोग के साथ-साथ धनोपार्जन भी कर सकती हैं। खादी गामोद्योग को भी इस दिशा में यथासम्भव सहायता देनी चाहिए।

बालकों के स्कूल में भी महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति लाभप्रद होगी। प्राथमिक पाठशालाओं की अध्यापिकाओं के लिए एक 'दीक्षा विद्यालय' खोलना चाहिये तथा इच्छुक स्त्रियों को छात्र वृत्ति देकर प्रोत्साहित करना चाहिए।

स्वास्थ्य सेवा की इच्छुक स्त्रियों को भी छात्र वृत्ति एवं अन्य सुविधायें देकर प्रोत्साहित करना चाहिए।

यदि नारी उत्थान सम्बन्धित कार्यक्रमों को सघन रूप में बहुमुखी दिशाओं में चलाया जाये तो निश्चित रूप से कुमायुँनी नारी की सामाजिक दशाओं में उल्लेखनीय सुधार हो सकता है।

आभार

मैं प्रोफेसर (डा०) लक्ष्मी शंकर मिश्र रीडर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, डी० वी० एस० कालेज, कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिनके निर्देशन में यह प्रपत्र तैयार किया गया है।

ग्रन्थागार, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा का भी आभारी हूं जिन्होंने अप्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन की अनुमति प्रदान की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोफेसर डा० गोपाल कृष्ण अग्रवाल, अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल का भी आभारी हूं जिन्होंने तथ्यों के संग्रहण में सहयोग प्रदान किया।

ग्रन्थ सूची

1 Sanwal, R. D. : Social Stratification in Rural Kumoan 1975

1 (a) Atkinson, E. T. : Kumoan Hills–Anthropological Study 1974

2 Sah, Munna Bhai : The Kumoan Hills (unpublished Thesis) 1954 Agra University, Agra.

3 Gupta, Leela S. : A Socio-Geographical Study of the Hill Resort with Special reference to Nainital (Unpublished Thesis) 1962 Agra Universtiy, Agra.

4 Johri, Pradeep : Tribal Economy in Kumoan 1965 (Unpublished Thesis) Agra University, Agra.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी स्तम्भ

बिहार की जनजातियाँ

त्रिवेणी झा

जनजातीय जीवन एक ऐसा जीवन है जो सामान्य भारतीय जीवन से कुछ भिन्न, कुछ अपूर्वता को लेकर जीया जाता है। इसका मुख्य कारण इसके आर्थिक दृष्टिकोण से दो भागों में विभाजन को कहा जा सकता है। पहले स्तर की वह जनजाति है जो एक निश्चित भू-भाग पर रहकर कृषि कार्य करती है तथा अपना जीवन निर्वाह किसी प्रकार कर लेती है। दूसरी श्रेणी की वह जनजाति है जो झुम खेती करती है, जंगल में कंद-मूल फल आदि के सहारे जीवन व्यतीत करती है।

किन्तु जनजाति शब्द के उच्चारण मात्र से हमारे मानस पटल पर ऐसे असंख्य व्यक्ति उभर आते हैं जो आधुनिक प्रगतिशील भारत में भी काफी उपेक्षित, अशिक्षित और पिछड़े हुए हैं। निर्धनता सम्भवतः इनके जीवन की विशेषता बनी हुई है।

भारतवर्ष के बिहार राज्य में ही कुल ३१ जनजातियाँ हैं, यथा १. असुर २. बुथड़ी ३. बैगा ४. बनजारा ५. हो ६. बेडीआ ७. भूमीज ८. बिनजिआ ९. बिरहोर १०. बिरजिया ११. चेरो १२. चिकबेराएक १३. गोंड १४. गोरेत १५. करमाली १६. खारिया १७. खरवार १८. खोंड १९. किसान २०. कोरा २१. कोरवा २२. लोहरा २३. माहली २४. मालपहड़िया २५. मुन्डा २६. ऊँराव २७. परहैया २८. संथाल २९. शौर्या पहाड़िया ३०. सावर ३१. अनक्लासी फायड : जिनकी १९६१ की जनगणना में १६,९३० एवं १९७१ में बढ़कर ३६,२८५ की संख्या थी।

सरकार द्वारा संचालित जनगणनाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि जनजातियों की जनसंख्याओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है। एक ओर १९४१ की जनगणना से पता चलता है कि १९४१ की जनगणना प्रतिवेदन में इनकी कुल आवादी बिहार में ३६,२६७४२ थी, तो १९६१ में यह ४२,०४७८४ हो गयी और १९७१ में यह बढ़कर ४९,३२३७७ हो गयी जब

त्रिवेणी झा, समाजशास्त्र विभाग, नीलमणि केदार नाथ कॉलेज, भीड़हा, रोसड़ा, समस्तीपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि १९८१ की जनगणना प्रतिवेदन ५५,२५४४५ लगभग प्रमाणित करता है। इतनी बड़ी आबादी ३१ जनजातियों को लेकर बनी है, इसी तथ्य को दूसरे रूप में कहा जा सकता है कि १९७१ की जनगणनानुसार भारतवर्ष की कुल आबादी का ६.९३% और बिहार राज्य की आबादी का ८.५% जनजातियों का एक प्रान्त है। इसके साथ ही १९८१ की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार राज्य के जनजातियों की आबादी राज्य की कुल जनसंख्याओं का ८ ३१% है इनमे से १६.११% लोग पढ़ लिख सकते हैं।

जन संख्यात्मक तथ्य

इस प्रकार जनसंख्या की दृष्टि से बिहार राज्य में सर्वाधिक संख्या में संथाल जनजाति पायी जाती है। मात्र यही जनजाति राज्य की पूरी जनजातीय संख्या का ३६.५% है तथा इसकी आबादी भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। १९४१ में इसकी संख्या १३,९५६६ थी, जबकि १९६१ में यह बढ़कर १५,४१,३४५ हो गयी और १९७१ की जनगणना प्रतिवेदन में १८,००,७६४ के रूप में पाया गया और फिर १९८१ में इसकी जनसंख्या लगभग २०,१२,३६७ से भी अधिक हो चुकी है। इतनी बड़ी आबादी में से ५५.७% संथाल, मात्र संथाल परगना में ही निवास करते हैं। सम्भवत: इसी वजह से राज्य के इस क्षेत्र का नाम भी संथाल परगना पड़ा है। इसके अतिरिक्त यह जनजाति इस राज्य के धनवाद, पूर्णिया, भागलपुर, सहरसा और मुंगेर में भी उपलब्ध है।

जनसंख्या के दृष्टिकोण से बिहार राज्य में द्वितीय स्थान पर ऊँराव जनजाति आती है। क्योंकि जनगणना द्वारा प्रमाणित हो गया है कि इस राज्य में ऊँराव जनजाति की जनसंख्या जो १९६१ में ७,३५,०२५ थी १९७१ में आकर ८,७६,२१८ हो गई। इनमें सर्वाधिक संख्या में ऊँराव छोटानागपुर के रांची जिले में पाये जाते हैं।

इसी प्रकार बिहार राज्य के उत्तरी बिहार में मुन्डा जनजाति आती है जिसकी आवादी क्रमशः बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि १९६१ में जहाँ इसकी जनसंख्या ६,२८,९३१ थी १९७१ में ७,२३,११६ हो गई। इसमें से लगभग ७०% मुन्डा आज दक्षिणी बिहार के राँची जिले में निवास करते हैं। जहाँ तक आबादी का प्रश्न है संथाल, ऊँराव और मुन्डा के बाद बिहार राज्य में 'हो' एक विशेष जनजाति है जो जनसंख्यात्मक दृष्टिकोण से चतुर्थ स्थान पर आती है। १९६१ में की गई जनगणना में इसकी कुल संख्या ४,५४,७४६ थी जो १९७१ में बढ़कर ५,०५,१७२ हो गई। इनमें अधिकांश 'हो' बिहार राज्य के सिंह भूमि जिले में हैं। इनकी विशेषता है कि इनमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक बलशाली और कर्मठ होती हैं, इसी कारण स्त्रियों का जीवन भी अधिक लम्बा होता है। इन प्रमुख चार जनजातियों के अतिरिक्त बिहार राज्य में कई अन्य जनजातियां पाई जाती हैं, और इस प्रकार कुल मिलाकर उतरी भारत के इस क्षेत्र में लगभग ३१ जनजातियाँ हैं। १९६१ की जनगणनानुसार इनकी कुल आबादी ४२,४०,७८४ थी जब कि १९७१ की जनगणना से प्रमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णित हो चुका है कि इनकी जनसंख्या बढ़ कर ४९,३२,३७० लगभग हो गई है। चूंकि १९७१ में बिहार की कुल जनसंख्या ५,६३,५३,३६९ थी जबकि १९८१ में यह बढ़कर ६,९८,२३,१५४ हो गयी अतः इस प्रकार इसी जनसंख्या का ८.७५ से भी अधिक प्रतिशत लगभग अनुसूचित जनजाति के रूप में पाया गया है।

युवागृह

बिहार राज्य के विभिन्न भागों में पायी जाने वाली विविध जनजातियों की अपनी विशेष परम्परायें हैं, अपने अलग-अलग रीति रिवाज और प्रथाएं हैं। इनकी परम्पराओं एवं प्रथाओं में अनेक प्रत्यक्ष अन्तर देखने को मिलते हैं। परस्पर सम्पर्क में आने एवं आधुनिकीकरण के कारण इन जनजातियों के बीच परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यन्त तीव्र हो गई है। फिर भी आज अनेक ऐसी जनजातियां हैं जो अशिक्षा और बाह्य सम्पर्क से वंचित रहने के कारण अत्यन्त दीन आर्थिक अवस्था में जीवन यापन कर रहे हैं, सभ्यता के दौड़ में ये आज भी सैकड़ों वर्ष पीछे हैं। इनकी अपनी विशेष समस्याएं हैं जिनका निदान खोज निकालना, सरकार, समाज-सेवियों तथा एक-एक नागरिक का कर्तव्य है। इन जनजातियों की उत्पत्ति भारत की भूमि पर हुई है ये भी भारतीय समाज के एक अभिन्न अंग हैं। इन जनजातियों के युवा वर्ग को अशिक्षा के अंधकार से निकालना होगा कारण ये जनजातीय युवक भी भारत के नागरिक हैं। ये भी राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण श्रृंखला की कड़ियां साबित हो सकते हैं। बालक स्वभाव अत्यन्त कोमल होता है। संस्कारों का प्रभाव इन पर भी पड़े यह स्वाभाविक है। इसी कारण हमारे सामने जनजातीय बालकों की समस्या नगण्य नहीं वरन् अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज भी यदि इन्हें अपनी संस्कृति से सम्बन्धित किसी प्रकार की शिक्षा मिलती है तो इनके समाज में इसके लिए मात्र एक ही संस्था प्रभावकारी रूप में उपलब्ध है जिसे सामान्य बोल चाल की भाषा में 'युवागृह' के नाम से जाना जाता है।

जनजातियों में पालन पोषण तथा जीवनोपयोगी शिक्षा दिलाने की एक विचित्र प्रथा प्रचलित है, विवाह से पूर्व इस समाज के अविवाहित युवक एवं युवतियों को एक विशाल भवन में साथ-साथ निवास करना पड़ता है। इसे ही युवागृह (डोरमेट्री) कहा गया है। यह गृह लगभग प्रत्येक जनजातीय गाँवों में स्थापित होता है और इसे एक प्रकार से सामाजिक शिक्षा हेतु शिक्षण केन्द्र कहा जा सकता है। विभिन्न जनजातियों के बीच युवागृह अलग-अलग नामों से जाना जाता है, यथा ऊँराव जनजाति में युवागृह को 'धुमकुड़िया' कह कर पुकारते हैं और इसी नाम से जाना जाता है। मुन्डा इसे 'गितिओरा' कह कर पुकारते हैं तो गोंड जनज़ाति में इसे 'गोतुल' कहा गया है। उत्तर प्रदेश की कुछेक जनजातियों में युवागृह 'रंग-वंग' के नाम से भी पुकारा जाता है।

किसी भी जनजातीय गांव में युवागृह में अविवाहित युवक एवं युवतियों के रहने हेतु, एक बड़े कमरे के रूप में, जो बाँस के खंभो पर घास और फूस की छत द्वारा निर्मित, प्रायः रहता है। प्रवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए मात्र एक द्वार के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग या खिड़की नहीं होती। अविवाहित युवक एवं युवतियाँ यहाँ आकर खेलते, नाचते-गाते और सोते हैं। यदि कोई जनजातीय परिवार अपने अविवाहित पुत्र या पुत्री को युवागृह जाने से रोकता है तो इसे अपराध माना जाता है। किसी भी वस्तु की यहां सुन्दर व्यवस्था रहती है और प्रबंध आदि के लिये एक चुना गया नेता होता है जिसके लिए अविवाहित होना आवश्यक है। जैसे ही युवागृह का नेता विवाह कर लेता है उसे अपना पद छोड़ देना पड़ता है और व्यवस्था की देख-रेख के लिए दूसरे नेता का चुनाव कर लिया जाता है। इसी प्रकार किसी भी युवक अथवा युवती के लिए विवाह उपरान्त युवागृह की सदस्यता अनायास ही समाप्त हो जाती है। सामाजिक, आर्थिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण से अधिकांश जनजाति युवागृह को परम उपयोगी मानते हैं। साधारणतया जनजातीय गाँवों में युवागृह ही एक ऐसी संस्था है जहाँ युवक, युवतियों को आर्थिक क्रियाकलाप, परम्परागत गीत एवं नृत्य तथा दाम्पत्य जीवन से संबंधित समुचित शिक्षा प्राप्त होती है।

अन्धविश्वास एवं मान्यताएँ

जनजातीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है, अलौकिक शक्ति में विश्वास। इसी विश्वास के कारण प्रायः सभी जनजातीय समाज में जादू, टोना, भूत-प्रेत आदि की विशेष मान्यताएँ पायी जाती हैं। विशेषकर, विभिन्न व्याधियों एवं भूत-प्रेत से छुटकारा पाने के लिए जनजातीय समाज के लोग अपने अलग-अलग इष्ट देवता की उपासना करते हैं और उन्हें प्रसन्न करने के लिए छोटे-छोटे पक्षियों (जिनमें कबूतर और मुर्गी की प्रधानता है) से लेकर नर बलि तक देते हैं। प्रायः सभी जनजातियों में अपने अलग-अलग देवी और देवता हैं और इन्हें अलग-अलग नामों से जाना जाता है। यथा बिहार की ऊँराव जनजाति के सदस्य 'चंडी' की उपासना करते हैं जिन्हें शिकार और युद्ध का प्रवर्तक माना जाता है। इस जनजाति के लोग 'दरहा' नामक देवता की भी पूजा करते हैं जिनका निवास 'शाल वृक्ष' में माना जाता है। अविवाहित ऊँराव नवयुवकों के लिए ये देवता विशेष रूप से पूजनीय है। इसी प्रकार संथाल जनजाति के बीच 'बोंगा' नामक देवता की विशेष महत्ता है और 'हो' जनजाति जो सूर्य के उपासक हैं, सूर्य को 'सिंग बोंगा' मानकर इनकी पूजा विशेष रूप से करते हैं। कारण इस जनजाति में सूर्य को विश्व श्रेष्ठ माना गया है। मुन्डा जनजाति में भी इन्हीं आधारों पर सूर्य को 'सिंग बोंगा' मानकर इनकी पूजा उपासना की जाती है। किसी-किसी जनजाति में देवता का चिन्ह अंकित करने हेतु अवयस्क बालिकाओं के माथे पर और बालकों के बांये दंड पर अग्नि की सहायता से आयताकार चिन्ह अंकित कर दिए जाते हैं और इसे विशेष संस्कार, माना जाता है, जबकि इस संस्कार के पालन में बालक एवं बालिकाओं को असाध्य कष्ट सहना पड़ता है। नर-बलि से लेकर अनेक कष्टों द्वारा धार्मिक संस्कारों का पालन और भीषण व्याधियों में भी जादू-टोना और झाड़-फूंक के प्रति विश्वास जनजाति समाज में धार्मिक मान्यताओं को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। आज का वैज्ञानिक युग, इन मान्यताओं को भले ही अंधविश्वास की संज्ञा क्यों न दें, यह समाज आज भी इन्हें पर्याप्त महत्व देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि जनजातीय समाज की अपनी जीवन शैली है, अपने विश्वास हैं और अपनी मान्यताएं हैं तथा धारणाएं हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह समाज कुछ अनूठा है। जनजातीय समाज का एक बालक अपने परिवार से ही जीवन का प्रथम पाठ आरम्भ करता है। कारण वह आजीवन अपने परिवार के साथ बंधा रहता है। इनका आर्थिक जीवन कुछ इस प्रकार का रहा है कि परिवार और कुटुम्ब से बाहर इनके जीवन (सरवाई-वल) की कल्पना नहीं की जा सकती है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त भोजन, वस्त्र और आवास के लिए, इन्हें अपने परिवार और कुटुम्ब पर निर्भर करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में जनजातीय समाज का एक सदस्य अपनी संस्कृति का कट्टर समर्थक बन जाता है। वाह्य जगत से सम्पर्क की संभावना कम होने के कारण, इनके सम्बन्ध की सम्भावना नहीं रहती है। फलतः इनके संस्कार अत्यन्त सुदृढ़ हो जाते हैं और किसी भी अवस्था में संस्कारों की अवहेलना इनके लिए असह्य हो जाती है। एक ओर संस्कारों के प्रति अटूट विश्वास, दूसरी ओर शिक्षा प्राप्ति के लिए संस्कारों की अवहेलना आवश्यक होने के कारण जनजातीय समाज के सदस्य आधुनिक शिक्षा के प्रति न तो आस्थावान हो पाते हैं और न इनके लिए यह सम्भव ही होता है।

ऊपर वर्णित स्थितियों में जनजातीय समाज में शिक्षा का प्रसार राष्ट्र के लिए एक चुनौती है। जब तक इनकी संस्कृति, सभ्यता और परम्पराओं को ध्यान में रखकर उचित योजनाओं का निर्धारण नहीं होगा, इस समाज से अशिक्षा दूर नहीं की जा सकती। अतः आवश्यक है कि इनकी संस्कृति को ध्यान में रखकर ही शिक्षा संबंधी कुछ निश्चित योजनाएं निर्धारित हों।

इसमें सन्देह नहीं कि विगत कुछ दशकों से ईसाई मिशनरियों ने जनजातीय समाज में शिक्षा प्रसारणार्थ सराहनीय कार्य किए हैं। परन्तु वास्तविक अर्थ में इनके कार्यों की सराहना नहीं की जा सकती, इसका कारण यह है कि इस मिशनरियों ने जनजातीय संस्कृति की अव-हेलना कर, इनमें अपनी संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। इसके लिए इन्होंने जनजातीय समाज के सम्पूर्ण वातावरण को विषाक्त कर दिया है। इनका प्रयास रहा है कि जनजातीय समाज के लोग 'चंडी' और 'सिंग वोंगा' के स्थान पर 'ईसा' की उपासना करें, भारतीय देवता 'राम' और 'कृष्ण' के बदले 'यीसू मसीह' की पूजा करें। ईसाईयों द्वारा प्रचलित पाठ्य पुस्तकों को महत्व देकर अपनी 'विरसा मुन्डा' की कहानी को भूल जाँय। यदि जनजातीय समाज इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो इसकी स्वाभाविकता नष्ट हो जायेगी, इसकी अपनी संस्कृति समाप्त हो जायेगी, जनजातीय समाज मिट जायेगा। अतः कोई भी समाज व मानवशास्त्री कह सकता है कि ईसाई मिशनरियां जनजातीय समाज के लिए वरदान नहीं वरन् अभिशाप हैं। बिहार के आदिवासी चूंकि भारतीय समाज के अभिन्न अंग हैं इसमें संदेह नहीं कि यदि ईसाई मिशनरियां अपनी शिक्षा पद्धति से इनकी संस्कृति को नष्ट करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहती हैं तो यह प्रत्येक ग्रामवासी के लिए एक चुनौती है। इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता कि जनजातीय समाज की तुलना में विभिन्न जनजातियाँ आज भी पिछड़ी हुई हैं। परन्तु इनके विकासार्थ बाध्य संस्कृति शिक्षा इतनी उपयोगी नहीं हो सकती जितनी उपयोगी इनकी अपनी संस्कृति शिक्षा होगी। इन्हें शिक्षित करने के लिए आँग्ल, हिन्दी या अन्य कोई भाषा उस अंश तक उचित नहीं होगी जहाँ तक इनकी भाषा हो सकती है। अतः आज वैज्ञानिक और प्रगतिशील युग में भी यदि हम सामान्य भारतीय, वास्तविक अर्थों में अपने जनजातीय भाईयों की प्रगति चाहते हैं तो हमारे लिए आवश्यक है कि हम इनकी वन्य जीवन शैली, परम्परागत संस्कृति और इनकी प्राकृतिक भाषा को महत्व दें। आज भी वनों से घनिष्ठ सम्पर्क रखने वाले ये प्रकृति पुत्र यदि प्रगति कर सकते हैं, इनका विकास हो सकता है तो यह प्रकृति की गोद में ही सम्भव है। वनों में ही इनकी संस्कृति, कला और शिक्षा का विकास, जनजातियों के लिये वरदान होगा। और यह तथ्य न केवल पुस्तकों एवं शोधकार्य की शोभा बढ़ाने के लिए है, बल्कि वह जनसमुदाय को लाभ पहुंचाने के लिए है जिसे कार्यात्मक रूप देना अपेक्षित है।

पुस्तकालय
111122
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

संदर्भ

१ शरण, ए० बी० १९७८ ट्रायबल स्टडीज़, प्रथम संस्करण, प्रकाशन एवं मुद्रण, ऑफसेट प्रिन्टर्स, राँची।

२ मुकर्जी, रविन्द्र नाथ १९७३ सामाजिक मानवशास्त्र की रूप रेखा। सरस्वती सदन, जवाहर नगर, दिल्ली–६

३ विद्यार्थी, ललिता प्रसाद १९६० बिहार के आदिवासी, कालेज सेन्टर, पटना–४

४ विद्यार्थी, मथुरा सिंह १९६३ मानवशास्त्र की रूप रेखा, केदार नाथ राम नाथ, मेरठ।

111122

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Access on 6.2.87
Class on
Cat on
Tag etc.
Checked
Any Other

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Comoted
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri